गुरु गिरा गौरव

(`द्रव्यदृष्टिप्रकाश' ग्रंथ के विविध वचनामृत एवं पूज्य सोगानीजी द्वारा लिखित पत्रों पर पूज्य भाईश्री शशीभाई के प्रवचन)

प्रकाशक

वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट

भावनगर

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :

- **वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट**
  ५८०, जूनी माणेकवाड़ी,
  भावनगर-३६४००१
  फोन : (०२७८) २४२३२०७ / २५१५००५
- **गुरु गौरव**
  श्री कुन्दकुन्दकहान जैन साहित्य केन्द्र, सोनगढ़
- **श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान जैन ट्रस्ट**
  विमलांचल, हरिनगर, अलीगढ़
  फोन : (०५७१) ४१००१०/११/१२
- श्री खीमजीभाई गंगर (मुंबई) : (०२२) २६१६१५९१
  श्री डोलरभाई हेमाणी (कोलकाटा) : (०३३) २४७५२६९७
  अमी अग्रवाल (अहमदाबाद) : (०७९) R-२५४५०४९२, ९३७७१४८९६३

प्रथमावृत्ति : प्रत : १०००
द्वितीयावृत्ति : प्रत : १०००, ८-१२-२००५ (पूज्य भाईश्री की ७३वीं जन्मजयंति)
तृतीयावृत्ति : प्रत : ५००, ३१-१२-०७ (कुंदकुंदाचार्य आचार्य पदवी दिन)

पृष्ठ संख्या : ४४ + २८८ = ३३२
लागत मूल्य : ४५/-
मूल्य : ४० /-

टाईप सेटिंग :
पूजा इम्प्रेशन्स
प्लोट नं. १९२४-बी,
६, शान्तिनाथ बंगलोझ
शशीप्रभु मार्ग, रुपाणी सर्कल के पास
भावनगर-३६४००१
फोन : (०२७८) २५६१७४९

मुद्रक :
भगवती ऑफसेट
१५/सी, बंसीधर मिल कंपाउन्ड
बारडोलपुरा,
अहमदाबाद
फोन : ९८२५३२६२०२

प्रस्तावना

अनादिसे संसार परिभ्रमण कर रहा जीव स्वयंके मूल स्वरूपसे अनभिज्ञ होनेसे वर्तमानमें प्राप्त `कर्मजनित अवस्था जितना ही मैं और ऐसा ही मैं।' - ऐसा अनुभव वर्तता है। क्षणिक अवस्थामें स्वयंके शाश्वत अस्तित्वका अनुभव कर रहा संसारीजीव इस तरह प्रतिक्षण भावमरण कर रहा है। अनादिकालसे मिथ्यात्वके नागपाशमें फँसे हुए जीवको छुड़ानेके लिए ज्ञानीपुरुषोंने स्वयंके अनुभवसे वस्तुस्वरूपको प्रकाशित करते हुए मूल सिद्धांतोंको आगमारूढ़ किया।

वर्तमानमें जो अज्ञान अंधकार व्याप्त था, मोक्षमार्ग कैसा है, इसका अज्ञान वर्तता था, ऐसे कलिकालमें सद्धर्म प्रभावक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका जन्म वास्तवमें एक आश्चर्य ही है !! पूज्य गुरुदेवश्रीने अनेक शास्त्रोंका अभ्यास करके पूर्व संस्कारको सार्थक करके वर्तमान कालमें ज्ञानका प्रकाश किया। जीवको संसार परिभ्रमणका कारण क्या है ? और इस परिभ्रमणसे मुक्त होनेका उपाय क्या है ? इसी बातको केन्द्रस्थानमें रखते हुए श्रुतामृतके धोध बरसाये। ऐसे दुषमकालमें दुःखसे तप्तायमान जीवोंका दुःखसे छुटकारा हो ऐसी निष्कारण करुणाकी सरिता उनके अंतरंगमेंसे बहती थी, जिसमें अनेकानेक जीवोंने स्नान करके धन्यताका अनुभव किया।

अपूर्व निजस्वरूपके आधारसे प्रगट हुई उनकी अंतरंग परिणति तो अलौकिक थी ही !! परन्तु उनके अंतरंगसे प्रवाहित निष्कारण करुणारूपी सरिताका भी किन शब्दोंमें वर्णन किया जाये कि, जिनका एकमात्र प्रवचनामृत किसी जीवके अनन्त जन्म-मरणका छुटकारा ला दे ! वाकईमें यह एक चमत्कार ही है !! पूज्य गुरुदेवश्रीकी वाणीमें यह सातिशयता रहै कि, उनके अंतरंगसे प्रवाहित सरितामेंसे एक ही प्रवचनामृतका पान करके उनकी वाणीको जिन्होंने सफल किया, जन्म-मरणके छेदक ऐसे अपूर्व कल्याणकारी सम्यग्दर्शनको प्रगट किया ! पूज्य गुरुदेवश्रीके सुवर्णमयी इतिहासमें जिन्होंने यशकलगी लगानेरूप कार्य किया, सोनगढ़की साधनाभूमिको जिन्होंने गौरवान्वित किया - वे हैं पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी ! पूज्य गुरुदेवश्री तो जगत्गुरु हैं ही परन्तु उनके शिष्य भी बेजोड़ पुरुषार्थके धनी !!

धन्य धन्य हैं ऐसे गुरु और धन्य हैं ऐसे शिष्य !!

पूज्य सोगानीजीका विस्तृत जीवन परिचय अन्यत्र दिया ही है। फिर भी इस लघुकाय ग्रंथ `**गुरु गिरा गौरव**' में उनके ही अंगत हृदयोद्गार एवं पत्रों पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचनोंसे पाठकवर्गको अवश्य प्रतीत होगा कि, `गुरु' द्वारा प्राप्त `गिरा' (वाणी) का `गौरव' कितनी अद्भुततापूर्वक प्रदर्शित हुआ है। इस पुस्तकमें उनके अंगत परिणमन संबंधित वचनामृत, पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रति व्यक्त हुए भक्तिभाव, जो उनके पत्रोंमें प्रदर्शित हुए हैं व भेदज्ञान और दृष्टिके विषयभूत ऐसे मूल स्वरूपको प्रकाशित कर रहे उनके वचन पर हुए पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन हैं।

एक ज्ञानीपुरुष ही दूसरे ज्ञानीपुरुषका हृदय खोल सकते हैं - इस बातका अनुभव इस पुस्तकमें प्रकाशित हुए प्रवचन परसे हो सकेगा। पूज्य भाईश्रीकी सरल व मौलिक शैलीने इस कठिन विषयको कितनी रोचक शैलीमें कितनी आसानीसे व्यक्त किया है - इसकी प्रतीति अवश्य इन प्रवचनों परसे होगी।

इस लघुकाय ग्रंथमें ज्ञानीपुरुषकी अंतरंग दशा कैसी होती है व ऐसी विलक्षणदशा प्राप्त होनेके पूर्व कौनसी निश्चित प्रकारकी दशा प्रगट होती है, यह स्पष्टरूपसे प्रतीत होगा। पूज्य सोगानीजीकी सम्यग्दर्शन प्रगट होनेके पहले कैसी दशा थी यह बात भी इस पुस्तकमें समाविष्ट की गई है। उनकी दृष्टिप्रधानयुक्त कथनशैली, साथ ही प्रवर्तमान प्रमाणज्ञानके पहलू, श्रीगुरुके प्रति भक्ति, विषयकी सूक्ष्मता, गहराई, गंभीरता, पूर्णताकी प्राप्तिकी ओर बढ़ता हुआ तेज पुरुषार्थ, वैराग्य, स्थिरता इत्यादि अनेकानेक गुणोंका दर्शन इस ग्रंथ द्वारा हो सकेगा।

अंततः इस ग्रंथका प्रकाशन यह सिर्फ सोगानीजीका बहुमान नहीं अपितु गुरुदेवश्रीका व अनंतानंत ज्ञानियोंका इसमें बहुमान है। यह पुस्तक वास्तवमें गुरु गिराका गौरव ही है। इस पुस्तकका अध्ययन अनादिरूढ़ मिथ्यात्वके नागपाशसे छुड़ानेमें अमृतसा फल दें ऐसी भावना भाते हैं।

इति शिवम्

प्रकाशकीय
(तृतीय आवृत्ति)

`**गुरु गिरा गौरव**' शीर्षकवाला यह लघुकाय ग्रंथको प्रकाशित करते हुए हमें अत्यंत हर्ष हो रहा है। पूज्य सोगानीजीने पूज्य गुरुदेवश्रीकी वाणीका गौरव किस तरह बढ़ाया, यह इस पुस्तक द्वारा प्रतीत होगा। प्रस्तुत ग्रंथमें `**द्रव्यदृष्टिप्रकाश**' ग्रंथमेंसे श्री सोगानीजीकी अपनी `**अंगत दशा**' विषयक चुने हुए वचनामृत व उनके द्वारा लिखे पत्रों पर पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा हुए प्रवचनोंका संकलन है।

पूज्य भाईश्री शशीभाईके सुदीर्घकालीन सत्‌शास्त्रों पर हुए प्रवचनोंमें, यह `**द्रव्यदृष्टिप्रकाश**' ग्रंथ पर भी प्रवचन हुए हैं। प्रस्तुत प्रकाशित प्रवचनोंमें न केवल पूज्य सोगानीजीका हृदय ही खुला है किन्तु इसमें पूज्य गुरुदेवश्री भी कैसे थे ! व कैसी उनकी सातिशय वाणी थी !! यह बात भी प्रकाशित होती ही है। यदि शिष्यकी वाणी इतनी धारदार हो तो श्रीगुरुकी वाणी कितनी धारदार होगी ! इसके अलावा इन दोनों विशिष्ट धर्मात्माओंके हृदयको एकदम सरल भाषामें खोलनेकी जिन्हें लब्धि थी, ऐसे पूज्य भाईश्रीके प्रति उपकृत भावभीगी हृदयोर्मियाँ आविर्भूत हुए बिना नहीं रहती। पूज्य सोगानीजीकी पहचान करानेवाले अगर कोई हैं तो वे `**पूज्य भाईश्री**' हैं।

पूज्य भाईश्रीके ऑडियो केसेटमें सुरक्षित प्रवचनोंमेंसे सर्व प्रथम इस `**अंगत दशा**' संबंधित वचनामृतों पर हुए प्रवचनोंको अलग छाँटा गया है। तत्पश्चात् ऑडियो केसेट परसे अक्षरशः लिखकर, मूल प्रवचनोंको सुनते हुए संकलन किया गया है। कुछएक केसेटोंमें आवाज़ अस्पष्ट होनेसे उतना भाग लिखा नहीं गया। पूज्य सोगानीजी

द्वारा लिखित अनेक पत्रोंमेंसे भी जिस-जिस पत्रमें उन्होंने अपनी स्वयंकी अंतरंग दशा व्यक्त की है, ऐसे पत्रोंको लिया गया है। इसके अलावा उनकी पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रति व्यक्त हुई भक्ति एवं भेदज्ञानके विषयको भी समाविष्ट किया गया है। संकलित प्रवचनोंको पुनः दूसरे मुमुक्षु द्वारा केसेटके साथ मिलाया गया है।

भव-भयसे डरते-डरते व ज्ञानीपुरुषकी वाणीकी गंभीरताको लक्षमें रखते हुए इस ग्रंथका प्रकाशन किया जा रहा है। इसके बावजूद भी प्रकाशनकार्यमें किसी भी प्रकारकी क्षति रह गई हो अथवा अविनय आदि दोष हुए हो तो वीतराग देव, गुरु, शास्त्र समक्ष शुद्ध अंतःकरणपूर्वक क्षमायाचना करते हैं। पाठकवर्गको यह विनती करते हैं कि, किसी भी प्रकारकी भूल दृष्टिगोचर हो तो हमें सूचित करें।

जिन-जिन मुमुक्षु भाई-बहनोंने इस ग्रंथके प्रकाशनार्थ सहकार दिया है उनके हम हृदयपूर्वक आभारी हैं। कम्प्यूटर टाईप सेटिंग कार्यके लिए `पूजा इम्प्रेशन्स' और सुंदर मुद्रणकार्यके लिए `भगवती ऑफसेट' - अहमदाबादके हम आभारी हैं।

अंततः इस ग्रंथके स्वाध्यायसे सर्व मुमुक्षुजीव पर्यायदृष्टिसे मुक्त होकर द्रव्यदृष्टिको प्राप्त करें ऐसी भावना भाते हैं।

परम पुरुष प्रभु सद्‌गुरु, परम ज्ञान सुखधाम,
जेणे आप्युं भान निज, तेने सदा प्रणाम।

दि. ३१-१२-२००७
(कुंदकुंदाचार्यदेव आचार्य पदवी दिन)

ट्रस्टीगण
वीतराग सत्‌साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
भावनगर

पूज्य निहालचंद्र सोगानीजीका आध्यात्मिक जीवन परिचय

राजस्थानकी पुनीत-पुण्य वसुन्धरा अनेक धर्मात्माओंकी जन्म कर्म भूमि है । यहाँका ऐतिहासिक नगर अजमेर अपनी प्राकृतिक छटाके साथ साथ विविध कला-संस्कृतियोंके केन्द्रके रूपमें सुप्रसिद्ध है। यहाँ प्राचीन कालसे ही मूल दिगम्बर जैन धर्मावलम्बी भी प्रचुर संख्यामें निवास करते रहे हैं। यहाँ उन लोगोंने अपनी धर्माराधनाके निमित्त अपने आराध्य देवोंके कई गगनचुम्बी शिखरबद्ध जिनमन्दिरोंके निर्माण कराये हैं, जो वस्तुशिल्प व कलात्मक सौन्दर्यकी दृष्टिसे भारत विख्यात हैं। हमारे प्रस्तुत चरितनायक, निकट मोक्षगामी-धर्मात्मा श्री निहालचंद्रजी सोगानी (जिनके लिए इस आलेखमें `श्री सोगानीजी' शब्द प्रयुक्त किया है) की भी यही जन्मभूमि है।

यद्यपि सोगानी-परिवारकी अनेक पीढ़ियोंकी जन्मभूमि अजमेर ही रही है तथापि यह कहना कठिन है कि अतीतमें उनके पूर्वज कब और कहाँसे आकर यहाँ बसे।

श्री सोगानीजीके पिता श्री नेमीचन्द्रजी धर्मनिष्ठ, सरलमना व संतोषी वृत्तिके व्यक्ति थे। उनके अन्य तीन सहोदर थे। उन्होंने आजीविकाके साधन हेतु गोटाकिनारीका हस्त-शिल्प अपनाया। परिवार मध्य वित्तीय स्थितिवाला था । श्री नेमीचन्द्रजीकी प्रथम पत्नी श्रीमती सूरजबाईका बाल्यावस्थामें ही निधन हो जानेसे उनका दूसरा विवाह गगराना ग्रामके कासलीवाल परिवारकी कन्या किशनीबाईके साथ

किया गया। उसने चार पुत्र व एक पुत्रीको जन्म दिया। जिनमें श्री निहालचन्द्रजी दूसरे नम्बरके पुत्र थे।

श्री सोगानीजीकी जीवनयात्रा :

सन् १९१२में, वैसाख सुद-११, विक्रम संवत १९६९ के दिन विधिकी किसी धन्य पलमें बालक `निहाल' को जन्म देकर उनकी माताश्रीकी कोख भी निहाल हो गई। बालकका मनोहर रूप व सौम्य निश्छल मुद्रा सभीको सहज ही मोहित कर डालती। बालककी बाल सुलभ `चन्द्र' कलाएँ व चेष्टाएँ भी सभीका मन लुभाती रहती। भावी महामनाके पाद-स्पर्शित रजकण भी मानों गौरवान्वित हो, धन्य हो गये।

श्री सोगानीजी जन्मजात असाधारण प्रतिभाके धनी, विचक्षण व मेधावी रहे; परिणामत: उन्होंने अति अल्प प्रयाससे ही यथेष्ट लौकिक शिक्षा प्राप्त कर ली । वे सहज चेतना, जिज्ञासुवृत्ति, निर्भीक, कार्यनिष्ठ व परिश्रमशील होनेके साथ साथ धुनके धनी भी थे । किसी कार्यको प्रारम्भ कर देनेके बाद उसे पूरा किये बिना उन्हें चैन कहाँ ?

इसी बीच पारिवारीक-दायित्वबोधने उन्हें परिवारके उपजीवनके निर्वाह हेतु सहयोगी बना दिया, अत: उन्होंने अजमेरमें ही एक दुकान पर नौकरी करना स्वीकार कर लिया। उनकी प्रामाणिकता, प्रबन्ध-पटुता, व्यवहार-कुशलता, कर्तव्यनिष्ठतादि सद्‌गुणोंसे प्रभावित होकर दुकान मालिकने परिस्थितिवश कालान्तरमें अपनी दुकानका स्वामित्व ही श्री सोगानीजीको सौंप दिया।

तथापि उनकी बालवस्थासे ही विलक्षण प्रकृति थी । कार्यनिष्पन्न होते ही वे गम्भीर हो, एकान्तमें बैठ किन्ही विचारोंमें खो जाया करते थे। उनकी भीतर तक झाँक लेनेवाली तेज आँखें, समाधिस्थ-से रहते अधर-सम्पुट उनकी जिज्ञासुवृत्तिको रेखांकित करते रहते।

उनकी ऐसी वृत्ति घरके बड़ोंको विस्मित करती या सालती थी।

ꕥ गृहस्थाश्रम :

श्री सोगानीका सन् १९३४में बाईस वर्षकी वयमें अजमेरको ही बाकलीवाल परिवारकी कन्या अनोपकुंवरके साथ विवाह हुआ। कालक्रममें उनके दाम्पत्यजीवनसे पाँच पुत्रों व तीन पुत्रियोंने जन्म लिया। जिनमेंसे प्रथम पुत्रका ४-५ वर्षकी अल्पायुमें तथा तीन पुत्रियोंका (-श्रीमती आशालता, कुमुदलता व कुसुमलताका उनके विवाहोपरांत) निधन हो गया। वर्तमानमें सबसे बड़े पुत्र श्री रमेशचन्द्र व उनके तीन अनुज क्रमश: श्री नरेशचन्द्र, श्री अशोककुमार व श्री अनिलकुमार मोजूद हैं। और वे सभी अपने पूज्य पिताश्रीके निर्दिष्ट पथ पर आनेका प्रयास कर रहे हैं।

ꕥ मन्थन-काल :

यद्यपि श्री सोगानीजीके लिए अपनी बढ़ती हुई गृहस्थीकी आवश्यकताओंकी सम्पूर्ति उस दुकानकी आमदनीसे करना अति कठिन था; तथापि उन्हें तद्विषयक कोई विशेष मानसिक उलझन नहीं रहती थी।

परन्तु उनके कोई पूर्व संस्कारवश बालावस्था से ही स्फुरित वैचारिक द्वंद्व अविच्छिन्नधारासे जो प्रवहमान था, वह दिन दिन वृद्धिगत होता गया। वह उन्हें न तो दुकान पर और न ही घर पर चैन लेने देता था। जीव-जगत, जीवन-मृत्यु, सत्यासत्यकी जटिल समस्याओंसे जूझता हुआ उनका घायल मन बार बार प्रश्नातुर हो उठता। क्या है सत्य ? कौन हूँ मैं ? कहाँ है अखण्ड शान्ति ? कहाँ है इन ज्वलंत प्रश्नोंका समाधान ?

इस तरह एक ओर पारिवारिक दायित्वका बढ़ता हुआ दबाव और दूसरी ओर उक्त प्रकारकी वैचारिक मन:स्थिति। दोहरी

मानसिकताका यह द्वंद्व प्रबलसे प्रबलतर होता गया।

नीरव निशीथके साथमें जब निद्रालस संसार स्वप्नोंमें खोया रहता, वे उन्नीद्र होकर घरकी छत पर चक्कर लगाते रहते। धूँधले उदास आकाशमें वे किसी प्रकाशमान ध्रुव तारेकी खोज करते रहते। मन होता, पाँवोंमें पंख बाँधकर उड़ता हुआ चला जाऊँ इस घुटन और कुंठाओंकी सीमाके उस पार, जहाँ अनवरत शान्तिका अखण्ड साम्राज्य स्थापित है। अपनी ही सृष्टिके ताने-बानेसे गुथे जंजालसे मुक्त होनेके लिए उनके प्राण छटपटाते रहते। कोई दूरागत पुकार उनके कानोंमें गूँजती रहती। अनागतका कोई आमंत्रण उन्हें अपनी ओर खींचता रहता। निरन्तर बढ़ती हुई बेचैनी और विह्वलताको देखकर उनकी धर्मपत्नी भी करुणासे विगलित होकर तड़प उठती। परन्तु तादृश स्थिति बिना, ऐसी गोपित वेदनाका कारण जान पाना सम्भव कहाँ ?

भीषण अतृप्ति और प्यास, कभी न भरनेवाला शून्य, कभी न बुझनेवाली आगके घेरेमें घिरते चले गये, आत्मवेदनाके निगूढ़ पारावारमें वे डूबते गये। उन्हें प्रत्येक सांसारिक कार्य विष-तुल्य लगने लगे।

सत्यसे साक्षात्कारकी अभीप्सामें श्री सोगानीजीके जीवनका रूपान्तर होता रहा। भरे-पूरे संसारमें वे एकाकी और ऐकान्तिक होते चले गये। शान्तिकी प्राप्तिके लिए वे अनेक उपक्रम करते रहे। यहाँ तक कि किरायेके घरमें रहने पर भी छतके ऊपर, उन्होंने अपनी आर्थिक स्थिति तदनुकूल न होनेपर भी, अपने खर्चसे एक कोठरी भी बना ली; जहाँ उनका एकान्तवास हो सका। यही कोठरी उनकी शोध और साधनाका केन्द्र बन गई। शरीरसे लौकिकधर्मका पालन करते हुए भी उनकी अस्तित्वगत उपस्थिति भावनाके रहस्यलोकमें रहने लगी।

ꕥ सत्पात्रता :

साधु-सन्तोंका समागम, जिनदेव दर्शन, जैन ग्रन्थोंका आलोडन करना श्री सोगानीजीकी दिनचर्याका अनिवार्य अंग बनता गया। वे जब तब अन्य धर्मग्रन्थोंका भी तुलनात्मक अध्ययन किया करते थे। उनकी स्वाध्यायरुचि इतनी बढ़ चली थी कि वे दुकान पर भी तनिक-सा अवकाश मिलते ही या ग्राहकोंको नौकरके हवाले कर, शास्त्र-स्वाध्यायमें खो जाते थे। चिंतन-मनन-मन्थनके धुंध भरे गलियारोंमें भटक-भटक कर वे रोशनीकी तलाश करते रहे। अपनी अभीष्ट-सिद्धि हेतु उन्होंने अपने ही हाथोंसे बड़े जतनसे तैयार की हुई सामग्रीसे, लम्बे समय तक, दत्तचित्तसे चार-चार पाँच-पाँच घण्टों खड़े रहकर दैनिक पूजाएँ की, खड़गासन् ध्यान क्रियाका अभ्यास किया, एकान्तमें हठ योगियोंके हठवादको साधा, यहाँ तक कि एक बार तो गृहस्थ-बन्धनसे दूर होनेके लिए घर छोड़कर डेढ़-दो माह तक शहरकी ही धर्मशालामें एक विद्वान पण्डितको रखकर, रात-रात भर जागकर अनेक जैनग्रन्थोंका गहन परायण किया; घण्टों ही चिंतन-मनन-ध्यान आदि क्रियाओंमें रत रहते, तथापि जिस परम सत्यको पानेके लिए उनका रोम-रोम व्याकुल व बेचैन था, उसका साक्षात्कार उन्हें नहीं हुआ तो नहीं हुआ। अनमोल मनुष्यभवका एक अंश तो इस भटकनमें ही निकल गया। आत्म-विरहसे उनका आर्त मन बार बार पुकारता कि यदि सत्यसे साक्षात्कार नहीं हुआ तो फिर मेरे इस नश्वर शरीरका इस असार संसारसे उठ जाना ही श्रेयस्कर है।

ꕥ दिशा-बोध :

परन्तु `जहाँ चाह है वहाँ राह है' तो फिर आत्मार्थी ही इससे वंचित क्यों ? पुरुषार्थसे जब सभीको इच्छित वस्तुकी प्राप्ति हो जाती

है तो फिर `सत्य ही चाहिए अन्य कुछ नहीं' ऐसे दृढ़ निश्चयीसे सत्य आखिर कितने दिन दूर रहता ? वैसा ज्ञानीधर्मात्माओंने भी कौल-करार किया ही है कि : ``**चैतन्यको चैतन्यमेंसे परिणमित भावना अर्थात् रागद्वेषमेंसे नहीं उदित हुई भावना - ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह फलती ही है।**''

दैवयोगसे जैसे श्री महावीरस्वामीके जीवको उसके सिंहके भवमें सत् उद्बोधन हेतु दो चारणऋद्धिवन्त मुनिराज आकाशसे पृथ्वी पर उतरे थे, वैसे ही सन् १९४६में किसी महान मंगल बेलामें श्री सोगानीजीको किसी साधर्मीने, सोनगढ़में बिराजित दिगम्बर जैनधर्मके आध्यात्मिक सन्त श्री कहानजी स्वामीके प्रवचनोंको प्रकाशित करनेवाला मासिक `आत्मधर्म' पढ़नेके लिए दिया। प्रवचनप्रसादी स्वरूप सारगर्भित वाक्य `षट् आवश्यक नहीं, लेकिन एक ही आवश्यक है' ने उनके अन्तरको झकझोर दिया, उन्हें गहरी चोट लगी। इसी वाक्यामृतके भावभासनसे मानो अनन्त कालसे अनन्त कर्तृत्वके बोझ तले दबी, छटपटाती उनकी आत्मा सहज उबर गई और उन्हें आत्मा भार मुक्त-सा हलका भासित होने लगा। अन्तरमें रोम-रोम झनझना उठा और स्वरलहरी निकली, अरे ! मिल गया ! जिस सत्यकी खोज थी, उसका विधि-प्रकाशक मिल गया। तत्क्षण ही उन्हें पूज्य गुरुदेवश्री और उनके मंगलकारी वचनोंके प्रति श्रद्धा व अन्तर प्रीति स्फुरित हुई और अहोभाव छलक उठा, मन भक्तिविभोर हो उठा। और उन्होंने `आत्मधर्म' में अंकित श्रीगुरुके भव्य चित्रको श्रद्धा-सुमनके रुपमें निम्न अर्घ अर्पित किया :

`**उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः;**
धवलमंगलगानरवाकुले जिनग्रहे जिननाथ महंयजे।''

अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेवश्रीकी वाणीसे मुखरित रससे ओतप्रोत

`आत्मधर्म' का प्रत्येक शब्द दिव्य ज्ञानका स्फोट, प्रत्येक पृष्ठ सहजानन्दकी ओर ले जानेवाला पथ-प्रकाश ! जैसे जैसे वे इसके पृष्ठ पलटते गये उनके वाच्य अवगाहनसे, अनादिरूढ़ व सर्व दोषोंका जनक मिथ्यात्व और अज्ञानकी शक्ति क्षीण होने लगी। ज्ञानग्रंथियाँ यथोचित खुलती गई। आत्माके अनन्त लोककी यात्राकी दिशा उन्हें स्पष्ट होने लगी।

यद्यपि उनके बुद्धिजन्य स्थूल विपर्यास तो निरस्त हो गये, तथापि विकट समस्या खड़ी हुई कि उस परम सत्य तक पहुँचा कैसे जाए ? तदर्थ काफी प्रयास किया, परन्तु समस्याका निवारण नहीं हो सका; स्वयंसे कोई समाधान - विधि नहीं सूझ रही थी, तो अब क्या किया जाये ? - ऐसी एक नई विचित्र उलझन उत्पन्न हो गई। एकाएक सहज ही गुरुदेवश्रीकी छविका मनमें आविर्भाव हुआ और तभी मार्गप्रकाशकके चरण-सान्निध्य और दर्शन हेतु उनका मन तड़प उठा, बस ! अब चैन कहाँ ? उस संतकी पवित्र चरणरजको अपने मस्तकपर धारण करनेकी उनकी लालसा प्रतिक्षण तीव्रसे तीव्रतर हो चली।

❁ सद्‌गुरुका प्रत्यक्ष योग :

अंतत: वह चिरप्रतिक्षित सुमंगल घड़ी उदित हुई । श्री सोगानीजी सन् १९४६में प्रथम बार अपने आराध्य श्रीगुरुके पावन चरणोंमें पूर्णत: नत होने स्वर्गनगरी (-सोनगढ़) जा पहूँचे।

श्री सोगानीजीने अपने आराध्य साक्षात् चैतन्यमूर्तिकी पवित्र चरणरजको मस्तकपर चढ़ाने हेतु ज्यों ही अपना सिर नवाया तो उन्हें ऐसा महसूस हुआ मानों उनके अनादिरूढ़ मिथ्यात्वकी चूलें ढीली होने लगी हैं। और वे अपने श्रीगुरुकी दिव्य मुखमुद्राको भावविभोर होकर, मंत्रमुग्ध-से अपलक निहारते हुए उनकी पारदर्शी

चिन्मय मुद्राका निदिध्यासन करते रहे तो लगा जैसे श्रीगुरुके तेजस्वी मुखमण्डलकी दीप्तिसे उनका उदयगत मिथ्यात्व भी वाष्पशील हो चला हो। - ऐसी जात्यंतर स्थितिने श्री सोगानीजीके अंतरआलोडनकी दिशा स्वकेन्द्री होने योग्य अन्तर अवकाश बना दिया, जिससे उनके ज्ञानने स्वरूप-निश्चय-योग्य क्षमता ग्रहण की, उधर आत्मरससे ओतप्रोत वक्ता श्रीगुरुकी दिव्यवाणी मुखरित हुई, और उन्हें प्रत्यक्ष सत्-श्रवणका प्रथम (अपूर्व) योग मिला।

❁ स्वरूप निश्चय :

जैसे चातक पक्षी स्वाति-बूँदके लिए `पी कहाँ...पी...कहाँ' की रट लगाये रहता है, वैसे ही श्री सोगानीजीको चिरकालसे `सत्य...सत्य' की अन्तर रटन लगी हुई थी। और जैसे चातककी प्यास केवल स्वाति-बिंदुसे ही बुझती है, वैसे ही उनके अन्तरमें धधकती-सत्यके अभावजन्य अशान्तिकी दाहको श्रीगुरुकी पियुष वाणीकी शीतल फुहारसे शीतलता सम्मत थी। और जैसे स्वाति-बिंदु सीपके सम्पुटमें पहुँचकर मोती बन जाता है, वैसे ही महान् मंगलमयी क्षणमें श्रीगुरुके श्रीमुखसे निर्झरित बोधामृत `ज्ञान अने राग जुदा छे' के भावको उन्होंने चित्तमें अवधारण किया जो अलौकिक चैतन्य चिन्तामणिके रूपमें प्रकटित हुआ।

यद्यपि श्री सोगानीजीको गुजराती भाषाका ज्ञान नहीं था, फिर भी उन्हें पूज्य गुरुदेवश्रीकी गुजराती भाषासे कोई कठिनाई नहीं हुई। और वस्तुस्थिति भी यही है कि प्रयोगप्रधानी जीवको कोई भाषा बाधक नहीं बनती।

श्री सोगानीजीके लिए तो पूज्य गुरुदेवश्रीकी धर्मसभा ही मानों प्रयोगशालामें रूपांतरित हो गई। और उन्होंने वहीं अपना प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। तदर्थ उन्होंने `ज्ञान अने राग जुदा छे' के वाच्यकी

डोर संभाली और उसके सहारे वे वाच्यके अन्तरतलमें उतरे और गहरे उतरते चले गये; उन्होंने वहाँ वर्तते राग तत्त्वका सूक्ष्म परीक्षण किया, तो उन्हें वह विभावांश, मलिन, स्वभाव-विरूद्ध, दु:खरूप और आकुलतामय भाव भासित हुआ। और वहीं साथ वर्तते ज्ञान तत्त्वके अन्वेषण पर उन्हें वह स्वभावांश, स्वच्छ, स्वभावभूत, सुखरूप और निराकुलतामय भासित हुआ - ऐसे उन्होंने उक्त दोनों भावोंको यथार्थरूपसे पहचाना और वेदन पूर्वक उन दोनोंकी मूल जातिको समीचीनरूपसे सुनिश्चित किया। और फिर वे प्रगट ज्ञानांशमें वर्तते नित्य उदित सामान्यज्ञान परसे ज्ञानस्वभावमें सन्निहित अनन्त अनन्त गुण-समुद्रकी ओर बढ़े तो वहाँ उन्हें आश्चर्यकारी अनन्त विभूतियोंसे विभूषित चैतन्य मणि-रत्नोंसे छलकते अपने स्वभावकी झलक भासित हुई। - इस भाँति अपने ही ऐसे सत्यस्वरूपके निश्चयसे उन्हें `सिद्ध स्वभावी, अनन्त सुख धारक मैं ही ऐसा महान् पदार्थ !!' - ऐसा यथार्थ भाव भासित हुआ।

अतीन्द्रिय स्वरूप-स्वानुभूति :

श्री सोगानीजीको अपने परमोपकारी सजीवन ज्ञानमूर्ति श्री गुरुकी भवान्तकारी मंगल प्रवचनप्रसादीरूप देशनासे प्रतिभासित निज परम तत्त्वकी अनहद आश्चर्यकारी अपूर्व महिमा प्रदीप्त हो उठी। जिससे उन्हें अपने परम चैतन्य तत्त्वका अभूतपूर्व रस व घोलन चालू हो गया। अनादिसे सुषुप्त पुरुषार्थ संचेतित हुआ और उनका चैतन्यवीर्य स्फुरित हो उठा। तद्नुसार उनको निर्विकल्प तत्त्वकी धुन अति वेग पूर्वक चलती रही। कब दिन ढला, कब निशाने अपनी काली चादर फैलाई, कुछ भान नहीं रहा; उन्हें सभी उदय संयोग-प्रसंग विस्मृत हो गये; बस ! अनवरत एक ही धुन चल रही थी।

जब जगतवासी नीरव निशीथिनीके अंकमें समा चुके थे तब वे

`समिति' के एक कमरेके कौनेमें बैठे अपने उद्दीप्त हुए चैतन्य-रसके प्रवाहमें निमग्न थे। उनका स्वरूपोन्मुखी सहज पुरुषार्थ पुरजोशसे गतिशील था। - ऐसी अपूर्व जात्यन्तर अन्तर स्थितिवश उनके सभी अन्तर्बाह्य प्रतिबन्धक कारण भी स्वयमेव अस्त हो गये। तभी तत्क्षण वृद्धिशील पुरुषार्थ-प्रवाह अपूर्व वेगसे वर्धमान हो अन्तर्मुख हो गया और उसी क्षण श्री सोगानीजीकी आत्माने अपने स्वसंवेदनमें रह कर, अपने प्रत्यक्ष परमात्माका दर्शन किया; और उन्हें अपने अतीन्द्रिय स्वरूपकी स्वानुभूति हुई। और तत्काल ही उनके आत्माके प्रदेश-प्रदेशमें अतीन्द्रिय स्वरूपानन्दकी बाढ़ आ गई। अनादिसे अतृप्त परिणति स्वरूपानन्द-पानसे तृप्त-तृप्त हो उठी।

जिनवाणीका निर्मल अमृत-प्रवाह उनकी अनादि कुंठाकी चट्टान तोड़कर छलछला उठा। विकल्प-समुद्रका गर्जन-तर्जन जैसे अनायास ही शान्त होकर थम गया। वे ऐसी भाव समाधिमें स्थिर हुए जहाँ न संकल्प था न विकल्प; न प्रवृत्ति थी न निवृत्ति; न मैं था न तू। रह गया केवल अनहदमें शाश्वत शान्तिका साम्राज्य।

श्रीगुरु-मिलनके प्रथम दिन ही नीरव निशाके अपार अन्धकारमें उदित ज्ञानके प्रकाशमें इस अनुपम पुरुषार्थीको यों निर्विकल्प दशा सम्प्राप्त हुई। अपने परमोपकारी श्रीगुरुकी निष्कारण कृपा-प्रसादी पाकर श्री सोगानीजीकी आत्मा निहाल हो गई।

अपूर्व, अनुपम अमृत-रस पी लेनेसे उसकी मस्तीने उन्हें मदहोश-सा बना दिया। निरन्तर यही भावनाका संवेग वर्ता कि मैं भावी सर्व काल पर्यन्त इसी ज्ञानानन्दकी मस्तीमें डूबा ही रहूँ और बस, निरन्तर आनन्दामृत पान करता रहूँ।

जब तक वे सोनगढ़ रहे दिनमें पूज्य गुरुदेवश्रीकी स्वानुभवरसमय पुरुषार्थ प्रेरक वाणीका अमृत-बोध लेते और रात्रिमें अपने कमरेमें

बैठ निजात्मरस-पानका उद्यम किया करते चेतनाके ऊर्ध्व शिखरोंकी ओर उनका आरोहण होता रहता। और सतत स्वरूपरस-घोलन चलता रहता। वे आत्माकी ही धुनमें रमे रहते और निरन्तर आध्यात्मिक तन्द्रा बनी रहती।

इस तरह एक-एक पल सरकता गया और न जाने कब १०-१२ दिन निकल गये, उन्हें पता ही न था। तत्कालीन राजनीतिक उथल-पुथल-जन्य हिंसात्मक दंगोंकी भयावह परिस्थितिमें भी वे श्रीगुरुके दर्शनार्थ इतने भावावेशमें थे कि उन्होंने परिवारवालोंको अपने सोनगढ़ जानेके सम्बन्धमें सूचना तक नहीं दी थी। घरवाले यह समझते रहे कि कारोबारके सिलसिलेमें कहीं गये हैं और दो-चार दिनोंमें लौट आयेंगे। किन्तु जब हफ्ते-दस दिनों तक भी उनका कोई समाचार तक नहीं मिला तो वे चिंतातुर हो उठे। काफी छानबीन करनेपर जब उनकी सोनगढ़ जानेकी प्रबल सम्भावनाक आभास मिला तब उनके चिंतातुर परिवारने एक तार सोनगढ़ भी दिया। उस तारके सन्देशने श्री सोगानीजीकी आध्यात्मिक तन्द्रामें विक्षेप डाल दिया। और उन्हें मजबूरन अपने भवमोचक श्री गुरुके साक्षात् चरणसान्निध्यको छोड़कर अजमेर लौटना पड़ा।

सहज उदासीनता :

श्री सोगानीजीको ज्ञानदशा पूर्व भी संसाराशक्ति नहीं थी। उन्हें सांसारिक प्रसंगोंमें कहीं कोई रस, रुझान या रुचि नहीं रहती थी। उनके बच्चे किन-किन स्कूलोंमें व श्रेणियोंमें पढ़ते हैं ? उनके लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा व विकासकी क्या व्यवस्था है ? घर-गृहस्थीकी आवश्यकताओंकी सम्पूर्ति हेतु क्या योजना है ? - इत्यादि अनेक प्रश्न व उलझनें जहाँ सामान्य मानवके अन्तर् मनको प्राय: व्यथित व कचोटते रहते हैं, वहाँ ऐसे प्रश्नोंने उनकी अन्तर्मुख मनोदशाको

कभी आन्दोलित या विचलित नहीं किया।

सोनगढ़से लौटनेके पश्चात तो उनके परिणामोंमें एक विशेष प्रकारकी उदासीनता घिरी रहने लगी और निर्लिप्त भावसे परमानन्दकी खुमारी निरन्तर वर्तने लगी। सर्व पूर्व प्रारब्ध उदय-जन्य सांसारिक उपाधियों व झंझटोंकी ओर अस्थिरतावश जाता उनका उपयोग भी, उन्हें वर्तती सहज स्वरूपपरिणतिको, भाररूप प्रतीत होता व उसमें भट्ठीमें जलनेसी पीड़ाका वेदन होने लगता था। तथापि सर्व उदयगत् विभावभावोंको, निरुपायतावश अविषम परिणामसे वेदते रहना ही उनकी नियति थी। तत्त्वत: सहजता, सहज समता व सहज उदासीनता सर्व ज्ञानीपुरुषोंका सनातन सदाचार होता है।

कलकत्ता प्रवास :

निवृत्ति लेकर, श्रीगुरु-चरणसान्निध्यमें रहकर एकान्तिक स्वरूप-साधनाके प्रति श्री सोगानीजीको असीम आकर्षण व भावना वर्तती थी; फिर भी उन्हें नियतिके पाशमें बँधकर, लाचारीसे सन् १९५० में अजमेर छोड़ना पड़ा; औप अपनी भावनाके अत्यन्त प्रतिकूल क्षेत्र-असत्संग-प्रसंगके बाहुल्यसे घिरे व कोलाहलयुक्त, मायामयी महानगर `कलकत्ता' में एक प्रसिद्ध कपड़ा मिलकी एजेन्सीके कार्यभारवश जाना पड़ा। सन् १९५८में उनका पूरा परिवार भी कलकत्ता आ बसा। और उक्त वस्त्र व्यवसायकी प्रवृत्तिमें उनका बाह्य शेष जीवन भी कलकत्तामें ही व्यतीत हुआ ।

इसी बीच उन्होंने सत्संगकी भावनासे सन् १९५३ से कलकत्ता स्थित बड़े मन्दिरजीमें शास्त्रस्वाध्यायकी प्रवृत्ति शुरू की थी। तथा अन्तिम वर्ष (सन् १९६४) में भी उन्होंने लगभग ४० दिनों तक सामूहिक शास्त्र-स्वाध्याय किया था।

सन् १९५६ में अपने जीवन-उद्धारक पूज्य गुरुदेवश्री कहानजी

स्वामीके तीर्थयात्राके प्रसंगमें कलकत्ता पधारनेके पूर्व जब उनके भव्य स्वागतार्थ कलकत्तामें मुमुक्षुमण्ड़लकी स्थापना हुई तो उसके प्रथम अध्यक्षके रूपमें भी सोगानीजीको मनोनीत किया गया था।

अन्तर वैराग्य :

जब श्री सोगानीजी शुरुआतमें कलकत्ता आये तब इस भागदौड़ व दावँ-पेचवाली नगरीकी ६०-७० लाखकी आबादीमें उनके पास न रहनेके लिए स्थायी जगह थी और न खाने-पीने आदिकी कोई समुचित व्यवस्था; फिर भी, ऐसी प्रतिकूलतामें भी उन्हें भान होता कि मानों इस अथाह मानव-समुदायमें `मैं एक अकेला ही सुखी हूँ', अरे ! निश्चित ही वे सुखी थे। आत्मानन्दका रसास्वाद करनेवाला स्वयंको सुखी ही क्या, सर्व सुखी महसूस करता है।

उन्हें संसार अरुचिकर था, फिर भी इस संसारके कीचड़में उन्हें फँसना पड़ा। पूर्व निबन्धित प्रारब्धवश आ पड़े इस सांसारिक कीचड़में अपने जड़ शरीरका योग देते हुए भी उनकी आत्मा निरन्तर अपने घोलनमें रहती। जब-जब भी उदयगत बाह्य संसार उन्हें अपनी ओर खींचता, गृहस्थीके जंजाल अपनी ओर आकर्षित करते तो वे यही कहते थे : `अरे मुझसे कुछ भी आशा मत रखो, पंगु समझकर दो समयका भोजन शरीर टिकानेके लिए दो।'

श्री सोगानीजीकी बुद्धिमत्ता, कार्यकुशलता व नीति सम्पन्नताके कारण उनके पास जब तब नये व्यवसायके अनेक प्रस्ताव आते थे परन्तु उपाधिको सीमित रखनेकी भावनावश वे ऐसे प्रस्तावोंको टाल दिया करते थे; यद्यपि उन्हें परिवारकी आवश्यकताओंके बढ़ते बोझका खयाल था।

यद्यपि पूर्व अज्ञानदशामें निबन्धित कर्मोंके कारण उनका सांसारिक-प्रवृत्तियोंसे बाह्य सम्बन्ध तो नहीं टूट सका, बलवान उपाधियोग अन्त

तक रहा, वे सर्व उपाधियोंके बीच निर्लिप्त रहते हुए भी प्रवृत्तिका भार ढ़ोते रहे; तथापि उनकी आत्म-समाधिधारा जीवन पर्यन्त अबाधित वर्तती रही। ज्ञानधारा व कर्मधारा निरन्तर प्रवहमान रही। सहज पुरुषार्थ वर्धमान होता रहा। जीवन पर्यन्त सहज उदासीनता व अन्तर वैराग्य उनके परिणामोंमें उग्रतासे वर्तता रहा। एक ओर उनकी प्रवर्तती उग्र अध्यात्मदशा व दूसरी ओर प्रबल उपाधियोगका परिचय उन्हींके पत्रोंसे मिलता है। ज्ञानीकी ऐसी चित्र-विचित्र व अटपटी दशाओंके अनेक पहलुओंको प्रदर्शित करते श्री सोगानीजीके पत्रोंके कुछ अंश यहाँ उद्धृत हैं :

* `मैं त्रिकाली सहज ज्ञानस्वभावी ध्रुव पदार्थ हूँ व प्रतिक्षण ज्ञानरूप परिणमन मेरा सहज स्वभाव है; जड़ आश्रित परिणाम जड़के हैं।' पूज्य गुरुदेवके इस सिद्धांतकी घूँटीने क्षणिक परिणामकी ओरके वलणके रसको फीका कर दिया है व सहज स्वके सिवाय कोई कार्यमें रस नहीं आता है।' (पत्रांक :१, अजमेर/२२-३-१९४९)

* `यहाँ संग असत्संगका है, उदय नीरस है। वहाँ (-सोनगढ़) का योग निकट भविष्यमें होनेके आसार दिखाई नहीं देते, अत: अत्यन्त उदासीनता है व व्यवहारमें तो बेभान-सी दशा हो जाया करती है।' (पत्रांक :७, कलकत्ता/१८-५-१९५३)

* `स्वसंग, गुरुसंग व मुमुक्षुसंगके अलावा दूसरे संगको नहीं इच्छते हुए भी, अरे प्रारब्ध ! विष-तुल्य संगमें रहना पड़ रहा है, खेद है।' (पत्रांक :९, कलकत्ता/५-७-१९५३)

* `मोक्षमार्गीको कुटुम्बीजनों मध्ये सुख मिलता होवे यह कल्पना ही गलत है।

`जाल सौ जग-विलास, भाल सौ भुवन वास,
काल सौ कुटुम्ब काज, लोक-लाज लार सौ।' (श्री बनारसीदास)

उसे तो निरन्तर आत्म-रमणता चाहिए। `अरे जिसे धार्मिक जनोंके संग भी नहीं रुचते, उसे कुटुम्बसंग तो रुच ही कैसे सकता है?'

(पत्रांक : १७, कलकत्ता/२५-७-१९५४)

* `व्यवहारसे व खास तौरसे अशुभ-योगसे पूर्ण निवृत्ति चाहते हुए भी, गृहस्थ आदि व्यवसायिक जंजालोंका ऐसा उदय है कि मन नहीं लगे वहाँ लगाना पड़ रहा है, बोलना नहीं चाहते उनसे बोलना पड़ता है, ऐसी योग्यता है।'

(पत्रांक :२६, कलकत्ता/१६-१२-१९६१)

सत्संग भावना :

श्री सोगानीजीको अपने श्रीगुरुके चरणोंमें निवासकी भावनाका प्रबल आवेग रह रह कर उद्वेलित करता रहता था; तथापि पूर्व प्रारब्धयोगके बिना उन्हें सांसारिक जंजालोंसे विमुक्त हो सकनेका योग नहीं मिलता था। यद्यपि वे सर्व प्रथम सोनगढ़ आये ते तब ही उनकी तीव्र भावना थी कि `कोई मकानका प्रबन्ध कर निरन्तर गुरुदेवके चरणोंमें लाभ उठाऊँ' (देखें पत्रांक - १९) परन्तु वैसा योग तो नहीं बन पाया; बल्कि कभी-कभी तो लम्बे अन्तरालके पश्चात् ही श्रीगुरुके दर्शनोंका योग बनता था।

श्री सोगानीजी सर्व प्रथम सन् १९४६में सोनगढ़ पधारे थे; तत्पश्चात् उनका सोनगढ़ आनेका योग क्रमश: सन् १९४८, १९५२, १९५९, १९६०, १९६१, १९६२, १९६३ ही बन पाया था और वह भी मात्र थोड़े-थोड़े दिनोंके लिये ही। अभिवांछित योग न मिलनेके प्रति उन्हें निरन्तर खेद वर्तता रहा। उन्हें अपने श्रीगुरुके चरण-सान्निध्यमें न रह पानेकी कितनी वेदना सालती थी, जिसकी झलक उनके पत्रोंमें मिलती है। उदाहरणार्थ :

* `पू. गुरुदेवकी स्मृति इस समय भी आ रही है व आँखोंमें

गर्म आँसू आ रहे हैं कि उनके संग रहना नहीं हो रहा है।'

(पत्रांक - ४, कलकत्ता/२१-६-१९५३)

* `यहाँ तो पुण्ययोग ही ऐसा नहीं है कि वहाँ (सोनगढ़) का लाभ शीघ्र-शीघ्र मिला करे । निवृत्तिके लिए जितना अधिक छटपटाता हूँ उतना ही इससे दूर-सा रहता हूँ, ऐसा योग अबके हो रहा है। कई बार तो फूट-फूट कर रोना-सा आ जाता है। शायद ही कोई दिवस ऐसा निकलता है कि बारम्बार वहाँ का स्मरण नहीं आता होवे।' (पत्रांक :८, कलकत्ता/२८-६-१९५३)

* `अरे विकल्प ! यदि तुझे तेरी आयु प्रिय है तो अन्य सबको गौण कर व गुरुदेवके संगमें ले चल, वरना उनका दिया हुआ वीतरागी अस्त्र शीघ्र ही तेरा अन्त कर डालेगा।'

(पत्रांक :९, कलकत्ता/५-७-१९५३)

* `रह-रह कर विकल्प होता रहता है कि कमसे कम एक-दो वर्ष निरन्तर अलौकिक सत्पुरुषके सहवासमें रहना होवे, परन्तु प्रारब्ध अभी ऐसा नहीं दिखता है।'

(पत्रांक :१४, कलकत्ता/१-२-१९५४)

* `पुण्ययोग नहीं है, वहाँ (-सोनगढ़) का संयोग नहीं है, अरुचिकर वातावरणका योग है । महान् अफसोस है।'

(पत्रांक : १५, कलकत्ता/ २५-६-१९५४)

* `हे प्रभो ! शीघ्र इधरसे निवृत्ति होकर गुरु-चरणोंमें रहना होवे, जिन्होंने अखण्ड़ गुरुवासमें चरना सिखाया है, यह ही विनती।'

(पत्रांक : २७, कलकत्ता/ ९-४-१९६२)

निवृत्ति भावना :

वस्तुत: निवृत्तिकी तीव्र अभिलाषा सर्व ज्ञानी पुरुषोंको निरन्तर वर्तती ही है। श्री सोगानीजी भी निवृत्तिके लिए सतत छटपटाते

रहे, निवृत्तिके लिए योजना घड़ते परन्तु वैसे पुण्ययोगके अभावमें वे फलित न हो पाती; तथापि निवृत्तिकी भावना कितनी बलवती थी और उसकी वार्ता भी उन्हें कितनी रुचिकर थी, उसका परिचय निम्न उद्धरणसे स्पष्ट मिलता है :

* `आपने लिखा कि अब निवृत्ति काल पका - यह पढ़कर बिजलीके वेगकी तरह आनन्दकी लहर आई थी; कारण पूर्व निवृत्ति ही विकल्परूपसे निश्चये भजी थी; ऐसा पूरा प्रतीतिमें आता है।

(पत्रांक :२९, कलकत्ता/३-९-१९६२)

❁ एकान्त प्रियता :

श्री सोगानीजीको एकान्तवास अति रुचिकर था। वे जहाँ तक सम्भव होता वहाँ तक किन्हीसे मिलना-जुलना व परिचयमें आना पसन्द नहीं करते थे। वे जहाँ हो वहाँ एकांत खोजते रहते। प्राय: उन्हें अपने कमरेमें बन्द रहना ही अभीष्ट था। भीड़ व कोलाहलभरे वातावरणमें उनका दम घुटने-सा लगता था।

उनके परिवारके कलकत्ता आ जानेके पहले जब भी ३-४ दिनोंकी छुट्टियोंमें बाजार आदि बन्द रहनेकी वजहसे बाहर जानेकी आवश्यकता नहीं समझते तो वे ढाबेसे भोजनकी थाली अपने कमरेमें ही मँगा लेते और एक बारमें जो भी खाना थालीमें आता उसे ही खा कर, थाली कमरेके दरवाजेके बाहर सरका देते। यों ऐसे प्रसंगों पर वे अपने निवासस्थानसे तीन-तीन चार-चार दिनों तक बाहर ही नहीं निकलते।

वे लम्बी अवधि तक कलकत्ता रहे फिर भी खास परिचित मार्गोंके अलावा दूसरे मार्गोंसे अपरिचित ही रहे।

जब सन् १९५३ के श्री बाहुबली-महा मस्तकाभिषेक समारोहके समय एकांतवासकी यह समस्या जटिल थी तो वे देर रात गये

अकेले ही पहाड़के ऊपर चढ़ जाते और वहीं पूरी रात अपने स्वरूप-ध्यान-घोलनमें गुजार देते, तथा फिर प्रात: ही पहाड़से उतरकर कमरे पर जाते।

एकान्तवासके प्रति रुझानके परिणाम स्वरूप बाह्य जगत उनके लिए अपनी उपस्थिति खोता जाता था।

तत्त्वचर्चाके दौरान एक बार उन्होंने बतलाया कि `मुझे तो एकांतके लिए समय नहीं मिले तो चैन ही नहीं पड़ता।' ...`आखिर तो एकांत (अकेला) ही सदा रहना है। तो शुरूसे ही एकांतका अभ्यास दो-चार-पाँच घण्टा चाहिये।'

❁ श्री सोगानीजीकी दृष्टिमें सांसारिक प्रसंग :

समस्त लोक समुदाय विवाह जैसे प्रसंगको मांगलिक, शुभ व आनन्द-उमंगका महत्वपूर्ण अवसर मानता है। परन्तु श्री सोगानीजीने अन्तरंग साधर्मीको अपने पुत्रके विवाहका निमन्त्रणपत्र भेजा अवश्य, पर साथमें जो विचार उन्होंने लिखे उससे उनकी सांसारिक-प्रसंगोंकी तुच्छता और सत् प्रतिकी अनन्य महिमा ही उजागर होती है। तदर्थ पत्रांक : २७, कलकत्ता/९-४-१९६२ का निम्न उद्धृत अंश द्रष्टव्य है :

* `बड़े पुत्रकी शादी ता. १६-४ की है; पुण्यवानोंको शुभप्रसंगका योग है, उन्हें अशुभ प्रसंग पर बुलवाना ठीक नहीं है; फिर भी लौकिक व्यवहारवश दो पत्रिकाएँ भिजवाई हैं।'

❁ निर्मानता :

सर्व लौकिकजनोंको जहाँ हो वहाँ - घर, परिवार, समाजमें सर्वत्र अपने प्रभुत्व-मान-सन्मान-स्थान प्राप्तिकी अन्तरंग अभिलाषा निरन्तर वर्तती है। वहीं सच्चे आत्मार्थीकी ऐसे सभी प्रसंगोंसे दूर रहनेकी सहज वृत्ति रहती है। यदि उसकी विशेष योग्यता हो तो भी वह

उसे गोपित रखना चाहता है। अपनी प्रसिद्धिका अभिप्राय उसे नहीं रहता। श्री सोगानीजीकी आत्मदशा अद्भुतरूपसे वर्तती थी परन्तु वे उसे प्रसिद्ध नहीं करना चाहते थे। फिर भी उनसे एक अन्तरंग साधर्मीने दूसरे ढंगसे अनुरोध किया कि : पूज्य गुरुदेवश्रीके निमित्तसे आपको आत्मबोध हुआ है, इस बातको जानकर उन्हें सहज प्रसन्नता होगी, अत: आपकी ज्ञानदशाके बारेमें गुरुदेवश्रीको बतलानेका विकल्प है। तब उन्होंने कहा : `कोई जाने, नहीं जाने इसमें आत्माको कोई फायदा नहीं है। अनन्त सिद्ध हो गये हैं, (लेकिन) आजकल कोई उनके नाम तक भी नहीं जानता है। असंख्य सम्यग्दृष्टि (तिर्यंच) ढाई द्वीप बाहर मौजूद हैं, उन्हें कौन जानता है।' उनका यह प्रत्युत्तर उनके वर्तते निम्न अभिप्रायके अनुरूप ही था। यथा :

`फूल बागमें हो या जंगलमें, उसको कोई सूँघो या न सूँघो, उसकी कीमत तो स्वयंसे है, कोई सूँघे तो उसकी कीमत बढ़ नहीं जाती अथवा नहीं सूँघे तो वह मुरझा नहीं जाता। इसी तरहसे कोई अपनेको जाने या न जाने उससे अपना मूल्य थोड़ा ही है? अपना मूल्य तो अपनेसे ही है। कोई मान-सन्मान देवे, न देवे-सब धूल ही धूल है, उसमें कुछ नहीं है।'

निस्पृहता :

श्री सोगानीजी जिस कपड़ा मिलकी एजेन्सीका व्यवसाय करते थे उस मिलके मालिकको एकबार जब उनके धर्म-प्रेम व योग्यताका पता चला तो उन्होंने कौतूहलवश उनको जब तब अपने घर आकर धर्म समझानेको कहा। परन्तु उन्होंने उनमें वास्तविक धर्म-जिज्ञासाका अभाव तथा कौतूहलता देखकर, समयाभावके बहाने उनके उक्त प्रस्तावको टाल दिया। श्री सोगानीजीके मनमें तो (बादमें उन्हीं के बतलाए अनुसार) यों विचार आया कि : यह तो सांसारिक आवश्यकता

पूर्ति हेतु उनके पास आनेकी विवशता है; अन्यथा ऐसे कार्योंके लिए आत्मार्थीके पास समय ही कहाँ ? जहाँ ऐसी परिस्थितिमें सामान्य लौकिक जन जिनसे अपने अर्थ-प्रयोजनकी सिद्धिकी अपेक्षा रहती है वे उनके अनुरूप वर्तन करते हैं, वहीं श्री सोगानीजीका उक्त प्रकारका वर्तन उनकी निस्पृहवृत्तिको उजागर करता है।

तत्त्व-प्रेम :

तत्त्व-प्रेमी जिज्ञासुओंके प्रति श्री सोगानीजी इतने करुणावन्त थे कि व्यावसायिक व निजी प्रवृत्तियोंके बीच भी समय, स्थान आदि सब बातोंको गौण कर उनकी जिज्ञासाओंका समाधान कर दिया करते थे। कई बार तो वे सड़कके किनारे खड़े-खड़े ही काफी देर तक धर्म-चर्चा करते रहते थे।

उनका एक मुमुक्षुसे व्यावसायिक सम्बन्ध भी था, उससे व्यापारिक कार्य यथाशीघ्र निपटा कर वे धर्म-चर्चामें लग जाते थे।

वे आखिरके वर्षोंमें धार्मिक प्रसंगोंके अवसर पर मुमुक्षुओंके द्वारा घिरे रहने लगे, परन्तु समय मिलते ही अकुलाए बिना उनके प्रश्नोंके उत्तर दिया करते थे।

रुचिवन्त अन्तरंग परिचयवाले साधर्मियोंके साथ तो उन्हें देर रात गये तक धर्म-चर्चामें व्यस्त देखा जाता था।

व्यवसायिक कामसे थक कर लौटने पर भी यदि कोई मुमुक्षु तत्त्व-जिज्ञासा लिए घर पहुँच जाता तो वे तत्काल उसकी उलझन दूर कर देते थे।

निश्चय-व्यवहारसंधि युक्त जीवन :

सर्व ज्ञानीधर्मात्माओंकी साधक परिणतिमें निश्चय-व्यवहारका अद्भुत सामंजस्य वर्तता है। तत्त्वत: साधकदशाका ऐसा ही यथार्थ स्वरूप होता है। निश्चय-व्यवहाररूप प्रवर्तती धर्मदशाके संतुलन व सुसंगत

संधिके आधारसे ही धर्मात्माकी दशाका प्रमाणीकरण होता है। श्री सोगानीजीकी इन दोनों दशाओंके बीच वर्तते सम्यक् संतुलनके प्रमाण उनके पत्र है। यथा :

* `सत्‌गुरु द्वारा प्राप्त अनुभव ऐसे कालमें विषमता आदिके समतापने वेदे व अप्रतिबद्ध स्वभावसन्मुख तीव्र वेग करे, यह ही सबसे श्रेष्ठ है व शीघ्र मनोरथ पूर्ण होनेका यह शुभ लक्षण है।'
(पत्रांक : ७, कलकत्ता/१८-५-१९५३)

* `अहो गुरुदेव ! आपने तो इन दोनोंसे (पुण्य-पापसे) ही निराली वृत्ति दिखा दी है, जो कि इनके होते हुए भी विचलित नहीं होती, खूँटेके (ध्रुवके) सहारेसे डिगती नहीं है, उसे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावका प्रतिबन्ध नहीं है। पू. गुरुदेव कहते हैं कि जो कुछ लाभ है सो तो यह वृत्ति ही है, अनन्त सुखोंके पिण्डके साथ रहती है, फिर चिन्ता काहे की ? यह तो स्वयं स्वभावसे ही चिन्ता रहित है, निश्चिंतवृत्तिमें चिन्तित वृत्तिका तो अत्यन्त अभाव है। हे भगवान ! आपकी यह वाणी मस्तिष्कमें नित्य घूमती रहे, यह ही भावना है।
(पत्रांक : १५, कलकत्ता/२५-६-१९५४)

* `प्रदेशे-प्रदेशे मैं मात्र चैतन्य-चैतन्य व आनन्द ही आनन्दसे ओतप्रोत वस्तु हूँ। स्वरूपरचना पर्यायमें स्वत: ही हुए जा रही है। इच्छा तोड़ूँ, स्वरूपकी वृद्धि करूँ आदि विकल्पोंका जिस सहज स्वभावमें सहज ही अभाव है। अरे ! सहज शुद्ध पर्यायका भी जिस त्रिकाली ध्रुव वस्तुमें सहज ही अभाव है, ऐसी नित्य वस्तु मैं हूँ, त्रिकाली परिपूर्ण हूँ।' (पत्रांक :१७, कलकत्ता/२५-७-१९५४)

* `परिणतिको आत्मा ही निमित्त होवे अथवा भगवान .... भगवानकी गुंजार करते आए (-श्री कहानजी स्वामी), अन्य संग नहीं, यह ही भावना।' (पत्रांक :२६, कलकत्ता/१६-१२-१९६१)

* `विकल्पोंको तो धधकती हुई भट्ठीके योगोंका निमित्त है व उस मध्ये हो रहा है, जबकि चैतन्यमूर्ति विकल्पोंको छूनेवाली भी नहीं है, अधूरी दशाके विकल्पांशोंमें श्रद्धामें जमी हुई मूर्तिका एकरस आलिंगन कहाँ ?' (पत्रांक :२९, कलकत्ता/३-९-१९६२)

* `वर्तमानमें ही परिपूर्ण हूँ । वर्तमानसे ही देवादिक पर अथवा उन आश्रित रागसे किंचित् मात्र लाभका कारण नहीं । लाभ मानना ही अलाभ है।' (पत्रांक :३०, कलकत्ता/८-११-१९६२)

यों श्री सोगानीजीके व्यक्तित्वमें एक ओर निश्चय प्रधानताकी विस्मयकारी शैली व दूसरी ओर गुरुभक्ति व निमित्तका यथार्थ मूल्यांकनका अत्यन्त सुन्दर व स्वाभाविक सन्तुलन तैरता है, जो आत्मार्थियोंके लिए सतही तौर पर विरोधाभास दिखनेवाले ऐसे अभिप्रायमें अंतर्निहित परिणामकी अविनाभावी व सहज यथार्थ दिशारूप पहलूके रहस्यको समझनेमें अत्यन्त सार्थकर निमित्त है। यों वीतरागमार्गके पथिक ही भक्ति व गुरु-महिमाके आवरणमें छिपे निजरसको यथार्थत: संवेदित करते हैं।

❀ गुरु-भक्ति :

यद्यपि श्री सोगानीजीने निरपवादरूपसे स्वत्त्वकी सर्वोच्चता व एकमात्र उसीके अवलम्बनको मुक्तिमार्गके रूपमें सर्वत्र गाया है, तथापि जिन श्री गुरुके निमित्तसे उन्होंने अनादि संसारके एकच्छत्री सरदार दर्शनमोहको परास्त कर, मोक्षमार्गके प्रथम सोपानको पाया है; उनके अनहद उपकारके मूल्यांकनवश साधकके हृदयमें किस असाधारण सर्वार्पणता, भक्ति, महिमा, विरह-वेदन स्पंदित व संवेदित होती रहती है उसका विस्मित-सा कर देनेवाला जीवन्त उदाहरण भी उन्हींके पत्रोंमें सुस्पष्ट मिलता है । यथा :

* `वहाँ (-सोनगढ़)की धूलके लिए भी तड़पना पड़ता है। गुरुदेवके

दृष्टांत अनुसार भभकती भट्ठीमें गिरनेका-सा प्रत्यक्ष अनुभव यहाँ एक दिनमें ही मालूम होने लग गया है। धन्य है वहाँके सर्व मुमुक्षु, जिनको सत्पुरुषका निरन्तर संयोग प्राप्त है।'

(पत्रांक :६, अजमेर/१८-४-५३)

* `हे गुरुदेव ! आपकी वाणीका स्पर्श होते ही मानो विश्वकी उत्तमोत्तम वस्तुकी प्राप्ति हो गई। क्या मैं मुक्त होनेवाला हूँ। अरे ! शास्त्रोंमें जिस मुक्तिकी इतनी महिमा बखानी है, उसे आपके शब्द मात्रने इतना सरल कर दिया।'

(पत्रांक :१७, कलकत्ता/२५-७-१९५४)

* `भरतखण्डका अलौकिक कर्ता-कर्म अधिकार, आत्मरससे ओतप्रोत वक्ता, साधक मुमुक्षुगण श्रोता, जिनालयकी सामूहिक भक्ति, निरन्तर अमृतवाणीसे संस्कारित - तृप्त भूमिस्थान आदि समवसरण-से दृश्य पुण्यहीनको नहीं सम्भवते, अत: वियोग है।'

(पत्रांक :२४, कलकत्ता/१९-१०-१९६१)

* `शुभयोगमें भी थकान अनुभव करनेवाले जीवके लौकिक योगकी तीव्र दु:ख दशा पर.. हे करुणासिंधु ! करुणा करो...करुणा करो, यह ही विनती।' (पत्रांक :२४, कलकत्ता/१९-१०-१९६१)

* `सतत दृष्टिधारा बरसाते, अखण्ड़ चैतन्यके प्रदेश-प्रदेश सहज महान् दीपोत्सवकी क्षणे-क्षणे वृद्धि करते श्री गुरुदेवको अत्यन्त भक्तिभावे नमस्कार।' (पत्रांक :२५, कलकत्ता/१-११-१९६१)

* `दरिद्रीको चक्रवर्तीपनेकी कल्पना नहीं होती। पामरदशावालोंको `भगवान हूँ...भगवान हूँ' की रटण लगाना, हे प्रभो ! आप जैसे असाधारण निमित्तका ही कार्य है।'

(पत्रांक :२६, कलकत्ता/१६-१२-१९६१)

* `अत: तीर्थंकरसे भी अधिक सत्पुरुषका योग प्राप्त हुआ है,

जिनकी नित्य प्रेरणा उधरसे विमुख कराकर स्वयंके नित्य भण्डारकी ओर लक्ष्य कराती रहती है, यहाँ से ही पूज्य गुरुदेवके न्याय अनुभव सिद्ध होकर दृढ़ता प्राप्त कराते हैं।'

(पत्रांक :४४, कलकत्ता/१०-९-१९६३)

अध्यात्म-दशा :

यद्यपि विकल्पात्मक वृत्तियोंका तो सहज ही अनुमान कर लिया जाता है परन्तु निर्विकल्पताका माप तो बाह्यसे नहीं किया जा सकता है, वह तो स्वयंके अनुभवका विषय है। और अनुभव लेखनीमें व्यक्त करना अशक्य होता है। तथापि श्री सोगानीजीने अपनी प्रवर्तती अध्यात्मदशाको अनुपम पद्धतिसे यत्किंचित् इंगित किया है। उनकी अंतर्दशाके परिचयार्थ उनके पत्रों व अन्य प्रसंगोंको सूक्ष्मतासे निरीक्षण करें तो उसकी प्रतीति सहज ही हो आती है।

उनकी आत्मपरिणति स्वस्वरूपमें उग्रतासे जमी रहती, निरन्तर स्वरूपरस प्रगाढ़ होता रहता और स्वरूपघोलन व उसकी धुन अनवरत चलती रहती थी। तादृश उनके मन-वचन-काय योग भी इतने उपशमित थे कि जिससे वे जनसमुदायमें भी किसी पैनी नजरवालेके द्वारा सहज पहचाननेमें आ सकते थे।

उदाहरणार्थ : बम्बईमें एकबार वे एक मुमुक्षुके यहाँ भोजन करने गये, वहाँ अन्य लोग भी आमंत्रित थे, जब भोजनके पश्चात् सभी चले गये तब उसके वयोवृद्ध रसोईवालेने उत्सुकतावश पूछा कि वे एक नये व्यक्ति कौन थे ? उस मुमुक्षुने इस प्रश्नका कारण जानना चाहा तो रसोईवालेने कहा कि अपनी जिंदगीमें मैंने अपने हाथों हजारों लोगोंको जिमाया है परन्तु आज पहली बार एक प्रतिमाको जिमाया है। वह `प्रतिमा' श्री सोगानीजी थे।

यद्यपि वे बाह्यमें खाने-पीने-बोलने-चलने आदिकी प्रवृत्तियोंमें

दिखलाई देते, तथापि उनके गाढ़ अन्तरंग परिचितोंको ऐसा स्पष्ट खयाल आता कि उनकी आत्मपरिणति अन्तरमें अति आश्चर्यकारी रूपमें जमी हुई है।

अपने निवास स्थानमें भी उन्हें अपनी शारीरिक आवश्यकताओंका खयाल तक नहीं रहता था। अपने वस्त्रों आदिका भी उन्हें पता नहीं रहता था। घरमें क्या है और क्या नहीं, इसकी जानकारी उन्हें नहीं रहती थी। जो आमदनीकी रकम उनको मिलती वे उसे अपनी धर्मपत्नीको सोंप देते।

उन्हें स्वरूपध्यान-घोलनकी मुख्यता वर्तती थी और अन्य सबकी गौणता, फिर वह चाहे भोजन हो या व्यवसाय या फिर कुछ अन्य। वे अपने कमरेसे बाहर कब निकलेंगे या कमरेमें कब चले जायेंगे या किस समय व्यावसायिक प्रवृत्तिहेतु बाजार जायेंगे, कुछ भी निश्चित नहीं था।

उन्हें अपनी पसंदीदा भोजन-सामग्री कुछ न थी; क्या खाया और कैसा था, कुछ भान नहीं रहता था। कभी तो ऐसा भी होता कि वे भोजन करनेके लिए कमरेसे आये और एक-आध रोटी खा कर ही पुन: कमरेमें चले जाते और द्वार बन्द कर लिया करते।

बहुधा दीर्घ समय ध्यानमें बैठनेके दौरान थकान लगनेपर वे लेट जाते थे परन्तु पैरोंकी पद्मासनमुद्राको यथावत् रखते हुए ही- इससे स्पष्ट है कि शारीरिक अनुकूलताके लिए वे ऐसे मुद्रा बदल लेते थे, परन्तु उपयोगकी अंतर्मुखताका प्रयास यथापूर्व बना रहता था।

सभी सम्यग्दृष्टियोंके अनन्तानुबन्धी कषाय चौकड़ीका अभाव होनेसे उनके तद्‌निमित्तक निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि-इन तीन प्रकारकी निद्रा-प्रकृतियोंका भी अनुदय रहता है। श्री सोगानीजीका

निद्रा-काल भी सहज ही अति अल्प हो गया था जो उनकी अंतर्दशा व उग्र पुरुषार्थको लक्षित करता है। उन्हींके वचनानुसार : `मुझे तो (सोते वक्त) पहले दो घण्टे नींद नहीं आती, फिर थोड़ी नींद आ जाए जगते ही ऐसा लगे कि क्या नींद आ गई थी !! फिर नींद उड जाती है; और यही (स्वरूप-घोलन) चलता रहता है।

श्री सोगानीजीने अपनी प्रवर्तती दशाके सम्बन्धमें जो उल्लेख किया है, वह प्रस्तुत है :

* `गुरुदेवश्रीके गुरुमंत्रका उपयोग करते रहनेसे अर्थात् अखण्ड ज्ञानस्वभावका आश्रय लेते रहनेसे, जैसे-जैसे पुण्यविकल्प सहज ही टूटते जाते हैं वैसे-वैसे आत्मामें सर्व विशुद्धि सहज ही विकसित होती जाती है।' (पत्रांक :२, अजमेर/२९-९-१९४९)

* `मैं मुझमें मेरे गुरुदेवको देखनेका सतत प्रयत्न करता रहता हूँ और जब-जब गाढ़ दर्शन होता है तब-तब अपूर्व-अपूर्व रसास्वादका लाभ लेता रहता हूँ, मानसिक विकल्परूपी भारसे हलका होता रहता हूँ, सहज ज्ञानघन स्वभावमें वृद्धि पाता रहता हूँ।'

(पत्रांक :३, अजमेर/३-७-१९५०)

* `सहज परम निवृत्तिमय कारणपरमात्माका आश्रय पूज्य गुरुदेवने ऐसा बतला दिया है कि उसके अवलम्बनसे सहज परम अनाकुलता उत्पन्न होती रहती है।' (पत्रांक :५, कलकत्ता/२८-१०-१९५२)

* `जिस आत्मद्रव्यमें परिणाम मात्रका अभाव है उसमें जम गया हूँ । परिणमन सहज, जैसा होता है, होने दो, हे गुरुदेव ! आपके इन वचनोंने अपूर्व निश्चलता पैदा कर दी है।'

(पत्रांक :१९, कलकत्ता/२३-३-१९५६)

* `राग टूटना निश्चित है क्योंकि श्रद्धाने राग-अरागरहित स्वभावका आश्रय लिया है व वीर्यकी क्षण-क्षण उधर ही उदव सहज उन्मुखता

होनेसे ज्ञान-आनंदमयी अरागी परिणाम ही वृद्धिगत होंगे, यह नियम प्रत्यक्ष अनुभवगम्य है।'

(पत्रांक :१९, कलकत्ता/ २३-३-१९५६)

* `यहाँ तो पूज्य गुरुदेवने आत्मगढ़में वास कराकर प्रसाद चखाया है; अत: क्षणिक विकल्प भी सहज विस्मरण होते रहते हैं। कहता हूँ कि : हे विकल्पांश ! तेरे संग अनादिसे दु:ख अनुभव करता आया हूँ, अब तो पीछा छोड़। यदि कुछ काल रहना ही चाहता है तो सर्वस्व देनेवाले परम उपकारी श्री गुरुदेवकी भक्ति-सेवा-गुणानुवादमें ही उनके निकट ही वर्त।'

(पत्रांक :४२, कलकत्ता/२१-८-१९६३)

भावाभिव्यक्ति-क्षमता :

निर्विकल्प क्षणोंमें वर्तित विविध गुणोंके पर्याय भावोंका ज्यों का त्यों सूक्ष्म विश्लेषण प्राय: कहीं पढ़नेमें नहीं मिलता है। और वस्तुस्थिति भी यही है कि निर्विकल्पदशाको विकल्पगम्य करके उसे लेखबद्ध करना ज्ञानीकी विशिष्ट सामर्थ्यका ही द्योतक होता है। निम्नांकित उद्धृत पत्रांश श्री सोगानीजीकी उक्त क्षमताका प्रमाण है :

* `अहो ! बिना विकल्पका कोरा आनंद ही आनंद ! त्रिकाली गुब्बारेको पूर्ण फुलाये बिना (-विकसित किये बिना) अब एक क्षण भी चैन नहीं है। ध्यानस्थ अवस्थामें बैठा हुआ, अथाह ज्ञानसमुद्र व उसमें सहज केलि ! ऐसा अनुभव मानों `मैं ही मैं हूँ' आनंदकी घूँटे पिये जा रहा हूँ - अरे रे ! वृत्ति आनंदसे च्युत होने लगी। पर वाह रे पुरुषार्थ ! तूने साथ रही उग्रताका संकल्प किया, माने अथाहकी थाह, सदैवके लिए एकबारमें ही पूरी ले लेगा। प्रदेश-प्रदेश व्यक्त कर देगा। सहज आनंदसे एक क्षण भी नहीं हटने देगा। पर अरे योग्यता ! तूने पूर्णताके संकल्पका साथ नहीं देकर

अन्तमें च्युत करा ही तो दिया, तो फिर इसका दण्ड भी भुगतना पड़ेगा।'

(पत्रांक :१४, कलकत्ता/१-२-१९५४)

अनूठी कथन-पद्धति :

यद्यपि त्रिकालवर्ती सर्व ज्ञानियोंकी तत्त्वप्ररुपणामें कहीं मतान्तर संभवित नहीं है, क्योंकि ज्ञानी पदार्थ-दर्शनपूर्वक सिद्धांत निरूपित करते हैं, अत: सभीमें तत्त्व अविरोधरूपसे अक्षुण्ण रहता है। सभी आचार्यदेवोंके वचनोंके आलोडनसे यह सुप्रतीत होता है कि सूत्र बदलते हैं पर कहीं सिद्धांत नहीं बदलते। तथापि सर्व ज्ञानियोंकी कथन-शैलीमें साम्य नहीं दिखता क्योंकि प्रत्येककी शैलीमें अपनी मौलिकता वर्तती है।

वास्तविक स्थिति तो ऐसी है कि `त्रिकाली अस्तित्वमयी स्व, इस आश्रित परिणमी हुई आंशिक शुद्धवृत्ति व देवादिक प्रत्येकी आंशिक बाह्यवृत्ति-तीनों अंशोंका एक ही समय धर्मीको अनुभव होता है - ऐसे निर्बाध ज्ञानसे विशिष्ट आत्माको (-सम्यग्ज्ञानीको) प्रमाण कहते हैं। तथापि ज्ञानी धर्मात्मा विवक्षित विवक्षा हेतु कभी द्रव्यार्थिकनय व कभी पर्यायार्थिकनयकी मुख्यता-गौणताकी कथन-शैलीमें विषय प्रतिपादित करते हैं, तो भी सिद्धांत तो त्रिकाल अबाधित ही रहते हैं।

श्री सोगानीजीकी द्रव्यदृष्टिकी प्रधानतावाली शैली रही है, जो अनादि कालसे पर्यायमूढतावश अति जटिल व विकट पर्यायबुद्धिरूपी नाग-पाशके कड़े बंधनमें जकड़े हुए जीवको छुड़ाने हेतु परम उपकारभूत है।

यद्यपि उनकी वाणी अति शांत व मृदु थी फिर भी श्रोताको ऐसा संवेग आ जाता कि मानो तीव्र पुरुषार्थसे अभी छलांग लगाकर आत्मा आत्मामें स्थिर हो जाए। इसी भाँति उनकी वाणीमें कोई ऐसा अद्भुत ज़ोर था कि जिसके स्पर्श होते ही पात्र जीवका अनादिसे

सुषुप्त पड़ा आत्मा एकदमसे खड़ा हो जाए।

श्री सोगानीजीकी अन्य विशेषता यह भी थी कि `ज्ञानभण्डार आत्मामेंसे ज्ञान उघड़ता रहता है, शास्त्रसे नहीं' - इस सिद्धांत वाच्यके वाच्यमें, वे स्वानुभूत ज्ञानके प्रकाशमें ही सभी जिज्ञासाओं और प्रश्नोंका समाधान देते थे। इसी कारणसे प्राय: उनके पत्रों या प्रश्नोत्तर-चर्चामें, शास्त्राधारके बजाय स्वानुभूत ज्ञानाधार मुख्यरूपसे प्रतिबिंबित होता है। और वस्तुस्थिति भी यही है कि आगमादि सभी प्रमाणोंमें अनुभवप्रमाणको ही सर्वत्र सर्वोत्कृष्ट मान्य किया गया है। श्री सोगानीजीकी उक्त विशिष्टताका उदाहरण प्रस्तुत :

एकबार श्री सोगानीजीके साथ चल रही तत्त्व-चर्चामें एक मुमुक्षुने यह प्रश्न किया कि `पर्यायका क्षेत्र भिन्न है या अभिन्न ? इसका उत्तर उन्होंने यों दिया कि : `दृष्टिका विषयभूत पदार्थ, पर्यायसे-क्षेत्रसे भी भिन्न है।' - ऐसे उत्तरमें उपादेयभूत परमपारिणामिकभावकी उपादेयताकी ठोस ध्वनि सन्निहित है।

वहीं जब दूसरे मुमुक्षुने प्रश्न किया कि `अशुद्ध पर्यायका उत्पाद् कहाँसे हुआ और वह पर्याय स्वयं होकर कहाँ गई ?' इसका उत्तर उन्होंने यथार्थ पदार्थ-दर्शनसे परिणमित सम्यग्ज्ञानकी भूमिकामें देखते हुए यों दिया कि `पदार्थकी तीनों कालकी पर्यायें पानीकी तरंगवत् अपने आपमेंसे उद्भव होती है और अपने आपमें विलीन होती है।'

जिनवाणी-प्रेम :

श्री सोगानीजी अपने आत्म-अन्वेषणकी अवधिमें बहुधा धर्मग्रन्थोंके अध्ययनमें खोये रहते थे। तदर्थ व नई-नई किताबें खरीदते रहे, जिससे इनका संग्रह बड़ा होता गया। उनके अध्ययनकक्षमें सत्साहित्यका विपुल भण्डार था। यद्यपि तत्त्वज्ञानके आत्मसात् हो

जानेके पश्चात् उनका पढ़नेके प्रतिका झुकाव क्षीण होता गया था; तथापि पू. गुरुदेवश्रीके प्रवचनोंके प्रकाशन आदि तो उनके पास नियमित आते रहते थे । इस प्रकार निरन्तर वृद्धिगत होते सत्साहित्यके लिए किरायेके छोटे-से घरमें जगह बनानेमें उनकी धर्म-पत्नीको बड़ी असुविधा होती थी। तथापि ऐसे संयोगोंमें वे अत्यंत भावुक होकर कहते `यही तो मेरी पूँजी है। बच्चोंके लिए यही तो विरासतमें छोड़कर जाऊँगा।' ...`आचार्योंके इन्हीं शास्त्रोंसे तो आनंदरस बूँद-बूँद कर टपकता है।'

प्रत्यक्ष सत्श्रुतयोगमें उनके नेत्र पूज्य गुरुदेवश्रीके मुखमण्डल पर ही टिके रहते और वे श्रीगुरुके श्रीमुखसे निर्झरित तत्त्वामृतको स्थिर उपयोगसे इतनी एकाग्रतासे अवधारते रहते कि उनके अगल-बगलमें कौन बैठा हुआ है उसका उन्हें भान तक नहीं रहता था।

प्रचण्ड पुरुषार्थका अवसर :

सन् १९६१ का वर्ष श्री सोगानीजीके लिए सर्वाधिक हादसों भरा रहा। इसी वर्ष उनके पिताश्रीका देहांत हो गया; और उसीके चंद महिनों बाद उनके चाचाश्री हेमचंद्रजी, जिनका उनकी शिक्षा-दीक्षामें विशेष रुचि व योग रहा था, का भी देहावसान हो गया; और इसी वर्षमें उन्हें क्रूर नियतिका एक और झटका लगा जिससे उनके शरीर छूटने जैसा योग हो गया था। लेकिन धर्मात्माओंके लिए तो ऐसे प्रसंग महोत्सव स्वरूप होते हैं।

श्री सोगानीजी एक दिन शामको घर लौट रहे थे। उनके हाथोंमें एक बैग था। उसमें रुपये होनेके भ्रमसे कुछ असामाजिक तत्त्वोंने उनके पेटमें ९ इंच लम्बा छुरा भोंक दिया। वे वहीं गिर पड़े। अत्यधिक रक्तस्त्रावसे उनकी स्थिति गम्भीर और विशेष चिंताजनक हो गयी। अस्पतालमें डॉक्टरोंको आसानीसे उनकी नब्ज (Pulse)

हाथ नहीं आ रही थी। तत्काल शल्यक्रिया करनी पड़ी। यद्यपि शल्यक्रिया सफल रही तथापि कुशल डॉक्टरोंकी कई सप्ताहोंकी यथोचित सार-संभालसे उन्हें स्वास्थ्य लाभ संभव हो सका। परन्तु उनके परिणामोंमें किसी प्रकारकी विह्वलता या आकुलताकी गंध तक नहीं दिखलाई देती थी। उनके परिणाम पूर्ववत् ही अत्यन्त सहज, स्वस्थ व शांत रहे। मानो उन्हें सर्वांग समाधान वर्तता हो और आत्मप्रत्ययी सहज पुरुषार्थ ऐसे विकट क्षणोंमें अत्यन्त वर्धमान हुआ हो परिणामत: पूर्व निबंधित शेष कर्मराशिने अपनी पराजय अंगीकार कर, उस बे-जोड़ पुरुषार्थीके लिए शीघ्र मोक्षगमनका मार्ग प्रशस्त कर दिया हो।

उक्त घटनाने श्री सोगानीजीको विशेषरूपसे आत्मकेन्द्री बना दिया। अब तो वे यथाशीघ्र दायित्व बंधनसे विमुक्त होकर पूर्णत: मोक्षसाधनामें लीन हो जाना चाहते थे। उनकी ऐसी पूर्व भावित भावना अब विशेष बलवती हो गई। जिनधर्मके सत्स्वरुपके सम्बन्धमें उनका अनुभवज्ञान गहनसे गहनतर हो गया। सहजांदसे बाहर झाँकना अब उनके लिए अग्निदाह-सा दु:खद हो गया। यात्राके अंतिम पड़ाव पर आत्मशांतिकी छाया उनके आसपास घनिभूत होने लगी।

प्रतिक्षण वर्धमान होती उनकी आत्मपरिणतिको अब अनात्मभाव अत्यन्त बोझरूप लगते। वे भौतिक संसारकी उस सीमा तक पहुँच चुके थे जहाँसे उसपार छलांग लगाना संभव हो जाता है। अंतर चेतनाके सारे कक्ष यथोचित खुल चुके थे। मोक्षके महा द्वार पर दस्तक पड़ रही थी। देश-कालकी सीमाएँ टूटने लगी और वे पल, प्रति पल निर्वाणपथकी ओर अग्रसर होते रहे। किन्तु यह सब उनके भीतर घट रहा था। बाहरकी दिनचर्यामें कोई व्यतिक्रम नहीं था। पर्यायका कार्य पर्याय द्वारा सम्पादित हो रहा था।

ꕥ मुक्तिदाताके अन्तिम दर्शन :

श्री सोगानीजी मानों अपने नश्वर शरीरसे बंधनमुक्ति पूर्व अपने मुक्ति नियंता, मुक्तिनाथ, निष्कारण करुणा सागरके प्रति साक्षात् श्रद्धा-सुमन समर्पित करने और उनकी पवित्र चरणरजको अन्तिमबार अपने मस्तकपर चढ़ानेके अभीष्टवश, मई १९६४ में `दादर' में समायोजित पू. गुरुदेवश्रीकी मंगलकारी ७५ वीं जन्म जयंतीके प्रसंगपर सपरिवार बम्बई पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने मुक्तिदाताके अन्तिम दर्शन किए और श्रीगुरुके परम उपकारके प्रति कोटि-कोटि आभार स्वीकारते हुए, भावाँजलि समर्पित की। और वहाँसे लौटनेमें वे अपनी धर्मपत्नीको अजमेर छोड़ते हुए, छ जून १९६४ को कलकत्ता आ गये। उस दिन वे अत्यन्त शांत और प्रकृतिस्थ दिखाई दिये, स्वस्थ और प्रसन्न।

ꕥ चिर विदाई :

दूसरे दिन ७ जून १९६४ को श्री सोगानीजीको वातावरणमें अस्वाभाविक गर्मी और घुटनका अनुभव हुआ। उन्होंने अपना पलंग सरका कर पंखेके नीचे करवा लिया। उनके सीनेमें हलका-हलका दर्द होता रहा परन्तु उन्होंने उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया। सारे दिनका उपवास। `श्रीमद् राजचंद्र' ग्रंथ जो पिछले वर्षोंमें उनके लिए धार्मिक स्वाध्यायका आधारभूत रहा था-का परायण। आत्मघोलन व शांतमुद्रा। संध्याको ५ बजे वेदनाका कुछ अधिक भान हुआ; फिर भी स्नान किया, मानो संसारसे प्रस्थानपूर्व जड़ शरीरकी शुद्धि कर लेनेका उपक्रम हो। संयोगवश उस समय घरमें केवल उनकी कनिष्ठ पुत्री कुमुदलता ही थी। पुण्यात्माको शरीर तो एक व्यर्थ बोझा-सा ही लगता था। कालका मानों सदैव स्वागत था। वस्तुत: पुण्यात्माके लिए तो मृत्यु एक बड़ा भारी महोत्सव-सा होता है। शांत शरीर बिस्तर पर पड़ा रहा और वे अपने स्वमें लीन हो चुके

थे। परम पुण्यात्माको ऐसा योग बना कि अकस्मात् हृदयगतिने रुद्ध होकर आत्मार्थीके लिए, शरीरके इस व्यर्थ बोझसे मुक्त कर, वास्तविक मार्ग प्रशस्त कर दिया। डॉक्टर आया, पर उसके लिए करने जैसा कुछ नहीं रहा।

बिजलीकी तरह यह खबर चारों ओर फैल गई। किसीने कल्पना भी नहीं की थी कि इस प्रकार हटात दीप निर्वाण हो जाएगा। श्रद्धापूर्वक उनके पार्थिव शरीरको चन्दन-कपूर युक्त चिताकी भेट कर दिया गया । पीछे छूट गया पुण्यात्माका यश: शरीर।

श्रीगुरुके उद्‌गार :

पूज्य सद्‌गुरुदेवश्री कहानजी स्वामीके पास जब भी सोगानीजीके आकस्मिक निधनकी खबर पहुँची तो उन्होंने वैराग्यपूर्ण सहज भावसे अपने उद्‌गार प्रकट करते हुए कहा : `अरे ! आत्मार्थीने मनुष्य जन्म सफल कर लिया है। स्वर्गमें गये हैं और निकट भवी हैं।'

अनेक आत्मार्थियोंके जिज्ञासा भरे प्रश्न पत्र श्री सोगानीजीके पास आते थे; तादृश सोनगढ़ तथा बम्बईके प्रवासमें अनेक मुमुक्षुओंके साथ तत्त्वचर्चा होती थी; उन सबका वे यथोचित समाधान देते। इनमेंसे विशेष कर सन् १९६२-१९६३में हुई तत्त्वचर्चाको अनेक मुमुक्षुओंने लिख लिया था। सद्‌भाग्यसे वह (उक्त) सामग्री उन मुमुक्षुओंके पास सुरक्षित थी; जिसे पुस्तकाकाररूपमें प्रकाशित करने हेतु पू. गुरुदेवश्रीकी स्वीकृति मिल जाने पर, उस सामग्रीको संकलित-संपादित करके `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' शीर्षकसे ग्रंथारूढ़ किया गया। जब इस ग्रंथकी छपाईका कार्य पूरा हो गया तो उसकी प्रति पू. गुरुदेवश्रीको देते हुए इस ग्रंथ हेतु आशीर्वाद स्वरूप उनके स्वहस्ताक्षरोंकी टिप्पणीकी याचना की तो उन्होंने ग्रंथके सतही

अवलोकनपरसे लिखा कि : `भाई न्यालचंद सोगानी आत्माना संस्कार सारा लईने देह छुट्यो छे।'

परंतु इस ग्रंथके तलस्पर्शी अध्ययनसे श्री सोगानीजीके `अक्षरदेह' परसे पू. गुरुदेवश्रीको स्वर्गस्थ आत्माकी यथार्थ, उच्च, शुद्ध अंतर्दशाकी सुप्रतीति हो गई। और तदुपरांत तो वे अपने प्रवचनोंमें वारंवार श्री सोगानीजीकी आध्यात्मिक उपलब्धियों, उनके असाधारण पुरुषार्थ व मार्मिक शैलीकी मुक्तकंठसे सराहना करते रहे । कभी कभी तो वे भावविभोर होकर यहाँ तक कहते कि :

`श्री सोगानी वैमानिक देवमें गये हैं, वहाँसे निकलकर मनुष्यभव प्राप्त कर झपट करेंगे; और वे मेरे पहले मुक्तिमें जायेंगे । और जब मैं तीर्थंकरभवमें (-चौथे भवमें) मुनिदीक्षाके समय सर्व सिद्धोंको नमस्कार करुँगा तब मेरा नमस्कार उन्हें भी प्राप्त होगा।'

धन्य धन्य हैं ऐसे गुरु !! धन्य हैं ऐसे शिष्य !!

* वस्तुत: श्री निहालचंद्रजी सोगानीकी जीवनगाथा साधनासे सिद्धि तक छलांग लगानेका वृत्त है। कर्मयोग और अध्यात्मयोगकी संभवित साधनाका यह एक अनुपम उदाहरण है। जीवनयात्रा यदि बाह्य जगत्प्रति हो तो उसको समझना और रेखांकित करना आसान है किन्तु वे तो अंतर्जगत्के यात्री थे। उनकी उपलब्धियोंका यथार्थ मूल्यांकन, उस दशाको संप्राप्त अथवा उस दशासंप्राप्तिमें संलग्न जीव ही कर सकता है, अन्य नहीं।

सत्पुरुषोंका प्रत्यक्ष योग जयवंत वर्तो !
-त्रिकाल जयवंत वर्तो !

संकलन व संपादन
- **शशीकान्त म. शेठ**

द्रव्यदृष्टिप्रकाश वचनामृत प्रवचन अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	वचनामृत नंबर	पृष्ठ संख्या
०१.	वचनामृत-६६	००१
०२.	वचनामृत-६३५	००९
०३.	वचनामृत-५३१	०१७
०४.	वचनामृत-१३५	०२३
०५.	वचनामृत-५९	०२६
०६.	वचनामृत-१७३	०२९
०७.	वचनामृत-११९	०३४
०८.	वचनामृत-१३७	०३९
०९.	वचनामृत-३५४	०५२
१०.	वचनामृत-३५६	०६२
११.	वचनामृत-३८४	०६५
१२.	वचनामृत-३८५	०७०
१३.	वचनामृत-४८४	०७२
१४.	वचनामृत-४८५	०७४
१५.	वचनामृत-४८७	०७८
१६.	वचनामृत-४९७-अ	०८५
१७.	वचनामृत-५१३	०९०
१८.	वचनामृत-६२८	०९४
१९.	वचनामृत-६४०	१०१
२०.	वचनामृत-६४१	१०३
२१.	वचनामृत-६४३	१०५
२२.	वचनामृत-६४४	११०
२३.	वचनामृत-६४५	१११
२४.	सोगानीजी के सम्बन्ध में....	११६

द्रव्यदृष्टिप्रकाश पत्रांक प्रवचन अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	पत्रांक नंबर	पृष्ठ संख्या
०१.	पत्रांक-३	११९
०२.	पत्रांक-४	१३०
०३.	पत्रांक-८	१४१
०४.	पत्रांक-९	१४६
०५.	पत्रांक-१७	१५२
०६.	पत्रांक-१८	१६०
०७.	पत्रांक-१९	१७१
०८.	पत्रांक-२०	१७८
०९.	पत्रांक-२७	१८३
१०.	पत्रांक-२८	१९२
११.	पत्रांक-२९	१९९
१२.	पत्रांक-३०	२१२
१३.	पत्रांक-३०	२१६
१४.	पत्रांक-३३	२२४
१५.	पत्रांक-३३	२३०
१६.	पत्रांक-३३	२४६
१७.	पत्रांक-३४	२५१
१८.	पत्रांक-५१	२७२

पूज्य सोगानीजीके श्रीमुखसे प्रवाहित पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रति हृदयोद्‌गार

महाराजश्री, चिन्मय, भव्य दिव्यमूर्ति, गरजती हुई दिव्यमूर्ति, परम कृपालु, परम पूज्य, परम अद्‌भुत, जीवन उद्धारक, जन्म-मरणरूपी रोगसे रहित करनेवाले योगीराज, अनादि अनंत आयुके धारक चैतन्य, परम कृपालु उपकारी, सर्वश्रेष्ठ नेता (मोक्ष मंडलीके), मुक्तिदूत, अलौकिक सत्पुरुष, पूज्य परम उपकारी, हे भगवान, परम पूज्य महान योगी, आत्मरससे ओतप्रोत वक्ता, हे प्रभो, साक्षात् चैतन्यमूर्ति, ज्ञानानंदी गढ़, वीतरागप्रधानी, ज्ञान आनंदकी खान, अपूर्व सत्पुरुष, अलौकिक पूज्य, सर्वस्वके देनेवाले परम उपकारी, परम निर्भय सिंहस्वरूप, तीर्थंकरसे भी अधिक सत्पुरुष, मुक्तिनाथ, परम पिताश्री।

मुमुक्षुजीवके लिये 'सत्संग' वह अमृत है; जिससे मुमुक्षुकी आत्मरुचि अथवा गुणरुचिको पोषण मिलता है। वर्तमान कालमें असत्संग प्रसंगका घिराव बहुत है, ऐसी परिस्थितिमें अचिंत्य जिसका महत्व है, ऐसे सत्संगका मूल्य किसी भी तरह नहीं हो सके - ऐसा है। प्रतिपक्षमें कुसंग मुमुक्षुके लिये ज़हर है। अगर इससे बचनेमें नहीं आये तो सद्‌विचारबलका नाश होकर अनेक दोषोंकी परंपरा खड़ी हो जाये। विपरीत रुचिको प्रसिद्ध करनेवाला, कुसंग करनेका भाव कृत-कारित अनुमोदनासे नहीं हो जाये उसकी अत्यंत सावधानी रखनी चाहिये - इस दृष्टिसे किसीका भी संग विचार करके करना चाहिये। इस विषयमें अगंभीरतासे, अविचारीपनेसे प्रवृत्ति बिलकुल होनी नहीं चाहिये। (*अनुभव संजीवनी-३०४*)

श्री अरिहंतदेव और उनके शास्त्र ऐसा कहते हैं कि - प्रभु ! तू ज्ञानमात्र है, वहाँ प्रीति कर और हमारे प्रति भी प्रीति छोड़ दे। तेरा भगवान तो भीतर शीतल-शीतल चैतन्यचंद्र, जिनचंद्र है; वहाँ प्रीति कर। आकाश में जो चंद्र है वह शीतल होता है किन्तु वह तो जड़ की शीतलता जड़रूप है। इस शांत-शांत-शांत चैतन्यचंद्र की शीतलता तो अतीन्द्रिय शांतिमय है, वह एकमात्र शांति का पिण्ड है। उसे शांति का पिण्ड कहो या ज्ञान का पिण्ड कहो - दोनों एक ही है। इसलिये जितना यह ज्ञान है उतना ही परमार्थ आत्मा है ऐसा निश्चय करके उसी में प्रीतिवंत बन।

(*'गुरुदेवश्री के वचनामृत'-१०४*)

'गुरु गिरा गौरव' पुस्तक के प्रकाशनार्थ प्राप्त दानराशि

श्रीमती चंद्रिकाबहन शशीकान्तभाई शेठ, भावनगर ५,०००/-

ॐ

वीतरागाय नमः

(अपने पूर्व-जीवनके बारेमें कहा :) **मुझे पहलेसे इन्द्रियविषयोंकी ओरका रस नहीं था; और विकल्पोंमें कषायकी भट्ठी जलती हो - ऐसा लगता था; ऐसे वेदनमें वो क्या है....क्या है ? - ऐसे विचारोंकी धुनमें रहता था;** (इतनी धुन थी, कि) **मुझे शहरके खास व परिचित रास्तोंके अलावा किसी रास्ते आदिका पता नहीं है; और कोई बातका खयाल नहीं रहता था। विचारका ज़ोर पहलेसे ही था, उसमें तीक्ष्णता थी। दिगम्बरशास्त्र देखे तो इधरसे निकला और उधर क्रियाकाण्डमें पड़ा, परन्तु उसमें भी कोई शान्ति नहीं मिली, वह भी छोड़ दिया। पीछे `आत्मधर्म' देखते ही चोट लगी और सब बात खयालमें आने लगी।**

प्रवचन - १ दि. २३-११-१९९१ - वचनामृत-६६

भूतकालमें ज्ञानदशाके पहले उसके अनुरूप ऐसी मुमुक्षुदशा कैसी होती है यह इसमेंसे निकलता है।

`मुझे पहलेसे इन्द्रियविषयोंकी ओरका रस नहीं था; और विकल्पोंमें कषायकी भट्ठी जलती हो - ऐसा लगता था; ऐसे वेदनमें वो क्या

है...क्या है ? - ऐसे विचारोंकी धुनमें रहता था;...' क्या कहते हैं ? कि पहले से ही उदयमें जो पंचेन्द्रियके विषयोंका जो कुछ भी उदय हो, उसमें रस नहीं आता था। व्यवसाय और दूसरे जो भी विकल्प होते थे, विषयकषायोंके परिणाम होते थे उनमें भट्ठी जलती हो ऐसा लगता था। यह मुमुक्षुकी योग्यताका एक बहुत अच्छा लक्षण है। मुमुक्षुको अभी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और मोक्षमार्ग शुरू नहीं हुआ इसलिये तब तक इसके शुद्ध परिणाम भले नहीं हो, परंतु अशुद्ध परिणाम जो हैं वे विषयकषायके तीव्र रसवाले नहीं होते फिर भी; क्योंकि (तीव्र रसवाले) हो तब तो (मुमुक्षुताका) सवाल ही नहीं है, लेकिन न हो तो भी उन परिणामोंका दुःख लगता है। और इनकी (पूज्य सोगानीजीकी) योग्यता विशेष थी, तो उन्हें तो भट्ठी जैसा दुःख लगता था। अंदरमें शांतरसका, अनंत शांतरसका निविड़ स्वभाव भरा है इससे विरुद्ध ये जो विषयकषायके परिणाम हैं वे भट्ठी जैसे लगने चाहिये। वरना हीनाधिक मात्रामें भी उसका दुःख तो लगना ही चाहिये। यदि उसका दुःख नहीं लगा तो उसका प्रेम है। प्रेम होने पर ही दुःख नहीं लगता वरना अवश्य लगता है।

मुमुक्षु :- प्रेम होने पर वहाँसे हटेगा नहीं।

पूज्य भाईश्री :- जो अच्छा लगे उसे कहाँसे छोड़ेगा ? अच्छा लगे उसे कैसे छोड़ेगा ? अतः (मुमुक्षुको) ऐसी परिस्थिति आनी चाहिये। मुमुक्षुकी भूमिकाकी यह एक अनिवार्य परिस्थिति है। यह विषय गुरुदेवश्रीने भी लिया है और पूज्य बहिनश्रीने तो कईबार लिया है। परंतु गुरुदेवश्रीने (भी यह विषय) लिया है। `परमागमसार' ग्रंथमें एक बोल छाँटकरके ऐसा आ गया है। ८८ वाँ बोल है।

`सम्यग्दृष्टिको राग या दुःख नहीं - ऐसा तो दृष्टिकी प्रधानतासे कहा है। परंतु पर्यायमें जितना आनंद है, उसे भी ज्ञान जानता

है, और जितना राग है उतना दुःख भी साधकको है - ज्ञान वह भी जानता है।' सम्यग्दृष्टि भी जितना राग है उतना दुःख है, ऐसा जानते हैं ! '**पर्यायमें राग है, दुःख है उसे जो नहीं जानता उसके तो धारणा ज्ञानमें भी भूल है।**' क्या कहा ? पर्यायमें राग है उतना दुःख है ऐसा यदि नहीं जानता तो उसके धारणाज्ञानमें भी अभी तो भूल है। धारणाज्ञान भी झूठा है। '**सम्यग्दृष्टिको दृष्टिका बल बतलानेके लिये कहा है कि उसे आस्त्रव नहीं, परंतु जो आस्त्रव सर्वथा न हो तो मुक्ति होनी चाहिये।**' ८८वें बोलमें यह बात आयी है। राग है सो दुःख है फिर चाहे वह मुमुक्षु हो या सम्यग्दृष्टि हो। और यह तो स्थूल ज्ञानका विषय है। जब कि शुद्ध परिणाम जो है वह तो सूक्ष्म ज्ञानका (विषय है।) वीतरागभाव है वह तो सूक्ष्म परिणाम है और राग जो है वह स्थूल परिणाम है। अब यदि स्थूल परिणामको भी जीव समझ न सकता हो तो सूक्ष्म परिणामको तो कैसे समझेगा ?

मुमुक्षु :- अबुद्धिपूर्वकका राग हो वह किसमें जाता है, सूक्ष्मतामें या स्थूलतामें ?

पूज्य भाईश्री :- बुद्धिपूर्वकके (राग)से अबुद्धिपूर्वकका (राग) ज्यादा सूक्ष्म है। और वह तो केवलीगोचर है। वह भले नहीं पकड़में आता हो लेकिन जो मनजनित है, मनमें समझा जा सके वैसा है, ऐसे इन्द्रियजनित राग जो हैं उनमें दुःख है वह दुःख तो अनुभवमें आना चाहिये कि नहीं ? दुःख, दुःखरूपमें नहीं मालूम होगा तो सुखकी आशा रखना बेकार है, ऐसा कहना चाहते हैं।

मुमुक्षु :- इसमें परको जानता है वह बात तो आ जाती है !

पूज्य भाईश्री :- ऐसी (बात) कहाँ है ? जीव परको जानता ही नहीं है, ऐसा कहाँ कहना है ? जिसे अपने स्वरूपमें तन्मयता है

वह परको (स्वरूप)तन्मयताके कालमें नहीं जानता। और एक तीव्ररसपूर्वक अपने स्वरूपमें परिणमन करता है वह ऐसा भी कहता है कि मुझे तो मेरा आत्मा ही सर्वत्र जाननेमें आता है, दूसरा कुछ नहीं जाननेमें आता। जाननेमें आने पर भी नहीं जाननेमें आता है - ऐसा वहाँ कहना चाहते हैं। बिलकुल नहीं जाननेमें आता है - ऐसा नहीं कहना चाहते, परंतु जाननेमें आने पर भी नहीं जाननेमें आता है - ऐसा कहना है। स्वभावके ज़ोरमें वह जाननेमें आता है फिर भी इतना गौण करके कहते हैं कि जैसे नहीं जाननेमें आता है। ऐसी बात है। अगर राग जाननेमें ही नहीं आता तो उसका अभाव करनेका प्रश्न ही पैदा नहीं होता। वरना उसका अभाव करने (योग्य है), दुःख है, टालने योग्य है - यह बात भी नहीं रहती। वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है।

यहाँ कहते हैं कि, '**मुझे पहलेसे इन्द्रियविषयोंकी ओरका रस नहीं था; और विकल्पोंमें कषायकी भट्ठी जलती हो - ऐसा लगता था; ऐसे वेदनमें वो क्या है...क्या है ?**' (यानी कि) ऐसा क्यों होता होगा ? ऐसा क्यों होता होगा ? यह रागका इतना अत्याधिक दुःख क्यों लगता होगा ? समझमें तो आता नहीं था, (क्योंकि) दिशा तो मिली नहीं थी परंतु रागका दुःख लगता था। इतनी योग्यता तो अवश्य थी कि रागमें स्पष्टरूपसे दुःख लगता था। भले ही शुद्ध स्वभावका सुख नहीं लगता था, किन्तु रागका दुःख तो लगता था। वरना कई लोग ये प्रश्न करते हैं कि स्वभावका सुख देखे बिना रागका दुःख कैसे मालूम पड़े ? (परंतु) ऐसा नहीं है। जिसने स्वभावका सुख देखा हो उसीको रागका दुःख लगे, ऐसा नहीं है। पहले रागका दुःख मालूम हो उसे स्वभावका सुख मालूम होता है, वास्तवमें तो ऐसा है। अनुभवकी लाईनमें क्रम क्या है ? इस

(विषय में) भूल नहीं होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- पहले रागमें दुःख लगे तो वह दुःखसे निवृत्तिका उपाय करे, ऐसा है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, ऐसा ही है। राग है, रागमें दुःख भी है, अब यदि दुःख नहीं लगा तो उसे छोड़नेका विचार भी क्यों आयेगा? क्या जरूरत है ? यदि उसमें दुःख नहीं होता, तो वैसे भी जिसको दुःख नहीं लगता है वे लोग छोड़नेका प्रयत्न भी नहीं करते हैं। यह स्थिति देखी जाती है।

मुमुक्षु :- ऐसी स्थितिमें आनेके पश्चात् जब सत्पुरुष मिले और बताये कि सुख कहाँ है ? तब यह बात खड़ी होती है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, तब खड़ी होती है। सत्पुरुष तो बतायेंगे, लेकिन उसकी योग्यतामेंसे तो यह आना ही चाहिये। जैसे मानो कि इन्हें तो सत्पुरुष नहीं मिले थे, ऐसी (अंतरंग स्थिति) के वक्त सत्पुरुष नहीं मिले थे, फिर भी दुःख तो लगता ही था। (यानी मुमुक्षुको रागमें) दुःख तो लगना ही चाहिये।

मुमुक्षु :- दुःख लगता है और सुख मिलता नहीं, तब तो खोजता है।

पूज्य भाईश्री :- इसलिये ढूँढ़ता है कि यह दुःख मिटानेका उपाय क्या ? और सुखप्राप्तिका उपाय क्या ? वह ढूँढ़ता है।

`**ऐसे वेदनमें वो क्या है...क्या है ?**' में वह बात है। ऐसी जिज्ञासा थी कि क्या किया जाये इसका ? `**-ऐसे विचारोंकी धुनमें रहता था;...**' (अर्थात्) ऐसे विचारोंकी धुनमें था - रहता था। `(**इतनी धुन थी, कि**)....' उस विषय पर इतनी धुन चलती थी कि `**मुझे शहरके खास व परिचित रास्तोंके अलावा किसी रास्ते आदिका पता नहीं है;....**' कहाँ (थे उस वक्त) ? अजमेरमें थे उस वक्त, कलकत्तामें नहीं थे। जब कि वह (अजमेर) तो उनका वतन है। परंतु हमलोगका

जैसे (भावनगरमें) कुछ एक परिचित रास्तोंके अलावा कहीं आना-जाना नहीं होता, कि नवापरामें कौनसी गली कहाँ जाती है और दूसरे इलाकेमें क्या है ? फलानी जगह क्या है कुछ पता नहीं होता। वडवामें कहाँ-कैसी गलियाँ हैं, कैसे रास्तें हैं ? शहरके दूसरे (रास्तोंकी) खबर ही नहीं होती क्योंकि आना-जाना ही नहीं होता। वैसे ये (सोगानीजी) अपनी धुनमें ही रहते थे वरना वह तो उनका वतन था फिर भी कुछ पता नहीं।

मुमुक्षु :- यहाँ धुनका अर्थ खोज लेना ? यहाँ जो धुनका प्रकार है वह खोजका प्रकार है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, धुनमें खोजका प्रकार भी है। खोजकी भी धुन है और धुनमें ऐसा है कि, आत्मकल्याण करना है... आत्मकल्याण कर लेना है, दुःख नहीं चाहिये - ऐसी धुनमें और कुछ नहीं सूझता। और कुछ सूझे नहीं। एक धुनके आगे और कुछ सूझे नहीं।

`**और कोई बातका खयाल नहीं रहता था।**' दूसरी किसी भी बातोंका खयाल नहीं रहता था। धुन ही धुनमें दूसरी किसी भी बातका खयाल नहीं रहता। `**विचारका ज़ोर पहलेसे ही था,...**' विचारका ज़ोर - विचारशक्ति बहुत थी, ऐसा कहते हैं। शक्ति कहो, ज़ोर कहो, (सब एकार्थ हैं।) मंथन, विचार बहुत चलता था, लेकिन दिशासूझ नहीं मिलती थी। यहाँ सत्पुरुष मिले बादमें रास्ता मिला है। यदि पूर्व संस्कारी होते तो ऐसा नहीं होता। जैसे गुरुदेवश्रीको समयसारजीसे मिल गया, जब कि वे तो दिगम्बर संप्रदायमें थे इसलिये घरमें ही समयसारजी शास्त्र था। और उन्होंने शास्त्र पढ़े भी थे। शास्त्र नहीं पढ़े ऐसा नहीं था, शास्त्र पढ़े थे। घरमें पंडित रखा था। सब कुछ था (परंतु दिशाका) मेल नहीं बैठा। देखो ! क्या फ़र्क पड़ता है ? सत्पुरुषकी मौजूदगीसे क्या फ़र्क पड़ता है ?

वे जो दिशासूचन कर देते हैं, यह कोई गज़बकी बात है ! अंतर्मुख होनेकी दिशाका उनके द्वारा जो पता लगता है, यह मानो एक चमत्कार ही है !!!

मुमुक्षु :- सुविचारणा लागू होती है या नहीं ?

पूज्य भाईश्री :- सुविचारणा थी। वह बात ठीक है।

(यहाँ) ऐसा कहते हैं कि '**विचारका ज़ोर पहलेसे ही था, उसमें तीक्ष्णता थी।**' (यानी) तीखी विचारधारा थी। पता लगे कि, इस तरफ रास्ता है कि तुरंत ही कूद पड़े ! थोड़ा-थोड़ा (प्रयास करे) ऐसे नहीं, यानी फिर शिथिलतामें नहीं रहते ! '**दिगम्बरशास्त्र देखे...**' लेकिन कुछ मिला नहीं '**तो इधरसे निकला उधर क्रियाकाण्डमें पड़ा,...**' दिगम्बर शास्त्रोंमेंसे कुछ नहीं मिला, फिर वापिस क्रियाकाण्डमें लगे, पूजा और भक्ति, और उपवास, जो-जो क्रियाकाण्डमें होता है उसमें लगे। '**परंतु उसमें भी कोई शांति नहीं मिली...**' कहींसे भी शांति नहीं मिली। शांति नहीं मिली सो मिली ही नहीं। '**वह भी छोड़ दिया।** (शांति) नहीं मिलने पर थककर छोड़ देते थे। इन सबमें मुझे जो चाहिये वह नहीं मिल रहा है। वरना प्रायः क्या होता है कि शास्त्र पढ़नेवाले शास्त्रको नहीं छोड़ते, क्रियाकाण्डवाले क्रियाकाण्डको नहीं छोड़ते। कुछ नहीं मिलने पर भी लगे रहते हैं। - ऐसा नहीं होना चाहिये। (न मिले उसे) छोड़ता जाये कि, इसमें मिलता नहीं है, मुझे जो चाहिये वह मिलता नहीं है। और इसकी खोज़ चालू रहनेसे पुराना छोड़ता जाये। जो भी हाथमें लिया हो वह छोड़ता जाये, हाथमें लिया हो वह छोड़ता जाये। यह यथार्थ प्रक्रिया है।

मुमुक्षु :- दोनोंमेंसे शांति नहीं मिली ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, बस ! शांतिकी खोज़ थी और शांति मिलती

नहीं थी, बात पूरी हो गई।

'**पीछे 'आत्मधर्म' देखते ही चोट लगी और सब बात खयालमें आने लगी।**' आत्मधर्ममेंसे संकेत मिल गया कि मुझे जो चाहिये, ऐसा कुछ मिलनेकी संभावना यहाँ पर है। ये (आत्मधर्म) जहाँसे निकलता है वहाँ मुझे जाना चाहिये। '**षट् आवश्यक नहीं, एक ही आवश्यक है।**' - इस बात परसे उन्होंने टोटल यह लगाया कि, ये ऐसा कहनेवाले पुरुष सारे विकल्पोंसे छुड़ाकर एक मात्र आत्मशांतिमें ले जाना चाहते हैं। मुझे तो शांति ही चाहिये। छः आवश्यकमें तो छः प्रकारके विकल्प हैं, शांति नहीं है, परंतु अशांति है। इस तरह ध्यान गया। देखिये ! ये योग्यता क्या काम करती है ? कि जैसे इनका ध्यान चला गया ! परोक्षरूपसे भी वचन मिले तब इनका ध्यान गया कि, यहाँ कोई दिखानेवाले होने चाहिये। इसका रास्ता दिखानेवाले यहाँ कोई होने चाहिये ! इतना ध्यान गया तो (ऐसा लगा कि) चलो हम वहाँ जाये। - यह एक बहुत बड़ी बात है। (बात पर) ध्यान जाना यह एक बड़ी बात है। यह उनकी पूर्वभूमिका है।

गुरुदेवश्रीकी सिंहगर्जना ऐसी है कि दूसरे को निर्भय बना देती है। वहीं जंगलके सिंहकी गर्जना तो दूसरेको भयाकुल बनाती है। - दोनोंमें बहुत फ़र्क़ है। (द्रव्यदृष्टिप्रकाश - १३९)

> **प्रश्न :- सम्यग्दर्शनके पहले आपकी कैसी दशा थी ?**
> **उत्तर :- निर्विकल्पताके पहले विकल्पका इतना दुःख मालूम हुआ था - ऐसी दशा हुई थी - कि या तो देह छूट जायेगी या विकल्प फट जायेगा। तीसरी बात होनेवाली नहीं थी।** (निर्विकल्पदशाकी पूर्वभूमिकामें स्वरूप सम्बन्धित सूक्ष्म विकल्पमें भी इतना तीव्र दुःख महसूस हुए बिना, विकल्प सहज छूट कर, निर्विकल्पदशा उत्पन्न नहीं होती)।
> (अंगत)

प्रवचन - २ दि. २६-१२-१९९२ - वचनामृत-६३५

`**प्रश्न :- सम्यग्दर्शनके पहले आपकी कैसी दशा थी** ?' क्या (प्रश्न पूछा है) ? सम्यग्दर्शन हुआ इसके पहले पूर्व पर्यायमें हालत कैसी हुई थी ? कि फिर सम्यग्दर्शन हो गया !

`**उत्तर :- निर्विकल्पताके पहले...**' सम्यग्दर्शनके कालमें निर्विकल्पता होती है। `**निर्विकल्पताके पहले विकल्पका इतना दुःख मालूम हुआ था - ऐसी दशा हुई थी - कि या तो देह छूट जायेगी या विकल्प फट जायेगा। तीसरी बात होनेवाली नहीं थी।**' क्या कहा ? (उनको) विकल्पका दुःख बहुत मालूम पड़ता था। पहले भी वे कह चुके हैं कि, एक विकल्प है उससे आत्माको फाँसी लगती है। क्या

(कहा) ? एक विकल्पसे भी आत्माको - स्वभावको फाँसी लगती है। स्वभावका गला घोटता है। निर्विकल्प होनेके पहले यह दशा हो गई थी। देखिये ! विकल्पका दुःख वे सहन (न) कर (सकें ऐसी) असह्य परिस्थिति हो गई थी। ऐसे विकल्पसे छूटना चाहते थे। लेकिन कैसे छूटना ? और छूटकरके कहाँ जाना ? इस बातसे अनभिज्ञ थे। वह बात उन्हें गुरुदेवसे मिली। लेकिन ऐसी स्थितिमें थे।

विकल्पका दुःख है; विकल्पमें दुःख अवश्य है, लेकिन दुःख मालूम नहीं पड़ता इसका क्या कारण ? कि उसमें प्रेम है। विकल्प तो राग है, रागमें प्रेम है, रागमें रुचि है, उसमें अच्छापन मान लिया है तो इसका दुःख नहीं लगता और यहाँसे छूट भी नहीं सकते। (इसलिये) विकल्प मिटता नहीं, छूटता नहीं। जिस मुमुक्षुको विकल्पका दुःख लगे, वही विकल्पसे छूट सकता है। जिसको विकल्पका दुःख नहीं लगे वह विकल्पसे छूट सकता नहीं। यह बहुत स्वाभाविक परिस्थिति है।

मुमुक्षु :- सोगानीजीकी स्वरूपनिश्चय पूर्व भी ऐसी स्थिति थी ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, स्वरूपनिश्चयके पहले भी ऐसी स्थिति थी। पात्रतामें ऐसी स्थिति बनती है। क्या होता है ? पात्रता होनेमें दर्शनमोहका अनुभाग बहुत घटता है। - एक बात। क्योंकि उसमें आत्मकल्याणकी भावना बहुत तीव्र होती है, तो दर्शनमोहका अनुभाग घटनेसे जो मुमुक्षुकी भूमिकाका ज्ञान है, उस ज्ञानमें इस भूमिकाकी निर्मलता आती है। (अर्थात्) ज्ञान स्वच्छ होता है और ज्ञानमें मैलापन मिटता है तो दुःख, दुःखरूप अनुभवमें आता है। क्या ? दुःख, दुःखरूप अनुभवमें आता है। मैलापनमें, क्या मैलापन है ? कि भ्रांति है वह ज्ञानमें मैलापन है। ज्ञानमें राग जैसा कषाय नहीं होता। कषाय, चारित्रगुणकी पर्यायमें रागादिक होते हैं उसमें होता है।

(इसलिये) यह मलिनता दूसरे प्रकारकी है। और ज्ञानकी मलिनता दूसरे प्रकारकी है। उसमें भ्रांतिपना है, वह मैलापन है। (इसलिये) मिथ्यात्व मंद होनेसे भ्रांति भी उतनी तगड़ी नहीं रहती। भ्रांति भी मंद हो जाती है। दुःखमें जो सुखका अनुभव है वह भ्रांति है। क्या है ? विकल्प है वह दुःखरूप है और अज्ञानदशामें दुःखमें सुखका अनुभव है वह भ्रांति है। क्योंकि वह तो दुःख है, सुख तो है ही नहीं। उनको दुःख, दुःखरूप लगने लगा इसका मतलब क्या हुआ ? कि वहाँ जो भ्रांति है वह भ्रांति बहुत पतली हो गई। कैसी हो गई ? टूटने लायक हो गई। पतली माने टूटने लायक। जैसे कोई परदा होता है जो बहुत पतला होता है तो टूट जाता है और मोटा होता है तो टूटता नहीं है। (इसतरह) यह भ्रांति है वह ज्ञानके आगे परदा है जो वस्तुको सहीरूपमें देखने नहीं देता (और) अन्यथा दिखाता है। ये स्थिति पहले पात्रतामें हुई थी। वे अपने विकल्पके दुःखको सहन करनेके लिये असमर्थ हो गये थे। कितने असमर्थ हो गये थे ? कि या तो उनका देह-प्राण छूट जाये, इतनी वेदना हो गई। विकल्पसे छूटनेके लिये इतनी वेदना हो गई कि मेरा तो प्राण छूट जायेगा या तो विकल्प फट जायेगा, टूट जायेगा, बस !

मुमुक्षु :- ज्ञानदशा तो धन्य है इनकी, लेकिन ये...

पूज्य भाईश्री :- मुमुक्षु-पात्रता भी धन्य है, इसमें कोई सवाल नहीं है। ऐसी उत्कृष्ट पात्रताका उत्तर परिणाम यह हुआ। यह पात्रतावाला पूर्व परिणाम है। ऐसी पात्रतावाला पूर्व परिणाम है, इसका उत्तर परिणाम यह हुआ कि, श्रीगुरु मिलते ही उनका फटा-फट काम होने लगा। उस पात्रतामें गुरुकी पहचान छिपी नहीं रही। सुनते ही पहचान आ गई। और वाणी सुनते ही अपने स्वरूपका

भावभासन आ गया और पुरुषार्थ इतना उमड़ पड़ा कि कुछ घंटोंमें ही सम्यग्दर्शन हो गया ! कुछ दिन नहीं लगे ! कुछ घंटे लगे हैं ! इस तरह यह पात्रताको सूचित करता है कि पूर्वपात्रता कैसी थी ! यह प्रश्न बहुत हेतुपूर्वक पूछा गया है।

हमलोग शामको घूमनेको गये थे। वहाँ एकलिया तालाब है न? वहाँ गये थे। वहाँ चार-पाँच आदमी बैठे थे। उस वक्त यह प्रश्न पूछा था कि `आपकी पहलेवाली दशा कैसी थी ?' तो उन्होंने यह बताया कि, `या तो देह छूट जायेगी या तो विकल्प फट जायेगा, तीसरी बात होनेवाली नहीं थी। मैं इतना विकल्पसे थक गया था, उतनी असह्य परिस्थिति मेरी हो गई थी।' और इसी परिस्थितिमें वे सोनगढ़ आ गये।

मुमुक्षु :- कुछ घंटोंमें यानी एक दिनमें तीनों समकितकी प्राप्ति उन्होंने की, तो ये ऐतिहासिक महापुरुष हुए !

पूज्य भाईश्री :- हाँ।

मुमुक्षु :- तीन सम्यक्त्व ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, श्रीमद्जीका ७५१ नंबरका एक पत्र है, जो हमने कलकत्तामें पढ़ा। इस वक्त कलकत्तामें पहले तीन दिन वह पत्र चला। हिन्दी समाजमें तो श्रीमद्जीके पत्रोंका स्वाध्याय ही कम है, तो यह बात तो सबको नई लगे, लेकिन है तो सही ! वहाँ उन्होंने यह लिया है कि सत्पुरुषकी जो पहचान है, (उस) पहचानमें सम्यक्दर्शन गर्भित है। इसलिये (उसे) प्रथम समकित कहते हैं। यह समकितका प्रत्यक्ष कारण है। सम्यग्दर्शन होनेका यह एक प्रत्यक्ष कारण सबसे पहले सत्पुरुषकी पहचानके कालमें पैदा होता है। वहाँ उसका जन्म होता है। उसको आज्ञारुचिरूप समकित कहते हैं। आप्तपुरुषकी स्वच्छंदनिरोध भक्ति - (अर्थात्) विश्वसनियता बैठती

है कि ये (पुरुष) सही मोक्षमार्ग दिखानेवाले हैं और मुझे सही मोक्षमार्ग यहाँसे मिलेगा, मिलेगा और मिलेगा ही। ऐसे उसे विश्वास आता है और उसकी रुचि बढ़ती है, प्रीति बढ़ती है और स्वच्छंदनिरोध भक्ति भी होती है। पढ़ें, उनके शब्दोंमें ही पढ़ें।

(श्रीमद् राजचंद्र) पृष्ठ संख्या ५८०, पत्रांक - ७५१, वर्ष-३०वाँ।

`आत्मसिद्धि' में कहे हुए समकितके प्रकारोंका विशेषार्थ जाननेकी इच्छा संबंधी पत्र मिला है। आत्मसिद्धिमें तीन प्रकारके समकित उपदिष्ट हैं -

(१) **आप्तपुरुषके वचनकी प्रतीतिरूप,...'** क्या (कहते हैं) ? (सत्पुरुषके वचन माने) ब्रह्मवाक्य। इतनी (प्रतीति आती है)। कितनी प्रतीति आये कि `यह ब्रह्मवाक्य है ! **`आज्ञाकी अपूर्वरूचिरूप,'** (अर्थात्) उनकी आज्ञा वह शिरोधार्य करता है। **`स्वच्छंदनिरोधतासे आप्तपुरुषकी भक्तिरूप'** (अर्थात् उसे) बहुत भक्ति आती है। परमात्माकी जितनी भक्ति आती है उतनी भक्ति सत्पुरुषकी आती है। यहाँ ऐसी गिनती नहीं होती कि यह चतुर्थ गुणस्थानवाले हैं और यह तेरहवें गुणस्थानवाले हैं। इतना अंतर जो है वह छूट जाता है। उसको प्रथम समकित कहा है। (इस तरहकी) पहचान बिना ये तीन बातें नहीं बनती। जब ज्ञानीपुरुषकी पहचान आती है तब ही वचनकी प्रतीति आती है, तभी उनकी आज्ञामें रुचि आती है और तब ही अपना स्वच्छंद मिटकरके भक्ति आती है।

दूसरा (समकित कहा) है वह स्वरूपकी पहचान है। दोनोंमें विषय एक है। स्वरूपकी पहचान और सत्पुरुषकी पहचानमें विषयका अंतर नहीं है (परंतु) व्यक्तिका अंतर है। क्या ? विषयका अंतर नहीं है। सत्पुरुष है वह परपुरुष है, सामने दूसरे व्यक्ति है कि जिनमें स्वभाव दिखनेमें आया। पहचानमें क्या दिखनेमें आया ? स्वभाव दिखनेमें

आया और अपने स्वरूपकी पहचानमें क्या दिखनेमें आया ? स्वभाव दिखनेमें आया। यानी विषय तो एक ही हुआ। व्यक्ति अलग-अलग है। उधर पर है, इधर स्व है। इसे दूसरा समकित बोला। **`परमार्थकी....'** माने स्वभावकी **`स्पष्ट अनुभवांशसे प्रतीति...'** (माने) वेदन लक्षणसे ज्ञानमात्रकी प्रतीति हुई वह सम्यक्त्वका दूसरा प्रकार है। जिसको स्वरूपनिश्चय कहते हैं, (और) स्वरूपकी पहचान भी कहते हैं।

(अब) तीसरा (समकित कहते हैं) **`निर्विकल्प परमार्थअनुभव यह समकितका तीसरा प्रकार है।'** ये परमार्थ-निर्विकल्प वास्तविक सम्यक्‌दर्शन है।

`पहला समकित दूसरे समकितका कारण है।'** क्योंकि किसीको अपने स्वभावकी सीधी पहचान नहीं होती। पहले सत्पुरुषकी पहचान होती है बादमें स्वभावकी पहचान होती है। **`पहला समकित दूसरे समकितका कारण है। दूसरा समकित तीसरे समकितका कारण है। वीतरागने तीनों समकित मान्य किये हैं।' मैं कहता हूँ, वह बात नहीं है। सर्वज्ञ वीतरागपुरुषने भी ये मान्य किये हैं। हमें नहीं मालूम पड़ता कि कौनसे शास्त्रमें यह बात लिखी है ? लेकिन उन्होंने कहीं भी देखा है कि, ये तीनों समकित वीतराग पुरुषने मान्य किये हैं। **`तीनों समकित उपासना करने योग्य है, सत्कार करने योग्य है;...'** माने निषेध करने योग्य नहीं है **`और भक्ति करने योग्य है।'** देखिये ! ये तीन बात हैं।

ये तीनों बात हम सोगानीजीके इतिहासमें घटाते हैं। सोगानीजीको प्रथम समकित कब हुआ ? कि जब गुरुदेवको (प्रत्यक्ष) मिले तब। प्रवचन सुनते ही प्रतीति आ गई कि, ये परम सत्य कह रहे हैं। वचनकी प्रतीति होवे तब तो परिणमन होवे। प्रतीति नहीं होवे तो

परिणमन कैसे होगा ? कहनेवाले पर विश्वास ही नहीं होवे तो फिर इस बातका - कही हुई बातका परिणमन होनेका तो सवाल ही पैदा नहीं होता।

मुमुक्षु :- विश्वास तो उन्हें बहुत पहलेसे हो गया था, जिस वक्त आत्मधर्म मिला था !

पूज्य भाईश्री :- नहीं, उस वक्त आसार आया था (कि), एक ही आवश्यक है, षट् आवश्यक नहीं हैं। उस वक्त उनको आसार (माने) ऐसा एक अंदाज आ गया कि मुझे जो विकल्पकी परेशानी है, यह परेशानी मिटनेका कोई आसार इधर मिलता है, अंदाज मिलता है कि यहाँसे कोई मार्ग निकलेगा।

मुमुक्षु :- दृढ़ता हो गई थी ?

पूज्य भाईश्री :- नहीं, उतनी दृढ़ता कैसे हो सकती है ?

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी तसवीरको (तो) अर्घ चढ़ाया है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, क्या है कि अपनेको अच्छा लगा, जचा तो सही। जचा तो सही कि, बात तो बहुत सुंदर है मुझे वहाँ जाना चाहिये ! लेकिन पहचान तो रू-बरूमें जो होती है, भावोंकी जो पहचान होती है वह रू-बरूमें होती है, वह परोक्षतामें नहीं होती। क्यों ? क्योंकि इससे बढ़िया वचन तो समयसारमें भी मिल सकता था। आचार्योंके ग्रंथ उनके घर पर थे। कोई वचनकी कमी नहीं थी। थी क्या ? नहीं। आचार्योंके वचन तो उच्चकोटिके होते हैं। फिर भी इनके वचनको पढ़ते हुए, उनको इन सजीवनमूर्तिके पास जानेका भाव हो गया, तो प्रेम आ गया। लेकिन प्रत्यक्ष मिले बिना पहचान तो होती ही नहीं। आचार्य महाराजका वचन भी परोक्ष था, तो आचार्य महाराजकी पहचान नहीं हुई। (जबकि) ये आगम तो सब सर्वज्ञ परम्परा अनुसार चलते हैं। लेकिन पहचान तो रू-

बरूमें होती है। फिर प्रत्यक्ष (सोनगढ़) गये और (गुरुदेवश्रीने) स्वरूप सुनाया तब स्वरूपका भावभासन - निश्चय भी सुननेसे आया।

यह एक बात कोई रिकार्डके हिसाबसे (देखी जाये तो) जबरदस्त बात है !! एक ही दिनमें किसीको ये तीनों समकितवाली बात होवे, ये बात थोड़ी असामान्य है। सामान्य नहीं है लेकिन असामान्य है। असाधारण है ! यह बात तो जरूर है। यह ६३५ हुआ।

प्रश्न :- शुरुआतवालेको अनुभवके लिए कैसे प्रयत्न करना ?

उत्तर :- 'मैं' परिणाम मात्र नहीं हूँ; त्रिकाली-ध्रुवपनेमें अपनापन थाप देना (स्थापित करना) यही उपाय है। [अनादि पर्यायबुद्धि सहित मुमुक्षु जीव उपदेशबोधके अनुसार अपनी भूमिका योग्य परिणामसे प्रारम्भ करता है, परन्तु सर्व प्रथम पर्यायमेंसे अस्तित्व उठा करके द्रव्यस्वभावमें अस्तित्व स्थापित करना है - ऐसा लक्ष्य प्रारम्भसे ही रहना अत्यावश्यक है, वरना पर्यायबुद्धि दृढ़ हो जानेसे द्रव्यदृष्टि उत्पन्न होना मुश्किल हो जाती है, और मुमुक्षुतामें ही मनुष्य आयु पूर्ण हो जाती है और भवभ्रमणका छेद नहीं होता।]

(**द्रव्यदृष्टिप्रकाश - ७०**)

षट् आवश्यक आदि क्या ? - एक ही (निश्चय) **आवश्यक है - यह बात `आत्मधर्म' में पढ़कर ऐसी चोट लगी कि बस ! यही बात ठीक है।** (अंगत)

प्रवचन - ३ दि. १६-१०-१९९२ - वचनामृत-५३१

उनका अंगत बोल है। **`षट् आवश्यक आदि क्या ? - एक ही (निश्चय) आवश्यक है - यह बात `आत्मधर्म'में पढ़कर ऐसी चोट लगी कि बस! यही बात ठीक है।**' यह बात चर्चामें इसलिए निकली है क्योंकि उनको सोनगढ़ आनेका जो आकर्षण हुआ, वह इस बातकी चोट परसे हुआ है। अपने विकल्प शांत करनेके लिए वे (मार्ग) खोजते थे, शोधते थे। विकल्पोंका दुःख लगता था। ऐसी पात्रताविशेष तो हो चुकी थी। परंतु वह दुःख कैसे मिटाना इसका उपाय उनके पास नहीं था। उसमें उन्होंने यह बात पढ़ी की आत्माके लिए तो एक निश्चय आवश्यक है, छः आवश्यक भी नहीं हैं। जब कि षट् आवश्यकका विषय तो जिनागमका है।

आगममें श्रावकोंके छः आवश्यक कहे हैं। श्रावकको प्रतिदिन

ये छः कार्य तो करने चाहिए। और धर्मात्मा श्रावक भी करते हैं। इस प्रकारसे आगममें जो प्रतिपादन है उस प्रतिपादनसे परे होकर (यह कथन किया है)। (षट् आवश्यक) चरणानुयोगका विषय है। आगम चरणानुयोगका है - इससे परे होकर अध्यात्मका विषय लिया है कि, एक ही आवश्यक है, छः आवश्यक नहीं। और जब यह एक ही आवश्यक है, ऐसा उन्होंने पढ़ा तब लगा कि विकल्पोंको समेट लेनेकी बात इधर होनी चाहिए। बात कोई ज़ोरदार है। उन्होंने टोनको पहचान लिया। उस बातकी अंतर्ध्वनि जो है उसे पहचान लिया। और उन्हें प्रत्यक्ष परिचय करनेका भाव आया। वह इस बात परसे आया है।

`आत्मधर्म' जो कि गुरुदेवकी आज्ञानुसार चलता था और चलता है उसमें गुरुदेवकी कौनसी बात कब, किसको चोट मारेगी उसका कोई नियम नहीं है। और अगर कोई आत्मा जागृत हो जाये तो कहाँ तक (पहुँच जाये कि!) अल्पकालमें सिद्धालय तक पहुँच जाये ! सत्पुरुषके वचनामृतमें ऐसा निमितत्त्व देखकर (कृपालुदेवने) कहा, `अहो ! सत्पुरुषके वचनामृत' ऐसा कहा। अहो ! सत्पुरुषके वचनामृत, मुद्रा और सत्समागम। उन्हें (सोगनीजीको) वचनामृत मिला तो मुद्रा और सत्समागमके लिए शीघ्र चले आये।

मुमुक्षु :- वचनामृतको `जगहितकरं' कहा।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, `जगहितकरं', (यानी कि) जगतका हित करनेवाले हैं। जगतके किसी न किसी जीवको चोट लगनेमें कारणभूत होते हैं। (देखो !) क्या संबंध रहता है ? यूँ सगे-संबंधी हो (ऐसा नहीं है।) कोई परिचय नहीं, कोई पहचान नहीं। कब किस जीवको कौनसी गोली लगेगी ? (और) कब

उसका संसार खतम हो जायेगा (इसका कोई नियम नहीं है)। एक गोली लगी कि पूरा संसार खतम ! - संसारकी मृत्यु हो जाये ! जैसे पिस्तौलकी गोली लगने पर आदमीकी मृत्यु होती है वैसे एक गोली लगे कि पूरे संसारको खतम करे !

मुमुक्षु :- प्रवचनोंका भी ऐसा ही है न ?

पूज्य भाईश्री :-हाँ, वे वचनामृत ही तो हैं ! आत्मधर्ममें गुरुदेवश्रीके प्रवचन ही आते थे न ! और क्या था ? गुरुदेवने कहाँ कभी कुछ अपने हाथोंसे लिखा है ?

मुमुक्षु :- दूसरे प्रवचन भी जो छपते हैं वे ऐसे ही हैं न !

पूज्य भाईश्री :- हाँ, सब ऐसे ही हैं। ऐसे ही हैं। प्रवचन जो हैं वे उनके वचनामृत ही हैं। अभी तो क्या है कि सौभाग्यवश सब टेपमें आ चुका है। जिसे (हम) अक्षरसः लिखते हैं। इस वक्त तो शैली भी करीब-करीब बोलनेकी यूँ की यूँ रखी है। ये अलग शैलीसे (संकलन कर रहे हैं)। अभी जो संकलन कर रहे हैं उसमें अभी तक जिस शैलीसे हुआ है इसमें थोड़ा फ़र्क किया है। बहुत फर्क किया है। सब प्रायः यूँ का यूँ रखो ! जितना हो सके उतना (अक्षरसः) रखो ! हो सके वहाँ तक गुरुदेवकी भाषामें गुरुदेवके ही शब्दोंमें, गुरुदेवकी शैलीमें लिखा जाये। इस दृष्टिकोणको मुख्य रखते हुए (`प्रवचन नवनीत' का संकलन) किया है। एक मुमुक्षुभाईने तो नाराजगी व्यक्त की थी कि, आप ऐसे मत करो, आगे जिस प्रकार (संकलन) हुए हैं, ऐसे आप करो। उसको (हमने) कहा कि, `भाई ! आगे जो (संकलन) हुए हैं, इसमें ये सारी क्षतियाँ रह गई हैं, हमें तो उन्हें सुधारनी हैं।' पहले तो हमने सिर्फ मार्गदर्शन दिया था, कामकी जिम्मेदारी नहीं ली थी। ये (प्रवचन नवनीतके) कामकी जिम्मेदारी ली है। पहले मार्गदर्शन दिया था लेकिन पूरा-पूरा Follow-up करनेकी सबकी तैयारी नहीं थी, कि जितना कहे उतना करे। फिर थोड़ा-बहुत तो सब अपनी मरजीसे करते हैं, यह तो स्वाभाविक है। अतः (आगे जो पुस्तक प्रकाशित हुए उसमें) `जो पुनरावर्तन है उसे नहीं लेना, हो सके उतना कम लेना ऐसा दृष्टिकोण (उन लोगोंने) रखा है, हमने यहाँ पुनरावर्तन हो तो भी जितना हो सके उतना अधिक लेना, ऐसा दृष्टिकोण रखा है। हमने दृष्टिकोण ही दूसरा रखा है। (प्रवचन) अच्छे हैं, प्रवचन तो बहुत बढ़िया आयेंगे। गुरुदेवने जिसे मक्खन कहा है, उसी विषय पर उन्होंने करुणापूर्वक प्रवचन किये हैं।

मुमुक्षु :- ज्ञानियोंके वचनकी ताकत कितनी ? कि जगतके जीवोंकी सुषुप्त ऐसी चेतनाको जागृत करते हैं !

पूज्य भाईश्री :- नींद उड़ा दे। गाढ़ मोहको तोड़ दे। मंद मोहवालेको तो सम्यग्दर्शन करा दे परंतु गाढ़ मोह हो उसके मोहको भी तोड़ दे। गुरुदेवकी वाणी तो तोपके गोलेके समान ही थी !! बहुतोंको असर कर गई है। कितने तो संस्कार लेकर जायेंगे। पानेवाले ने तो पा लिया लेकिन कितने ही संस्कार लेकर जायेंगे। यह तो उन्होंने खुदने ही कहा था कि समवसरणकी तैयारी यहाँ से शुरू हुई है। अभी तीर्थंकरगोत्र बाँधना शुरू नहीं किया है। वह तो आगेके भवमें शुरू होगा। परंतु समवसरणकी तैयारी यहाँसे चालू हो गई। तीर्थंकर द्रव्य तो अनादिसे हैं परंतु अभी आखिरमें जो मनुष्य भव आया, सीमंधर भगवानके समवसरणमें (दिव्यध्वनि सुनी) जबसे स्वयंको

जागृति आयी और (आत्मज्ञान) को प्राप्त किया यहाँ इस भवमें। उपदेशका योग भी यहाँसे शुरू हो गया और अनेक जीव हजारों मनुष्य, हजारों लोग, उनके उपदेशको सुनने भी आये, यानी कि समवसरणमें उपस्थित रहनेवाले जीवोंकी शुरूआत यहाँसे हो गई।

मुमुक्षु :- काफी लोग समवसरणमें होंगे ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, होंगे। जब ये (भावी) भगवानकी स्थापनाका प्रसंग आया तब दो विभाग हो गये, दो मत हो गये। (उस वक्त ऐसी) चर्चा चलती थी। (भावी) भगवानकी महिमा करनेवालेको अभीसे समवसरणका पासपोर्ट मिल गया ! गुरुदेव अभी तो स्वर्गमें हैं लेकिन लोग अभीसे (भावी) भगवानके रूपमें देखने लगे ! ऐसा भावि नैगमनय है न ! `जिसको ये पसंद नहीं आया, तो क्या उसे समवसरणमें आनेकी इच्छा नहीं होगी जब तो ऐसा करते हैं, ऐसा कहा। `क्या (उन लोगोंकी) (भावी) भगवानके समवसरणमें आनेकी इच्छा नहीं होगी ?! क्यों ऐसे भाव आते हैं ?' ऐसी चर्चा चली थी।

बहिनश्रीको बहुत भक्ति आयी थी। डेढ़ महीने तक खुदने पदोंकी रचना कर-करके भक्ति की है। प्रतिमाजी जयपुरसे डेढ़ महीने पहले आ गये थे और उन्हींके घर पर बिराजमान किये थे। वे खटियामें बैठे-बैठे दर्शन कर सके उस तरह (उनके) सन्मुख रखे थे। ये जो आगे बरामदा है, उस बरामदेमें ही बहिनश्रीके सन्मुख मुद्रा रहे, ऐसे ही दोनों भावि तीर्थंकर भगवानको रखे थे। और डेढ़ महीने तक पदोंकी रचना कर-करके उन्होंने (भक्ति की)। डेढ़ महीने तक भक्ति और प्रभावनाएँ हुई। पूरे के पूरे डेढ़ महीने तक प्रभावना हुई। बहिनश्री खुद

भक्तिके पदकी रचना करते और भक्ति कराते थे। कभी तबियत नादुरस्त हो और अशक्ति आ गयी हो तो एक कड़ी गाते थे और यदि तबियत अच्छी हो तो पूरी भक्ति खुद गाते और सबको करवाते थे। यानी डेढ़ महीने तक भक्ति होनेके बाद तो इनकी प्रतिष्ठा हुई है ! उस वक्त (ये) सब चर्चा चलती थी। जिनकी भावना थी उनको तो बहुत अच्छे परिणाम हुए। उन दिनों गुरुदेवकी महिमाके परिणाम बहुत बढ़िया हुए।

फूल बागमें हो या जंगलमें; उसको कोई सूँघो या न सूँघो; उसकी क़ीमत तो स्वयंसे है; कोई सूँघे तो उसकी क़ीमत बढ़ नहीं जाती, अथवा नहीं सूँघे तो वह कुम्हला नहीं जाता - इसी तरहसे कोई अपनेको जाने या न जाने उससे अपना मूल्य थोड़ा ही है ? अपना मूल्य तो अपनेसे ही है। कोई मान-सन्मान देवे, न देवे - सब धूल ही धूल है, उसमें कुछ नहीं है। (द्रव्यदृष्टिप्रकाश - १७२)

मुझे तो `ये षट् आवश्यक नहीं, लेकिन एक ही (अन्तर्मुख होना ही) आवश्यक है' वह पढ़कर इतना आनन्द हुआ था कि वह मुझे स्पष्ट याद है ! (अंगत)

प्रवचन - ४ दि. २२-१२-१९९१ - वचनामृत-१३५

`मुझे तो `ये षट् आवश्यक नहीं, लेकिन एक ही (अंतर्मुख होना ही) आवश्यक है' वह पढ़कर इतना आनंद हुआ था कि वह मुझे स्पष्ट याद है!' इससे फिर सोनगढ़ आना हुआ, इसका Turning point (यह प्रसंग है।) आत्मधर्ममें उन्होंने यह बात पढ़ी। `**पढ़कर**' माने आत्मधर्ममें उन्होंने यह बात पढ़ी थी कि, एक आत्मामें अंतर्मुख होना, यह एक ही निश्चय आवश्यक है, ये छः आवश्यक जो हैं सो वास्तवमें आवश्यक नहीं। यह बात पढ़कर मुझे बहुत आनंद आ गया। मैं जिसकी खोज़में था, उस बातका संकेत यहाँसे मिलता है।

देखो ! (सत्यकी) प्राप्तिकी तीव्र भावना जिसे होती है, उसका ज्ञान प्रयोजनके विषयमें कितना सूक्ष्म हो जाता है ! कभी सुना न हो, देखा न हो (फिर भी) लक्ष्य जाता है। (प्रयोजनके विषयमें ज्ञान इतना सूक्ष्म हो) तब उसका लक्ष्य जाता है कि, मैं जो चाहता हूँ वह चीज़ यहाँ होना सम्भव है। प्रयोजनकी दृष्टि कितनी सूक्ष्म व तीक्ष्ण है ! इधरसे यह निकलता है। उन्होंने तो अभी गुरुदेवको

देखा भी न था, सुना भी न था, परंतु यह बात पढ़ी तब लगा कि, मेरा प्रयोजन सिद्ध हो वैसी बात इस जगह है ऐसा लगता है। मुझे वहाँ जाना चाहिये। मुझे अवश्य, वे हैं वहाँ जाना चाहिये। यह पढ़ा और सोनगढ़ आये इसके पहले काफी तैयारी हो गई। ज्यों-ज्यों समय बीता और तृषा बढ़ी, त्यों-त्यों उनकी जिज्ञासा व भावना तीव्र होती चली। अति तीव्र भावनावश (सोनगढ़) आये हैं। वरना उस जमानेमें ६०० किलोमीटरकी मुसाफिरी करके अनजाने स्थलमें और अनजाने गाँवमें, अनजाने लोगोंके बीच जानेका विचार भी आदमी जल्दीसे नहीं करता। इतनी जल्दबाज़ी नहीं करता, तीव्रता नहीं करता। (उसे ऐसा लगता है कि) जायेंगे... जायेंगे... यह काम हो जाये बादमें जायेंगे। यह काम हो जायेगा बादमें जायेंगे, वह काम हो जायेगा बादमें जायेंगे। वैसे ही कुछ न कुछ आड़े आता जाये और समय निकलता जाये। ये (सोगानीजी) जो आये हैं, बहुत तीव्र भावना लेकर आये हैं। इसलिये उन्हें उपदेशका परिणमन हो गया। इतनी भावना लेकर आये थे इसलिए उपदेशका परिणमन हो गया। वरना उपदेश तो सब सुनते थे और सबने सुना भी। सुना था और सुनते थे और बादमें भी उपदेश सुना है। परंतु इनका ही काम हुआ ऐसा क्यों ? ऐसी ही कोई तैयारी हो चुकी थी।

मुमुक्षु :- आत्मधर्ममें यह पढ़कर क्यों याद रह गया, यह इनके जीवनचरित्रकी शुरूआतमें (दिशाबोधमें) दिया है।

पूज्य भाईश्री :- (दिशाबोध) `**प्रवचनप्रसादी स्वरूप सारगर्भित वाक्य `षट् आवश्यक नहीं, लेकिन एक ही आवश्यक है' ने उनके अंतरको झकझोर दिया, उन्हें गहरी चोट लगी।**' (झकझोर दिया माने) उन्हें हिला दिया और बहुत गहरी चोट लग गई। `**इसी वाक्यामृतके भावभासनसे मानो अनंतकालसे अनंत कर्तृत्वके बोझ तले दबी,**

छटपटाती उनकी आत्मा सहज उबर गई और उन्हें आत्मा भार मुक्त-सा हलका भासित होने लगा। अंतरमें रोम-रोम झनझना उठा और स्वरलहरी निकली, अरे ! मिल गया ! जिस सत्यकी खोज थी, उसका विधि-प्रकाशक मिल गया !' विधि-प्रकाशक माने गुरुदेव **`तत्क्षण ही उन्हें पूज्य गुरुदेवश्री और उनके मंगलकारी वचनोंके प्रति श्रद्धा व अंतर प्रीति स्फुरित हुई और अहोभाव छलक उठा, मन भक्तिविभोर हो उठा। और उन्होंने `आत्मधर्म' में अंकित श्रीगुरुके भव्य चित्रको श्रद्धा-सुमनके रूपमें निम्न अर्घ अर्पित किया :**

`उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरूसुदीपसुधूपफलार्घकै;
धवलमंगलगानरवाकुले जिनग्रहे जिननाथ महंयजै।'

(इस तरह) फिर उन्होंने अर्घ चढ़ाया। ये पढ़नेके बाद उन्होंने गुरुदेवका जो फोटो छपा था उसे अर्घ चढ़ाया। गुरुदेवको अर्घ चढ़ा सकते हैं कि नहीं ? या फोटोको अर्घ चढ़ा सकते है कि नहीं ? इसका उत्तर यहाँ आ गया। देखो ! यह जीवंत दृष्टांत है। है कि नहीं ? (यदि अर्घ चढ़ानेसे मिथ्यात्व तीव्र होता तो) वास्तवमें उसवक्त मिथ्यात्व तीव्र होकर उन्हें सम्यग्दर्शन नहीं होना चाहिये था, बजाय इसके (सम्यग्दर्शन) हुआ ! यह क्या सूचित करता है ? कि सत्पुरुषके प्रति अहोभावसे, अत्यंत भक्तिभावसे उसका (जीवका) मिथ्यात्व गलता है। वास्तविकता तो ऐसी है।

`अपने सुख-धाममें सदा जमे रहना' बस ! - यही बात बारह अंगका एकमात्र सार है। (द्रव्यदृष्टिप्रकाश - १९२)

अनन्त तीर्थंकर हो गए, लेकिन अपने तो गुरुदेवश्री ही सबसे अधिक हैं। जैसे कि - अपनेको धनकी ज़रूरत हो और कोई लखपति अपनी ज़रूरत-अनुसार धन दे देवे, तो वह (लखपति) अपने लिए तो अन्य करोड़पतिसे भी अधिक है। - ऐसे ही, गुरुदेवश्री अपने लिए तो तीर्थंकरसे भी अधिक हैं, अपना हित तो इनसे हुआ है।

प्रवचन - ५ दि. १५-११-१९९१ - वचनामृत-५९

`अनंत तीर्थंकर हो गए, लेकिन अपने तो गुरुदेवश्री ही सबसे अधिक हैं।'** विद्यमान उपकारी सत्पुरुष, प्रत्यक्ष उपकारी सत्पुरुषकी यह भक्ति है। **`अनंत तीर्थंकर हो गए, लेकिन अपने तो गुरुदेवश्री ही सबसे अधिक हैं। जैसे कि - अपनेको धनकी जरूरत हो और कोई लखपति अपनी जरूरत - अनुसार धन दे देवे, तो वह (लखपति) अपने लिए तो अन्य करोड़पतिसे भी अधिक है।' जगतमें कई करोड़पति - अरबपति हैं। परंतु कोई दसलाखका धनी ऐसा कहे कि, ले जा लाख रुपया ! और बादमें खुद हो गया अरबपति (तो) उपकार किसका ? कि उपकार है उस लखपतिका ! मेरे लिये तो वह लखपति नहीं किन्तु अरबपतियोंसे भी अधिक है।

प्रेक्टीकल है कि नहीं ये बात ? (खुद) प्याससे मरा जाता हो, उसवक्त मीठे पानीका एक लोटा (कोई) पिला दे तो उसने पानी नहीं पिलाया, परंतु अमृत पिलाया है ! उसने वास्तवमें पानी नहीं पिलाया लेकिन अमृत पिलाया है। एक लोटा पानीकी कितनी कीमत ? तो कहते हैं कि, अमृत जितनी उसकी कीमत ! (क्योंकि उस) समयकी कीमत है। `**ऐसे ही, गुरुदेवश्री अपने लिए तो तीर्थंकरसे भी अधिक हैं,...**' ऐसे ही गुरुदेवश्री अपने लिए तो तीर्थंकरसे भी अधिक हैं, `**अपना हित तो इनसे हुआ है।**' यह सब कहाँ सिखाने जाये ? ये सिखाने पर सीखा जाता है क्या ? गुरुदेवकी भक्ति तो बहुत लोगोंने की परंतु भक्ति करनेमें ऐसी भक्ति किसीने नहीं की। जितनी दृष्टि तीखी है, भक्ति भी उनकी इतनी ही तीखी है।

मुमुक्षु :- उपकार हुए बिना मूल्यांकन नहीं आता।

पूज्य भाईश्री :- हाँ !

मुमुक्षु :- तीखी भी कितनी कि `अनंत तीर्थंकरसे अधिक' - ऐसे शब्द निकलने, यह कोई मामूली बात नहीं है।

पूज्य भाईश्री :- ऐसी बात है। यह वास्तविकता है। उनके अनुभवकी यह वास्तविकता है।

मुमुक्षु :- यही उनका विवेक है !

पूज्य भाईश्री :- गुरुदेवश्रीने श्रीमद्जीका विवेक किया था। गुरुदेवश्रीको श्रीमद्जीके वचन पढ़नेसे आत्मामें कुछ असर आया है। ये पुरुषके वचन भीतरमें गूँजते क्यों हैं ? भीतरसे आत्मा खिलता है। (श्रीमद्जी) सत्पुरुष हैं, उनका उपकार, उनके वचन इस आत्मामें गूँजते हैं, आत्मरुचिको पोषण देते हैं, आत्मश्रद्धाको पोषण देते हैं, उनका उपकार क्यों नहीं गाया जाये ? कैसे नहीं गाये ?

मुमुक्षु :- यह गूँज पूरे ४५-४६ साल तक गुरुदेवके प्रवचनोंमें

दिखती है।

पूज्य भाईश्री :- एक-एक प्रवचनमें (श्रीमद्जीकी) जो बात आयी है उसका कारण यह है कि, बात अंदरमें उतर गई है। एक-एक वचन अंदर उतर गया है, टंकोत्कीर्ण हो गया है।

लोगोंमें नहीं कहा जाता कि, `खाखरानी खिसकोलीने साकरनो स्वाद क्यांथी आवे ?' हमारे गुजरातीमें ऐसी कहावत है। `खीसकोली' को क्या कहते हैं ? गिलहरी। `खाखरा' माने ये पलाशके जो पत्ते आते हैं न ! पलाशके पेड़ होते हैं। उसके पत्तेमेंसे थाली-पत्तल बनते हैं न ! (जिसमें) वैष्णव लोग खाते हैं। उस पेड़में कोई फल तो होते नहीं। वह सूखे पत्तेको थोड़ा-थोड़ा खाती है। जो पत्ते सूख गये हो उसे खाती है। उसमें कोई स्वाद तो होता नहीं। तो ऐसा कहते हैं कि, `वह खाखराकी खीसकोली, उसे शक्करका स्वाद कहाँसे मालूम हो ?' वैसे जिसके आत्मा पर उपकार हुआ हो और अंदरसे आत्माका स्वाद आया हो, उसे स्वच्छंदीजीव क्या जाने कि सत्पुरुषकी महिमा क्या चीज़ है ? उसे इसके स्वादका पता नहीं। वह तो (दूसरोंकी) भूल निकालनेमें अटकता है। यहाँ ऐसा कहा है, या यहाँ ऐसा बोले हैं, और यहाँ ऐसा शब्द इस्तेमाल किया है, यहाँ ऐसा किया, (लेकिन) अब चुपचाप बैठ जा भाई ! तेरा खुदका ठिकाना नहीं है, तेरे भव अभी बाकी हैं, उन्होंने भवका छेद कर दिया है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवश्रीने कितने गुणगान किये प्रत्येक बात पर और गुरुदेवके शिष्य (!) अवगुण गाने लगे ! कहाँ मेल करना ?

पूज्य भाईश्री :- उसमें तो क्या है कि इसका नाम है पंचमकाल।

पूज्य गुरुदेवश्री अपने लिए तो अनन्त तीर्थंकरसे अधिक हैं, क्योंकि अपना कार्य होनेमें निमित्त हुए - इसीलीए।

दूसरा, उन्होंने यह बताया कि, भैया ! `तुम सिद्ध तो क्या... सिद्धसे भी अधिक हो, अनन्त सिद्ध-पर्यायें जहाँसे सदैव निकलती रहें, ऐसे तुम हो।' - ऐसा उत्कृष्ट वाच्य पूज्य गुरुदेवश्रीने बतलाया !

प्रवचन - ६ दि. १४-०१-१९९२ - वचनामृत-१७३

`पूज्य गुरुदेवश्री अपने लिए तो अनंत तीर्थंकरसे अधिक हैं,...'** देखा ! क्या बात कही ? अपने लिए अपेक्षा ली न ! अपेक्षित बात है, वरना अनर्थ हो जाये। **`पूज्य गुरुदेवश्री अपने लिए तो अनंत तीर्थंकरसे अधिक हैं, क्योंकि अपना कार्य होनेमें निमित्त हुए -' क्यों (अनंत तीर्थंकरसे अधिक हैं) ? कि खुदका कार्य करनेमें वे निमित्त हुए हैं। खुदका (आत्मज्ञान का) काम जीवनमें (प्राप्त) हुआ है, इसलिए अनंत तीर्थंकरसे अधिक कहा। यह कारण है। (क्योंकि) अनंत तीर्थंकरके समवसरणमें जाने पर भी जो कार्य नहीं हुआ था वह यहाँ सोनगढ़में हुआ। विचार करने योग्य विषय यह है कि, जिनकी वाणीसे (यानी कि) गुरुदेवकी वाणीसे (आत्मज्ञान)

हुआ न ! घंटोंमें जिन्होंने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया उस वाणीका सामर्थ्य कितना !? और वह वाणी जिस भावसे निकली है उस भावकी कीमत कितनी ? गुरुदेवके भावकी कीमत कितनी ? कि जिस भावके निमित्तसे वाणी निकली और उसके निमित्तसे दूसरेको सम्यग्दर्शन और आत्मज्ञान घंटोंमें प्राप्त हो जाये !! यह कीमत करने जैसी है।

मुमुक्षु :- यह वाणी स्वयं तीर्थंकर द्रव्यत्वको सूचित करती है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, तीर्थंकर द्रव्य हैं और उनका खुदके आत्मभावका उन प्रवचनोंमें कितना घुँटन चलता होगा ?! कि जिस आत्मभावके सतत घूँटनमेंसे वाणी निकली कि जिससे किसीको घंटोंमें सम्यग्दर्शन हो जाये !! यह समझने योग्य विषय है। वास्तवमें तो सोगानीजीने सम्यग्दर्शन प्राप्त करके गुरुदेवके गौरवको ही प्रसिद्ध किया है। गुरुदेवकी गरिमा बहुत थी लेकिन लोग इसे जाने उस प्रकार उनके निमित्तसे एक कार्य हुआ। लोगोंके नहीं जाननेसे उनकी गरिमा कोई कम नहीं हो जाती है परंतु लोग इसे जाने ऐसा यह एक प्रसंग बन गया।

मुमुक्षु :- गुरुदेवश्रीका प्रत्येक वचन इतना कीमती था ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, प्रत्येक प्रवचन ऐसे थे। ऐसे गुरुदेवके भाव थे। साथ ही सोनगढ़की भूमि तीर्थभूमि हुई। वहाँसे तिरे इसलिये वह तीर्थभूमि हुई। सोनगढ़के लिये गुरुदेवकी वाणी निष्फल नहीं गई।

मुमुक्षु :- वह प्रवचन कैसा होगा ?

पूज्य भाईश्री :- सोनगढ़की भूमिमें कोई सम्यग्दर्शनरूपी फल नहीं पका था, वहाँ यह फल पका। वास्तवमें तो ऐसा है। वहाँ किसीके सम्यग्दर्शनका जन्म नहीं हुआ था। वहाँ हुआ - सोनगढ़की भूमिमें हुआ।

मुमुक्षु :- गुरुदेवके गहरे भावोंका उत्कृष्ट प्रमाण दिया (उन्होंने)।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, उत्कृष्ट प्रमाण है। भाव कितने उत्कृष्ट और गहरे भी कितने ! कितने उत्कृष्ट और कितने गहरे हैं !! कि अगर कोई जीव पात्र होकर आये तो शीघ्रतासे भीतरमें आत्मा प्रगट हो जाये, परमात्मा प्रगट हो जाये ! जिसके जन्म-मरण मिटकर निर्वाणपदकी प्राप्ति हो जाये उसकी कीमत कैसे हो ? कैसे इसकी कीमत की जाये ? भले ही एक जीव हो, परंतु कितनी कीमत ? (बहुत बड़ी कीमत है।)

मुमुक्षु :- उस वक्त टेप तो था नहीं।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, टेप तो नहीं था। वरना वही व्याख्यान टेप हो गया होता, जब तो बात ही कोई और हो जाती।

मुमुक्षु :- टेपमें नहीं है ?

पूज्य भाईश्री :- वे तो २००२ के सालमें (सोनगढ़) आये थे। टेप तो मेरे प्रवेश के बादमें २०१५-२०१६ में शुरू हुआ। २०१६ या २०१७ में शुरू हुआ। वे तो इसके पहले २००२ में सर्वप्रथम आये थे। शासनके पुण्य ऐसे थे कि, टेप करनेकी सूझ आ गई कि जब टेप किया जा सकता है तो क्यों न कर ले ? बादमें टेप होना शुरू हुआ।

`**दूसरा, उन्होंने यह बताया...**' (उन्होंने माने) गुरुदेवने बताया। क्या बताया ? `**कि, भैया ! `तुम सिद्ध तो क्या ?... सिद्धसे भी अधिक हो,...**' सिद्ध नहीं सिद्धसे भी अधिक हो। `**अनंत सिद्ध-पर्यायें जहाँसे सदैव निकलती रहें, ऐसे तुम हो।**' एक समयकी सिद्धपर्यायसे अनंत गुण विशिष्ट सिद्धपर्याय जहाँसे निकलती हैं ऐसे तुम हो। अनंत सिद्धपर्यायके जन्मदाता तुम हो। तू ऐसा-वैसा नहीं है। तुझे दीनता करनेकी कोई जरूरत नहीं है। ऐसा है।

मुमुक्षु :- यहाँ कहनेका भाव ऐसा है कि द्रव्यमेंसे पर्यायें आती हैं ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, द्रव्यमेंसे पर्यायें आती हैं। ऐसा ही तो है न ! सिद्धपर्याय तो क्या प्रत्येक पर्यायरूपमें द्रव्य ही तो परिणमता है, और कौन परिणमता है ?

मुमुक्षु :- कोई ऐसा विचार करे कि, द्रव्य शुद्ध है तो पर्याय शुद्ध ही निकलनी चाहिये ?

पूज्य भाईश्री :- वह त्रिकाली (द्रव्य)। वह त्रिकाली द्रव्य और यह प्रमाणका द्रव्य। दोनोंमें फर्क है। द्रव्यके दो अर्थ होते हैं। एक त्रिकाली द्रव्यस्वभावको भी द्रव्य कहा जाता है और दूसरा, शुद्धाशुद्ध पर्यायसहित - परिणामसहितके पदार्थको भी द्रव्य ही कहा जाता है। जहाँ जो बात चलती हो तथारूप समझना।

`**ऐसा उत्कृष्ट वाच्य पूज्य गुरुदेवश्रीने बतलाया** !' वाच्य अर्थात् अपना स्वरूप। (सबसे) उत्कृष्ट जो अपना स्वरूप है वह पूज्य गुरुदेवने बतलाया। अतः वे तो तीर्थंकरसे भी अधिक हैं। वैसे तो बतलाया था तो सभी तीर्थंकरों व सभी ज्ञानियोंने परंतु ध्यान खींचा उस पर निमित्तका आरोप आता है। जिसको ऐसा उपकार होता है उसे ऐसा लगता है कि अहो...! ये पुरुष अगर नहीं मिले होते तो मेरा क्या होता ? मुझे यदि ये पुरुष - ये महात्मा नहीं मिले होते, ये ज्ञानीपुरुष मुझे नहीं मिलते तो मेरा क्या होता ? अभी आगे भी मैं न जाने कितने अनंतकाल तक जन्म-मरण करके दुःखी होता ? बस ! यह जो बात उसकी समझमें आयी है, उनका यह उपकार है। इसप्रकार उपकार (लगता है कि) मुझे बचा लिया ! अनंत जन्म-मरणसे मुझे बचा लिया ! एक डॉकटर आखरी श्वासमें बचा ले, तो उस डॉकटरको जिंदगीपर्यंत नहीं भूलेगा। डॉकटर ! आपने मुझे बचाया। मैं तो मर गया था आपने मुझे जीवित रखा। यहाँ पर (श्रीगुरु) अनंत जन्म-मरणसे बचाते हैं, परंतु जो बचता है उसे

वैसा उपकारका अहोभाव आता है। जो नहीं बचा हो उसे नहीं आता। उसे ऐसा कुछ नहीं लगता। किसको लगता है ? जिसे फायदा हुआ हो उसे ऐसा लगता है। इसलिये अनंत तीर्थंकरसे अधिक कहा है। दो जगह कहा है। और भी एक जगह कहेंगे। यह १७३ (पूरा) हुआ।

'मैं' ऐसी भूमि हूँ जहाँसे क्षण-क्षणमें नया-नया फल उत्पन्न होता ही रहता है। जैसे भूमिसे ऋतु-ऋतुके अनुसार अनेक फल उत्पन्न होते रहते हैं, वैसे 'मैं ऐसी भूमि हूँ' जहाँसे सुखका फल उत्पन्न होता ही रहता है। 'मै' अमृतरससे भरा हुआ हूँ। 'मैं' तो ऐसी भूमि हूँ जिसे फलके लिए जलकी भी ज़रूरत नहीं रहती, क्योंकि 'मैं' स्वयं ही सुखरूप हूँ; दूसरे पदार्थोंकी अपेक्षा ही नहीं। (**द्रव्यदृष्टिप्रकाश - १८६**)

(खुदका परिणाम बताते हुए कहा :) **इ...त...नी लगनी रहती है कि मैं कब एकान्तमें बैठूँ....एकान्तमें बैठनेकी लगन रहती है; फिर भी एकान्त नहीं मिले तो वैसे ही अन्दरमें एकान्त बना लेता हूँ। एकान्त न मिले तो इसके लिए तड़पता नहीं (आकुलित नहीं होता)।** (अंगत)

प्रवचन - ७ दि. १६-१२-१९९१ - वचनामृत-११९

'(**खुदका परिणाम बताते हुए कहा :**)' (इस बोलमें अपनी अंगत बात की है।) '**इ..त..नी लगनी रहती है...**' देखो ! ज्ञानदशा होनेके बाद अंदर जमनेके लिये '**इ..त..नी लगनी रहती है, कि मैं कब एकांतमें बैठूँ... एकांतमें बैठनेकी लगन रहती है; फिर भी एकांत नहीं मिले तो वैसे ही अंदरमें एकांत बना लेता हूँ।**' क्योंकि बाहरकी परिस्थिति अपने बसमें नहीं है। ट्रेनमें मुसाफिरी करते हो, कलकत्तासे यहाँ तक आनेमें तो २४ घंटे, ३६ घंटे, ४८ घंटेका सफर होता है, (उसमें) एकांत कहाँ मिले ? (तो कहते हैं) अंदरमें एकांत बना लेता हूँ। किन्तु एकांतके लिये बहुत लगनी रहती ! फिर बाहरसे Absent हो जाते जैसे कि कोई है ही नहीं ! अंदरमें उतर जाते।

मुमुक्षु :- अंदरमें एकांत बना लेता हूँ !

पूज्य भाईश्री :- उनका पुरुषार्थ बहुत था न ! भीतरमें विकल्पकी दशामें भी चैतन्य परिणति (चलती है। अर्थात्) जागृत परिणति (चलती है।) जिसे चैतन्यकी जागती ज्योत - ऐसा गुरुदेव कहते हैं, उसका करंट इतना ज़ोरसे चलता था कि उन्हें भीतरमें जम जाऊँ.... जम जाऊँ... जम जाऊँ... ऐसा ही हुआ करता था ! इसीमें रह जाऊँ और इसीमें जम जाऊँ। परंतु पूर्वकर्मकी परिस्थिति एकदम विपरीत हो, विचित्र हो, कि उन्हें एकांत भी न मिले ! संयोगमें अकेले बैठनेके लिये अलग-से कमरा तक न मिले ! ऐसी परिस्थितिमें आ चुका हूँ, (इसलिये फिर अंदरमें एकांत बना लेता हूँ।) यह खयालमें आ गया कि इसमें - परद्रव्यमें तो अपनी कुछ चलती है नहीं, चलनेवाली भी नहीं है। पूर्वकर्मके उदयको रोका जा सके, यह तो नामुमकिन है कि जैसे छोड़कर कहीं भाग जायें !

निवृत्तिमें कोई निर्जरा करते हैं इससे अधिक निर्जरा ऐसे जीव प्रवृत्तिमें करते हैं। श्रीमद्जी और सोगानीजी जैसे (धर्मात्माओंने) निवृत्तिसे भी अधिक निर्जरा प्रवृत्तिमें की है। वैराग्य आने पर वृत्ति ज़ोरसे अंदर जाती है। उसवक्त सम्यग्दर्शनकी तारतम्यता अधिक मात्रामें थी। जिसके कारण आगेकी स्थिति कट जाती है। (स्थिति) नहीं लंबानेका कारण यह है कि पुरुषार्थ इधरसे ही ज़ोर पकड़ता है।

मुमुक्षु :- ट्रेनमें इतनी आवाज, कोलाहल, ट्रेन चलती हो उसकी आवाज, दूसरे मुसाफिरोंका कोलाहल होनेके बावजूद भी...

पूज्य भाईश्री :- कुछ नहीं, कोई लेना या देना। सब बाहर ही बाहर। आत्मामें कहाँ किसीका प्रवेश है ? अंदरमें जो करंट चलता है उसमें आत्मामय हो जाते हैं। पूरा परमात्मा प्रत्यक्ष है। परिणतिमें तो पूरा परमात्मा प्रत्यक्ष है। प्रत्येक अंशमें प्रत्यक्ष है। भिन्न जो पड़े हैं न अंदरसे ! इतनी सावधानी है, इतना पुरुषार्थ

है। भाव आते ही उग्रता आ जाती है, परिणति तो चालू ही है लेकिन उग्रता आ जाती है। (स्वरूप) में सावधान होनेका भाव आता है। इसमें पुरुषार्थकी तारतम्यता ही सीधी बढ़ जाती है। इसलिये अंदरमें एकांत मिल जाता है। फिर बाहरका कोई लगाव या Disturbance नहीं रहता। दूसरे लोग भी आदी हो जाते हैं कि नहीं होते ? एक आदमीका घर फैक्टरीके पास हो। शहरमें तो होता है न ? पुरानी फैक्टरी हो, बगलमें मकान हो तो सारा दिन फैक्टरीकी मशीनके चलनेकी आवाज़ आती हो, तो उसका आदी हो जाता है कि नहीं ? नया बाहरसे आनेवाला यों कहेगा कि, 'अरे ! आपके घरके पास तो सारे दिन इतनी (आवाज़) !' (वह क्या कहेगा) चौबीसों घंटें, तीनों पाली चलती है फिर भी हमलोग तो सो जाते हैं। हमें आदत पड़ गई। (अर्थात् जीव) चाहे तो किसी भी चीज़से उपेक्षित हो सकता है।

मुमुक्षु :- घाटकोपरमें ट्रेनकी ऐसी आवाज़ आती है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, लोगोंको आदत पड़ जाती है। उनलोगोंको (आवाज़ आती हो फिर भी) पता नहीं होता। नए व्यक्तिका ध्यान तुरंत जाता है। हाँ, आवाज़ बहुत आती है जब कि उन लोगोंको आदत हो चुकी होती है।

मुमुक्षु :- ये सारी बातें जरूरतमेंसे पैदा होती हैं ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, जरूरतमेंसे, रुचिमेंसे पैदा होती हैं।

'**फिर भी एकांत नहीं मिले तो वैसे ही अंदरमें एकांत बना लेता हूँ। एकांत न मिले तो इसके लिये तड़पता नहीं (आकुलित नहीं होता।)**' (यानी कि) बाहरमें फिर एकांत न मिले तो (कोई) माथापच्चीमें नहीं जाता। मान लीजिये कोई रूम मिल जाये तो अच्छा, लेकिन इसके लिये भागा-दौड़ी करूँ, इसके लिये समय

बिगाड़कर प्रयत्न करूँ, ऐसा नहीं करता। फिर तो चाहे जो स्थितिमें हो, उस स्थितिमें एकांत बना लेते।

प्रायः उन्हें रात बहुत अनुकूल थी। रातको सारा जगत सोया रहता है, सबको नींद आती है। उनका क्या था कि रस ही कम हो गया था और अंदरमें परिणति भी ज़रा ज़ोरदार थी ! तो जब भी आँख खुल जाती कि, पद्मासन लगाकर बैठ जाते। (आसन) जमा देते। बहुत Practice की है। बहुत साधना की है। घंटों तक (ध्यानमें बैठ जाते।)

मुमुक्षु :- जीवनीमें श्रवणबेलगोलाका प्रसंग लिखा है न ! रातको पहाड़ पर चढ़ जाते।

पूज्य भाईश्री :- ऊपर चले जाते, जब श्रवणबेलगोला जाते तब। घर पर भी उनकी यही स्थिति थी। सोनगढ़ आये तो वहाँ पर वैसी ही, कहीं भी गये हो, रातको तो सब सो जाते हैं, कोई Disturbance नहीं रहता, एकांत मिल जाता। दुनिया सो गई है न ! अपने जागो, अपना काम कर लो। लोग अभी सोये हैं, इतनेमें अपना काम कर लो ! अपना अंतर काट लो ! बहुत काम किया है ! इस प्रकारसे बहुत काम किया है !

इसलिये (एकांत न मिले) तो आकुलता नहीं करते। इसमें होता क्या है कि जो हठीले जीव होते हैं उनको हठ होती है कि, मुझे ऐसी अनुकूलता मिले तो काम करूँ, ऐसी अनुकूलता हो तो काम करूँ, फिर वे बाहरी संयोगोंको बदलनेकी आकुलता बहुत करते हैं। फिर अगर उनकी इच्छाके मुताबिक बाहरमें संयोग नहीं बनते हैं, या इसमें बाधा डालनेवाला अगर कोई होता है तो उसके प्रति गुस्सा हो जाता है। `क्या आप लोगोंको पता नहीं कि मुझे ऐसा चाहिये, मुझे वैसा चाहिये, मुझे ऐसा चाहिये।' (यहाँ वे) आकुलता

नहीं करते। परिस्थिति चाहे जैसी हो, अंदरमें परिणामको मोड़ लेते हैं। खुद परिणामको मोड़ लेते हैं, संयोगोंको बदलनेकी कोशिश नहीं करते। परिणामको (अंदरमें) मोड़ लिया जाओ ! ऐसी स्थितिमें रहते हैं।

शास्त्र इधरसे (आत्मामें से) **निकलते हैं तो इधरसे निकली सब बातें शास्त्रसे मिल जाती हैं। शास्त्र देखकर इधरका मिलान नहीं करना है, किन्तु इधरसे निकली बात शास्त्रसे मिलान कर लेना।** (शास्त्र देखकर स्वयंकी समझको मिलान करनेकी पद्धति उचित नहीं है क्योंकि इस पद्धतिसे स्वयंके अभिप्राय अनुसार शास्त्रवचनका अर्थघटन (समझ) होनेकी संभावना है; और इसमें जो भूल रही हो तो वह शास्त्राधारसे और दृढ़ हो जाती हैं; साथ ही ऐसी पद्धतिसे ज्ञानीके वचन भी शास्त्र - आधारसे स्वीकार करनेका अभिप्राय रह जाता है जिससे प्रत्यक्ष सतपुरुषके वचनपर प्रीति / भक्ति / विश्वास नहीं रहता। अतएव समझी हुई बातको, अनुभवपद्धतिसे समझना चाहिए; और वैसे अनुभवको शास्त्रसे मिलान करना ही सही पद्धति है; अर्थात् उपादानकी मुख्यातावाली पद्धत्ति ही सही पद्धत्ति है)। (**द्रव्यदृष्टिप्रकाश - ५०२**)

`**एक समयकी ज्ञानपर्याय स्वतन्त्र है,** (उसमें) **पूर्वपर्याय भी कारण नहीं; उसमें तीन कालके पदार्थ जाननेकी ताकत है' - ऐसा सुनकर मुझे तो ऐसी चोट लगी कि तबसे मेरा पढ़ना कम हो गया। ...चलो न ! पर्यायका स्वभाव ही जाननेका है... तो सहज जाननेमें आ जाएगा,** (जाननेके लिए) **आकुलता क्यों करे !... यहाँ** (अन्तरमें) **सुख पीवो न !... न्याय आदि नक्की करनेमें** (विकल्प वृद्धि होनेसे) **आकुलता होती है... अपनेको तो सुख चाहिए।**

प्रवचन - ८ दि. २३-१२-१९९१ - वचनामृत-१३७

`**एक समयकी ज्ञानपर्याय स्वतंत्र है,** (उसमें) **पूर्वपर्याय भी कारण नहीं; उसमें तीन कालके पदार्थ जाननेकी ताकत है' - ऐसा सुनकर मुझे तो ऐसी चोट लगी कि तबसे मेरा पढ़ना कम हो गया। ...चलो न ! पर्यायका स्वभाव ही जाननेका है... तो सहज जाननेमें आ जाएगा,** (जाननेके लिए) **आकुलता क्यों करे ! यहाँ** (अंतरमें) **सुख पीवो न ! न्याय आदि नक्की करनेमें** (**विकल्प वृद्धि होनेसे**) **आकुलता होती है अपनेको तो सुख चाहिए।**'

यह उनके परिणाममें जिस प्रकारका झुकाव था उस झुकावको

यहाँ स्पष्ट किया है। सामान्यतया मुमुक्षुजीवको भी अधिक जानना, शास्त्रका भी अधिक ज्ञान जुटाना और अधिक जानना, ऐसी जो वृत्ति रहती है - वह उसे विकल्पवृद्धिका कारण होती है। और उसका उपयोग सिर्फ शास्त्रमें - बाहर ही लगे रहनेका कारण (बनता है)। आकर्षण होनेका कारण - बाह्य आकर्षण (होनेका कारण बनता है)। यह आकर्षण उन्होंने तोड़ दिया है। कैसे तोड़ा ?

जब उन्होंने सुना कि, एक समयकी ज्ञानपर्याय स्वतंत्र है। जब-जब, जिस-जिस समयमें ज्ञान पर्याय उत्पन्न होती है - वह स्वतंत्रपर्याय है। पूर्वपर्यायका (भी) उसे कारण नहीं है। पहले इतना ज्ञान था इसलिए अब इतना ज्ञान हुआ, ऐसा कारण नहीं है। स्वतंत्ररूपसे (पर्याय उत्पन्न होती है)। इस परसे तो गुरुदेवने षट्कारककी स्पष्टता की। एक समयकी पर्याय है वह स्वतंत्र है। पूर्वपर्यायका (उसे) कारण नहीं है, निमित्त भी कारण नहीं और स्वद्रव्य भी कारण नहीं है। न तो स्वद्रव्य कारण है, नाही परद्रव्य कारण है, न तो निमित्त कारण है, (या) न तो कोई पूर्वपर्याय कारण है।

मुमुक्षु :- शास्त्रमें तो आता है कि कारण बिना कार्य नहीं होता ?

पूज्य भाईश्री :- वह व्यवहार है। पूर्वपर्यायको, निमित्तको या द्रव्यको कारण कहना सो व्यवहार है। उसे व्यवहार कहते हैं। निश्चयसे वही पर्याय कारण है और वही पर्याय कार्य है।

मुमुक्षु :- द्रव्यकी जैसी योग्यता हो, ऐसी पर्याय उत्पन्न होती है, भले ही द्रव्यके कारणसे नहीं, तो ऐसा नियम तो हुआ कि नहीं ?

पूज्य भाईश्री :- द्रव्यकी योग्यता माने क्या ? स्वभावकी योग्यता लेनी है ? परिणमनकी योग्यता (कहोगे जब तो) पर्याय प्रधानता आ गई।

मुमुक्षु :- इसके संस्कार कहे तो ?

पूज्य भाईश्री :- वह भी व्यवहार है। संस्कार कब नक्की होते हैं ? कि एक जीवने पूर्वमें आत्माके संस्कार लिये हो। (जैसे कि) गुरुदेवश्री और श्रीमद्जी संस्कार लेकर आये थे। अब कुछ साल बाद उन्हें ज्ञान हुआ। तो कुछ साल बाद जो ज्ञान हुआ, इसके पहलेका और संस्कार प्राप्त हुए (इसके बादका) दोनोंके बीच जो अंतराल (है), इसके सर्व (समयमें) पूर्व संस्कार कायम थे। संस्कार प्राप्त होनेके पश्चात् सभी समयसे अंततः ज्ञान प्राप्ति हुई तब तक पूर्व संस्कारकी मौजूदगी है फिर बीचके समयमें ज्ञान क्यों नहीं हुआ ? ये तो व्यवहारसे ऐसा बोला जाता है। जब खुद पुरुषार्थ करे तब काम होता है। मूलमें तो पुरुषार्थ प्रधान बात है।

मुमुक्षु :- द्रव्य उलटा परिणमन करे तब वैसी उलटी पर्याय उत्पन्न हो और सुलटा परिणमन करे तब वैसी पर्याय उत्पन्न हो, तो द्रव्यकी ऐसी कोई योग्यता होगी तभी तो ऐसा होता होगा न ?

पूज्य भाईश्री :- ऐसी योग्यता (अवश्य परंतु) पर्याय प्रधानताकी ऐसी बात है, फिर पर्याय प्रधानतासे द्रव्यकी बात की जाती है। मूल बात तो पर्यायकी ही है। भेदसे लिया जाए तो पर्यायकी (बात) है। अभेदसे लिया जाए तो द्रव्यकी (बात) है। वह अभेद विवक्षा है।

वैसे बात तो यहाँ तक है - थोड़ी विचार करने योग्य बात है। (यह तो) प्रश्न है इसलिए हम ले लें कि, भव्यत्व और अभव्यत्वको अशुद्ध पारिणामिक कहा है, क्योंकि चार भावमें उनका समावेश नहीं है। और शुद्ध पारिणामिकमें उनका समावेश नहीं है। अतः पारिणामिक कहा तो अशुद्ध पारिणामिक कहा। क्योंकि वह द्रव्यको लागू पड़ता है, किसी गुणकी वह पर्याय नहीं इसलिए द्रव्यको लागू पड़ता है, परंतु वह पर्यायप्रधान बात है। भव्यत्व और अभव्यत्व दोनों पर्यायप्रधान

बातें हैं। और वह एक प्रकारकी द्रव्यकी योग्यता है, इसलिए उसे पारिणामिकभावमें (ले लिया)। अनादि अनंत होनेसे पारिणामिक भावमें ले लिया।

मुमुक्षु :- योग्यता शब्द आया न ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, मतलब इसमें क्या है कि, गुणकी योग्यता और द्रव्यकी योग्यता - ऐसी दो प्रकारकी योग्यतायें हैं। (जब) गुणकी योग्यता (कहते हैं तब) द्रव्यका गुण होनेसे कभी-कभार उसका द्रव्य-प्रधानतासे भी कथन कर सकते हैं - वचन कर सकते हैं।

जैसे कि चारित्रगुणमें राग होता है, ऐसा भी कह सकते हैं (और) चारित्रगुण रागरूप परिणमन करता है, ऐसा भी कह सकते हैं और आत्मा रागरूप परिणमता है, ऐसा भी कह सकते हैं। दोनों प्रकारसे कह सकते हैं। गुणभेदसे भी कह सकते हैं और द्रव्यसे भी कह सकते हैं। जब कि कुछएक पर्यायें ऐसी हैं कि जिन्हें गुणका परिणमन नहीं है बल्कि द्रव्यका ही सीधा परिणमन है। जैसे कि ये भव्यत्व, अभव्यत्व, मनुष्यत्व ले लो ! मनुष्यत्व किस गुणकी पर्याय है ? वह द्रव्यकी पर्याय है। किसी एक गुणकी पर्याय नहीं। मनुष्यके रूपमें वह द्रव्य उत्पन्न हुआ - (यानी कि) वह आत्मद्रव्य मनुष्य (पर्याय) रूप परिणमन कर रहा है। वह द्रव्यकी योग्यता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीको ज्ञानमय पर्यायें उत्पन्न होती हैं और अज्ञानीको अज्ञानमय पर्यायें उत्पन्न होती हैं, तो इसमें सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन कारण तो हुआ न ?

पूज्य भाईश्री :- सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन व्यवहारसे कारण है। निश्चयसे ज्ञानगुणका कारण-कार्य है। निश्चयसे वह ज्ञानकी पर्याय स्वयं ही कारण-कार्य है। स्वभाव (रूप परिणमनमें) तो फिर भी गुण ले सकते हो लेकिन विभाव (रूप परिणमनमें) तो गुण भी नहीं ले

सकते। क्योंकि अज्ञान है वह गुणका कार्य नहीं। सम्यग्ज्ञान गुणका कार्य है, परंतु अज्ञान किसी गुणका कार्य नहीं है। (परंतु) वैसी योग्यता है।

मुमुक्षु :- इसका अर्थ ये हुआ कि योग्यता है वह पर्यायवाचक शब्द हुआ ?

पूज्य भाईश्री :- योग्यता ही पर्यायवाचक शब्द है। परंतु योग्यतामें क्या है कि, द्रव्यकी योग्यता और गुणकी योग्यता ऐसे दो प्रकार हैं। जब कि स्वभाव(रूप) परिणमनको योग्यता नहीं कही जाती, परंतु उसे शुद्ध परिणमन कहा जाता है। मुख्यरूपसे उसे शुद्धताकी योग्यता ऐसा नहीं कहा जाता। सामान्यतया विभाव (परिणमनमें) ही योग्यता शब्दका प्रयोग होता है। फिर विशेषरूपसे कोई-कोई बात आ जाये, वह दूसरी बात है।

मुमुक्षु :- ऐसी बात भी आती है कि, लोहमेंसे लोहमय परिणाम उत्पन्न होते हैं - इसमें क्या कहना है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, यानी द्रव्यकी प्रधानतासे ऐसा कह सकते हैं। (जैसे कि) चेतनकी सभी पर्यायें चेतनामय होती हैं और अचेतनकी सभी पर्यायें जड़तामय होती हैं।

मुमुक्षु :- वह तो दो पदार्थकी बात हुई परंतु एक ही पदार्थमें कैसे होता है ?

पूज्य भाईश्री :- एक ही पदार्थमें ज्ञानी ज्ञानमयरूप परिणमन करते हैं और अज्ञानी अज्ञानमयरूप परिणमन करता है, ऐसा कहा जाता है। यह द्रव्यकी प्रधानतासे पर्यायकी बात की परंतु जो ज्ञानमय परिणमन करता है वह शुद्धरूप परिणमन करता है - वह तो उसका स्वभाव है। जब कि अशुद्धरूप परिणमन करे (तब) ऐसा स्वभाव नहीं अपितु योग्यता है, ऐसा कहा जाता है।

अपनी तो क्या बात चलती थी कि, एक समयकी पर्याय स्वतंत्र है। अपना विषय तो यह चलता है कि एक समयकी पर्याय स्वतंत्र है। उसमें निमित्त कारण नहीं, अर्थात् परद्रव्य कारण नहीं, स्वद्रव्य कारण नहीं और पूर्वपर्याय भी कारण नहीं। ऐसे लेना है। वह पर्याय स्वयं ही कारण-कार्य है।

अपने गुरुवारके स्वाध्यायमें रात्रिको यह विषय आया था। समयसार `कलशटीका' में से नौवाँ कलश पढ़ा था। जिसमें राजमल्लजीने अनुभवका अर्थ किया है - वेद्य-वेदकभाव से अपना आस्वादन करता है। वेद्य-वेदकभावसे आस्वाद लेना उसे अनुभव कहते हैं। फिर चाहे उसे स्वसंवेदन कहो, अनुभव कहो, आस्वाद कहो या वेद्य-वेदकभाव कहो, सभी शब्द एकार्थमें ही (इस्तेमाल) होते हैं। ये वेद्य-वेदक शब्द जो है न ? उसमें दो कारक हैं। वेदक एक कारक है और वेद्य दूसरा कारक है। और एक ही पर्याय है। वेद्य-वेदक दो पर्याय नहीं हैं। वेदकपर्याय भी ज्ञानकी और वेद्यपर्यायभी ज्ञानकी। वही की वही, दूसरी नहीं - इसके बादकी भी नहीं और पूर्वकी (भी) नहीं। एक समयकी पर्यायमें वेद्य-वेदकपना है - उसे स्वसंवेदन कहा जाता है। जब कि एक अनुभवकी पर्यायमें दो कारक हैं तो अन्य चार (कारक भी) हैं, यह साबित करनेकी जरूरत नहीं। (अरे !) एक हो तो भी अन्य पाँचको साबित करनेकी जरूरत नहीं है क्योंकि किस तरह है यह तो उघाड़का विषय है। जबकि यह तो वेद्य-वेदकपना शब्द ही अनुभवके लिए इस्तेमाल किया जाता है। राग या परका वेद्य-वेदकपना नहीं हो सकता। (अतः) वेद्य-वेदकभावका अभाव होनेसे किसी भी परविषयमें, किसी भी जीवको तृप्ति नहीं होती। क्योंकि (दो पदार्थके बीच) वेद्य-वेदकभावका अभाव है। वेदन करनेवाला जीव है और वेदनके योग्य परपदार्थ या परविषय

है। दोनोंका एक साथ मेल नहीं खाता। इच्छा हो तब (वेदनमें आने योग्य पदार्थ - वेद्य) नहीं होता और जब वेद्य हो तब वेदक नहीं होता। इच्छा और वेदन समकालमें नहीं होते। समयसारजीके निर्जरा अधिकारकी गाथा - २१६(में लिया है कि,) वहाँ वेद्य-वेदकता संभवित नहीं है क्योंकि वह विभावपर्याय है और परविषय है इसलिए। जबकि ज्ञानकी पर्याय तो स्वयं ही वेदनमें आने योग्य है और स्वयं ही वेदन करनेवाली है। इसमेंसे एक शब्दमेंसे छः कारकों उत्पन्न हो जाते हैं।

मुमुक्षु :- समयसारका कर्ता-कर्म अधिकार स्वयं ही षट्कारकको प्रसिद्ध करता है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, स्पष्टरूपसे प्रसिद्ध करता है। यह तो पत्रमें लिया है न ! कि एक समयकी पर्याय स्वयं ही कर्ता-कर्मरूप है, यह कर्ता-कर्मकी चरमसीमा है। कर्ता-कर्मकी आखरी हद कौनसी ? कि, पर्याय स्वयं ही कर्ता और स्वयं ही कर्म। यह कर्ता-कर्मकी चरमसीमा है। उस दिन कहाँ यह प्रश्न उठा है, जिस दिन उन्होंने पत्र लिखा था उस दिन कहाँ यह प्रश्न उठा था! कौन सी सालमें लिखा है ? देखे ज़रा ! शुरूआतमें ही लिखा है। २४ वाँ पत्र है।

`**पर्याय ही पर्यायका कर्ता है, त्रिकाली अंश अथवा आखा द्रव्य नहीं, यह `कर्ता-कर्म' की चरम सीमा है। अतः पर्यायमें आखा एकाकार होना योग्य नहीं।**' अतः उन्होंने न्याय क्या पकड़ा है कि, एक समयकी पर्यायमें यह जीव पर्यायदृष्टि होकर, मिथ्यादृष्टि रहकर स्वयंको दुःखमें डाल देता है या अनंत परिभ्रमणके दुःखमें खुदको ही डाल देता है, वहाँसे भिन्न होना हो तो उसे पर्यायको त्रिकालीसे अलग करनी होगी। त्रिकाली अंशमेंसे पर्याय अंशको भिन्न करना होगा। तो कहते हैं, त्रिकालीसे तो मैं (पर्याय अंशको) अलग करता

ही हूँ परंतु प्रमाणसे भी अलग करता हूँ, ऐसा कहते हैं। `**पर्याय ही पर्यायका कर्ता है, त्रिकाली अंश अथवा आखा द्रव्य नहीं, यह `कर्ता-कर्म' की चरम सीमा है...**' पूरा द्रव्य (अर्थात् प्रमाणका विषयभूत द्रव्य) नहीं, ऐसा कहते हैं। एक समयकी पर्यायके छः कारक स्वतंत्र हैं। प्रमाणमें तो गुणके छः कारक आयेंगे। त्रिकालीको तो वैसे भी कुछ लेना-देना नहीं है, जाओ ! क्योंकि उसमें तो पर्यायत्व है ही नहीं। यह कर्ता-कर्मकी जो चरमसीमाकी (बात लिखी है) वह १९६१के सालमें लिखे हुए पत्रमें है ! उस वक्त सोनगढ़में समयसारका कर्ता-कर्म अधिकार चलता था इसका स्वयंने सार निकाला है कि, भरतखण्डका अलौकिक कर्ता-कर्म अधिकार चलता है - ऐसा लिखते हुए शुरूआतमें बात लिखी है। पहली पंक्तिमें (लिखा) है।

`**भरतखण्डका अलौकिक `कर्ता-कर्म अधिकार,' आत्मरससे ओतप्रोत वक्ता,...**' यानी कि गुरुदेव `**साधक मुमुक्षुगण श्रोता,...**' यानी जो साधक ज्ञानी श्रोतागणमें हैं और अन्य मुमुक्षु भी हैं - वे श्रोता। `**जिनालयकी सामूहिक भक्ति,...**' ये सारी सोनगढ़की प्रशंसा उन्होंने की है। `**जिनालयकी सामूहिक भक्ति,...**' उस वक्त बहिन - बहिनश्री भक्ति कराते थे न ! `**निरंतर अमृतवाणीसे संस्कारित - तृप्त भूमिस्थान...**' निरंतर अमृतवाणीसे संस्कारित हुई एवं तृप्त-तृप्त हुई है ऐसी (भूमि ! हमलोग) नहीं कहते हैं ? सराबोर हो गई। गुरुदेवने सोनगढ़की भूमिको अध्यात्मके रससे सराबोर कर दी है, ऐसा कहते हैं। यह भक्ति की है। सोनगढ़ क्षेत्रकी भक्तिकी है। `**समवसरण-से दृश्य पुण्यहीनको नहीं संभवते,...**' (अर्थात्) मेरे जैसे पुण्यहीनको ऐसे संयोग नहीं हैं। `**अतः वियोग है।**' (इसलिए) मुझे वियोग है। यह देखो ! कितनी भक्ति की है ! खुदको वियोग है (इसमें) भक्ति

की है ! गुरुदेवकी (और) गुरुदेव जहाँ निवास करते हैं उस भूमिकी भक्ति की है ! यह कर्ता-कर्म अधिकारमेंसे बात निकाली है कि पर्याय ही पर्यायका कर्ता है और वही उसका कर्म है, जाओ ! (यह) तो ज्ञानदशा है कोई !! भीतरमें सिद्धांतका परिणमन इस तरह होता है, सिखाना नहीं पड़ता। दूसरेको (बार-बार) सिखा-सिखाकर सिखाया जाये तो भी अंदर नहीं उतरता है। और इधर सिखाना नहीं पड़ता ! सीधा अंदरमें उतरता है ! यह योग्यताका फ़र्क है।

मुमुक्षु :- क्लासमें क्षणिक उपादान और त्रिकाली उपादानकी बातें कितने सालोंसे चलती थी !

पूज्य भाईश्री :- हाँ, चलती ही थी। क्षणिक उपादान और त्रिकाली उपादानकी ही चर्चा चलती थी। उपादानका अर्थ क्या है ? कि, शक्ति। `उपादान निज शक्ति।' ये भैया भगवतीदासजीके उपादान-निमित्तके दोहे हैं न ! इनमें उपादानकी व्याख्या क्या की है ? कि, `उपादान निज शक्ति।' उपादान अर्थात् निज शक्ति। क्षणिक उपादानमें उसका निज कार्य करनेकी ही शक्ति है। निमित्त तो संयोगरूप है।

यहाँ कहते हैं कि, `**...पूर्वपर्याय भी कारण नहीं; उसमें तीन कालके पदार्थ जाननेकी ताकत है...**' क्षणिक उपादानकी - एक समयकी ज्ञानकी पर्यायमें तीनकाल, तीनलोकको जाननेकी शक्ति है। ऐसा जब सुना तब चोट लगी कि, शास्त्रमेंसे अधिक जाननेकी व्यर्थ आकुलता क्यों करना ? शास्त्र पढ़कर बहुत जानूँ... बहुत जानूँ... बहुत जानूँ... एक जगह तो ऐसा कहा है कि, बहुत जानकर क्या तुझे किसीको सुनाना है ? किसीको दिखाना है क्या कि, मैं जानता हूँ ! क्यों जानना है तुझे ? कहो तो सही ! क्या प्रयोजन है तुझे ?

मुमुक्षु :- एक जगह ऐसा कहा है कि हमें क्षयोपशम नहीं बढ़ाना है !

पूज्य भाईश्री :- (वह बात तो इस प्रकार चली थी कि, किसी मुमुक्षुको ऐसा लगा कि, ऊँची बातें करते हैं ! बात तो कोई ज़ोरदार करते हैं ! फिर Test किया कि, अभी कोई पुस्तक पढ़ते हैं कि नहीं ? (कोई ऐसी पुस्तकका) वांचन चलता हो, जिसके असरमें आकर बात करते हैं या स्वतंत्ररूपसे करते हैं ? आदमीको क्या है कि जिस पुस्तकका वांचन करता हो उसका तत्कालीन असर रहता हो (इसलिए) उसकी भाषामें जो पढ़ता हो, उसीके विचार चलते हो और वही बोलनेमें भी आ जाये ! अभी ये कोई ऐसी निश्चयप्रधान पुस्तक पढ़ते हैं क्या ? क्योंकि निश्चयकी बातें बहुत बोलते हैं। इसलिए (पूछा) `आजकल आप कौनसी पुस्तक पढ़ते हैं ? कौनसा शास्त्र पढ़ते हैं ?' (उन्होंने) कहा, `शास्त्र पढ़नेकी आदत ही छूट गई है, एक भी नहीं पढ़ता...' वैसे भी ज्ञानीको कोई शास्त्र पढ़नेका बंधन नहीं है, (कोई) अटक नहीं है। इसलिए कहा `आज-कल कोई शास्त्र पढ़नेकी आदत नहीं रही।' इतना ही कहा होता जब तक तो ठीक है, परंतु इरादापूर्वक थोड़ी ज्यादा बात कर दी, (स्वयं) बहुत विचक्षण थे। वैसे भी ज्ञानीमें विचक्षणता होती ही है। (उन्होंने आगे कहा) `और मुझे क्षयोपशम भी नहीं बढ़ाना है।' इस बात पर (वे मुमुक्षु) चौंक गये ! फिर हम (दोनोंकी) आपसमें चर्चा हुई। इस चर्चाके वक्त भी मैं हाज़िर था और बादमें भी हमारी चर्चा हुई थी। (मैंने कहा,) `देखा ! यह क्षयोपशम बढ़ाना नहीं है यह बात बहुत अच्छी आयी!' क्योंकि क्षयोपशम बढ़ाना जीवके लिए प्रयोजनभूत नहीं है, उस पर उन्होंने सीधा प्रहार किया। यह चोट मार दे ऐसी बात है। जबकि प्रायः मुमुक्षुजीवोंमें यह परिस्थिति होती है कि वह विशेष वांचन करके अधिक जानकारी करना चाहता

है। अतः इसमें क्षयोपशम बढ़ानेकी वृत्ति और भावना पड़ी है। जो कि अप्रयोजनभूत विषय संबंधित वृत्ति है, वह उसे नुकसान करेगी। वह अप्रयोजनभूत संबंधित वृत्ति उसे नुकसान करेगी। इसलिए उस दिन ऐसा जवाब उन्होंने दे दिया।

क्योंकि उन्हें तो ख्याल था कि, यहाँ लोगोंको जाननेकी वृत्ति बहुत होती है और मुझे क्षयोपशम बढ़ाना नहीं है इसलिए मैं नहीं पढ़ता हूँ। क्योंकि केवलज्ञान होनेवाला ही है। बात नक्की है। केवलज्ञान होगा यह बात नक्की है और एक समयमें सब जानना हो जाएगा। अभीसे क्यों जल्दबाज़ी करूँ, आकुलता करूँ, कि यह जान लूँ और वह जान लूँ ! - ऐसा है।

मुमुक्षु :- ज्ञानी अपने प्रयोजनमें कितने लगे हुए रहते हैं !

पूज्य भाईश्री :- प्रयोजनकी बहुत तीक्ष्ण व बहुत सूक्ष्म दृष्टि होती है ! शास्त्र पढ़नेमें भी क्षयोपशम बढ़ानेका प्रयोजन नहीं है। शास्त्र पढ़नेमें प्रयोजनभूत विषय कितना ? और अप्रयोजनभूत विषय कितना ? यह तो खतौनी कर ही सकते हैं। परंतु प्रयोजनभूत विषयमें भी क्षयोपशम बढ़ाकर प्रयोजनभूत विषय लेना यह बात भी नहीं है ! उसमें भी क्षयोपशम बढ़ानेकी वृत्ति नहीं है। अप्रयोजनभूत तो नहीं जानना है (परंतु प्रयोजनभूतमें भी यह बात है।) इसका कारण यह है कि इनके हाथमें एक चीज़ आ गई जो कि परम प्रयोजनभूत है। जो चीज़ हाथ लगी है वह कैसी है ? कि, परम प्रयोजनभूत है। दूसरा सब अपरम है। केवलज्ञानादि अपरम है ! (ऐसी चीज़ हाथ लगनेके) पश्चात् तो इसकी उपेक्षा हो जाती है। केवलज्ञानसे लेकर सभी पर्यायोंकी उपेक्षा होनेका यही कारण है, कि इतनी महान वस्तु हाथ लगी है कि, जिसके आगे केवलज्ञानका भी कोई हिसाब नहीं है ! इसलिए किसीकी परवाह नहीं रहती। केवलज्ञानकी

परवाह नहीं, मोक्षकी परवाह नहीं और किसीकी परवाह नहीं।

मुमुक्षु :- श्रीमद्जीने यही लिखा है न, कि हमें महावीरका केवलज्ञान भी नहीं चाहिए !

पूज्य भाईश्री :- (हाँ), (महावीरका केवलज्ञान) भी नहीं चाहिए उसे और क्या देंगे ? वे तो लिखते हैं, मुमुक्षुको मोक्षकी इच्छा नहीं होती ! ऐसा तो कई जगह आता है। २४वें वर्षमें (आत्मज्ञान) हुआ, (तत्पश्चात्) जो पहला पत्र लिखा - (१६५ वाँ) उसमें ही यह बात ली है।

`**सर्व समर्थ पुरुष आपको प्राप्त हुए ज्ञानके ही गीत गा गये हैं। इस ज्ञानकी दिन प्रतिदिन इस आत्माको भी विशेषता होती जाती है।**' (अर्थात्) (आत्म)ज्ञान तो हुआ है लेकिन अब साधकदशा भी बढ़ती जाती है। `**मैं मानता हूँ कि केवलज्ञान तकका परिश्रम व्यर्थ तो नहीं जाएगा।**' (यानी कि) अब केवलज्ञान तो प्राप्त हो ही जाएगा। इसके लिए जो पुरुषार्थ होगा वह व्यर्थ माने निष्फल नहीं जाएगा। वह सफल हो ही जाएगा। `**हमें मोक्षकी कोई जरूरत नहीं है।**' देखो ! आया कि नहीं आया ? मोक्षकी हमें जरूरत नहीं है। क्योंकि इतनी बड़ी चीज़ हाथ लग चुकी है इसलिए अब मोक्षकी जरूरत नहीं है, जाओ ! पहले पत्रमें ही यह बात आयी है। यह २४वें वर्षका पहला ही पत्र है।

(यहाँ कहते हैं) ऐसी चोट लगी कि, `**तबसे मेरा पढ़ना कम हो गया।**' (अर्थात्) पढ़नेका जो विकल्प आता था वह भी कम हो गया। क्योंकि भीतरमें समाधान आ गया कि, `**...चलो न!**' माने समाधान आ गया। `**पर्यायका स्वभाव ही जाननेका है... तो सहज जाननेमें आ जाएगा,...**' सारी बातें सहज ही जाननेमें आ जाएगी। फिर जाननेके लिए मुझे व्यर्थ आकुलता क्यों करनी चाहिए ? मैं क्यों आकुलता

करूँ ? `**यहाँ** (**अंतरमें**) **सुख पीवो न** !...' यानी जाननेकी आकुलता नहीं करनी है तो अभी क्या करना ? कि, अभी तो अंदरमें जो सुख भरा है और सुखका ही प्रयोजन है तो अपने तो सुख पीते रहो न ! जाननेकी आकुलता क्यों करनी चाहिए ? सुख पीते रहो बस ! `**न्याय आदि नक्की करनेमें** (**विकल्प वृद्धि होनेसे**)...' न्याय आदि नक्की करनेमें तो विकल्पकी वृद्धि होनेसे आकुलता होती है। श्रुतज्ञानमें ऐसे विकल्प होनेपर आकुलता होती है, सीधी बात है। `**अपनेको तो सुख चाहिए।**' अपनेको आकुलता नहीं करनी है। अपने तो यूँ आराम से अंदर बैठे-बैठे सुख पीवो ! अंदर जमे रहो ! और उसमेंसे सुख पीते रहो ! और कोई हमें जरूरत नहीं है।

`मुझे ज्ञानकी जरूरत नहीं, मुझे तो सुखकी जरूरत है' ऐसी एक जगह बात आती है। यहाँ तक रखते हैं।

रुचि हो तो प्रवृत्ति में भी अपने कार्य में विघ्न नहीं आता। दूसरे से तो कुछ लेना नहीं है, और (**स्वयं**) **सुख का धाम है। उपयोगरहित चक्षु की माफ़िक** (बाहर से) **प्रवृत्ति में दिखाई तो दे, परंतु उपयोग** (सावधानी) **तो इधर** (अंतर में) **काम करता रहे। (द्रव्यदृष्टिप्रकाश -४९८)**

प्रश्न :- भक्ति-पूजामें आप कम जाते हो; चौबीसों कलाक (घंटों) **निर्विकल्पता थोड़े-ही रहती है ?**

उत्तर :- अरे ! **चौबीसों कलाक निर्विकल्पता नहीं रहती है परन्तु उस तरफ़ ढलनेका प्रयास तो हो सकता है न ? क्या इसमें शुभभाव नहीं है ? - इसमें तो ज्यादा शुभभाव है, उसकी तो गिनती ही नहीं; और शरीरादिककी क्रिया हो उसको गिनते हो** !

प्रवचन - ९ दि. २८-०६-१९९२ - वचनामृत-३५४

इस बोलमें प्रश्न उठाया है। उनकी अंगत प्रवृत्ति पर प्रश्नकर्ताने प्रश्न उठाया है।

`**प्रश्न :- भक्ति-पूजामें आप कम जाते हो; चौबीसों कलाक** (**घंटों**) **निर्विकल्पता थोड़े ही रहती है ?**' (यानी कि) आप चौबीसों घंटे कोई निर्विकल्प दशामें थोड़े ही रहते हो ? भक्ति-पूजामें क्यों कम आते हो ? उनका क्या था कि, पूजामें नहीं जाते थे। उनकी ऐसी पद्धति थी कि घरसे अर्घ लेकर निकलते थे। हाथमें अर्घ लेकर ही निकलते थे किन्तु पूजामें नहीं बैठते थे। सुबह समूह पूजामें नहीं बैठते थे। भक्तिमें कभी बैठते कभी नहीं बैठते थे, परंतु कम बैठते थे। ज्यादातर नहीं बैठते थे परंतु शायद ही कभी बैठते थे।

दस दिन करीब रुके हो तो एक या दो-तीन बार बैठते, सात-आठ दिन (नहीं बैठते थे)। इसलिए किसीने प्रश्न किया कि `आप भक्ति-पूजामें कम जाते हो, क्या चौबीसों घंटे निर्विकल्पदशा रहती है क्या ?' अपने यहाँ पूछनेवाले तो सब पूछ लेते थे !

उत्तर :- अरे ! चौबीसों कलाक निर्विकल्पता नहीं रहती है...' और अगर कह दे कि (निर्विकल्पता) रहती है तो वह तो झूठ ही है क्योंकि वह तो मुनिदशामें भी अंतमुहूर्तका ही विषय है, मुनिदशामें आये और अंतमुहूर्त भी यदि निर्विकल्पतामें रहे (जब तो केवलज्ञान हो जाये)। इसके पहले तो किसीको रह भी नहीं सकती; लेकिन मुनिको रह सकती है और अगर रहे तो केवलज्ञान हो जाये। चौबीस घंटेका तो वैसे भी प्रश्न नहीं उठता। मुनिको तो एक ही घंटेका मामला है।

`**अरे ! चौबीसों कलाक निर्विकल्पता नहीं रहती है परंतु उस तरफ ढ़लनेका प्रयास तो हो सकता है न ?**' चौबीस कलाक ! (ऐसा कहा)। पुरुषार्थ तो चौबीसों घंटे कर सकते हैं। निरंतर कर सकते हैं। उपयोग भले ही चौबीस घंटा न रहे लेकिन पुरुषार्थ तो चौबीस घंटे हो सकता है कि नहीं ?

मुमुक्षु :- और वास्तवमें यही कर्तव्य है।

पूज्य भाईश्री :- यही कर्तव्य है। उत्तर ऐसे दिया है।

`**अरे ! चौबीसों कलाक निर्विकल्पता नहीं रहती है परंतु उस तरफ ढ़लनेका प्रयास तो हो सकता है न ? क्या इसमें शुभभाव नहीं है ?**' चौबीस घंटे प्रयास चलता हो तब निर्विकल्पदशा नहीं है, तो सविकल्पदशा है। तो सविकल्पदशामें उस वक्त अशुभ भाव थोड़ा ही है ? वह तो शुभ भाव है। सम्यग्दृष्टिको अशुभ तो बहुत कम हो जाता है, क्योंकि उनका पुरुषार्थ चौबीसों घंटे चलता है।

अतः उनका शुभ बढ़ जाता है। विकल्पके कालमें शुभ बढ़ जाता है। उन्हें तत्त्वचिंतन ही मुख्य होता है और उसमें भी मुख्यरूपसे आत्मतत्त्वका चिंतन होता है, इसलिए उनका शुभ काफ़ी बढ़ जाता है। और वह (भी) उच्च कोटिका शुभ होता है। इतना उच्च कोटिका शुभ तो मिथ्यादृष्टिको होता भी नहीं। इसकी क्वालिटी ही अलग है। मिथ्यादृष्टिको उस क्वालिटीका शुभभाव नहीं होता। इतना ही नहीं उच्चतम क्वालिटीका शुभभाव हो फिर भी उसका आदर नहीं, उस पर दृष्टि नहीं, यह इनकी विशिष्टता है, विलक्षणता है।

मुमुक्षु :- यह उच्च क्वालिटीका पुण्य-बंध किया है तभी तो दिगम्बर धर्ममें आये, सत्पुरुष मिले !

पूज्य भाईश्री :- उससे भी उच्चतम क्वालिटीका। उससे भी उच्चतम क्वालिटीका, बोलिये क्या कहना है ! इसमें तो बहुतसे भेद हैं न ! यह क्या कहते हैं कि, उच्च क्वालिटीका पुण्य था तभी तो दिगम्बरके वहाँ जन्म हुआ और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र मिले, ठीक ! (है कि) दूसरेकी अपेक्षा उच्च क्वालिटीका कह सकते हैं कि जैसे हमलोग अन्यमतमें आये, जबकि आप सत्य मतमें आये। इसलिए हमारी अपेक्षासे आपने कोई शुभभाव अच्छा किया (होगा !) इसमें तो कोई सवाल नहीं। यह हमें स्वीकार कर लेना है ! परंतु यह सम्यग्दृष्टिका जो शुभभाव है, वह इससे भी उच्च क्वालिटीका है। वह इससे भी उच्च क्वालिटीका है। दूसरा (शुभभाव) तो मिथ्यादृष्टि भी कर सकता है, इसमें कोई सवाल नहीं है।

मुमुक्षु :- शुभका वहाँ निषेध वर्तता है इसलिए उच्चकोटिका है ?

पूज्य भाईश्री :- वह भी कारण है और दूसरा भी कारण है। दोनों प्रकारसे हैं।

मुमुक्षु :- वह किस प्रकारका शुभभाव होता है ?

पूज्य भाईश्री :- वह प्रकार ही पूरा अलग है। शुभभावका प्रकार ही अलग है। जिनके ज्ञानमें आत्माकी रमणता है, जिनकी दृष्टिमें आत्माकी रमणता है और जिनका निर्विकल्प होनेका पुरुषार्थ चल रहा है, फिर भी (निर्विकल्प) न हो तब जो राग रह जाता है, रागांश रह जाता है। वह पूरा प्रकार ही अलग है। पूरी बात ही दूसरी है। इसकी पूरी क्वालिटी ही अलग है। यह वस्तु अलग हो जाती है। किसी मिथ्यादृष्टिको ऐसी क्वालिटी नहीं होती।

मुमुक्षु :- इतनी उच्च क्वालिटीका शुभभाव होने पर भी वह शुद्धभाव नहीं है ?

पूज्य भाईश्री :- फिर भी वह शुद्धभाव नहीं है, उसकी दृष्टि नहीं है, उसकी अभिलाषा नहीं है, उस रागका राग नहीं है, उसका महत्व नहीं है, उस पर वजन नहीं है, उसका अभिप्राय भी नहीं है। ऐसी बात है। यह एक इसका दूसरा पहलू है। (अस्तिरूप) पहलूको दिखाया नहीं जा सकता इसलिए इस पहलूसे दिखाना पड़ता है। ऐसी (बात) है।

मुमुक्षु :- गर्भित शुद्धता कह सकते हैं ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, है। उसमें गर्भित शुद्धता - विशुद्धि ली जाती है। उसे विशुद्धि कहते हैं। और उस विशुद्धिके कोई-कोई प्रकार ऐसे हैं कि जिसमें तीर्थंकर नाम प्रकृतिका बंध होता है। दृष्टांतरूपसे अनेक सम्यग्दृष्टि हो; एक दृष्टांत ले कि, जैसे अनेक सम्यग्दृष्टि हैं, उनमें कोई एक जीव ही तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करता है, जब कि दूसरे नहीं बाँधते हैं - इसका क्या कारण ? कि उसके शुभभावकी क्वालिटी ऐसी होती है। शास्त्रमें इसे विशुद्धि कही है। करणानुयोगमें इसे विशुद्धि कही है। यह करणानुयोगका विषय है। करणानुयोगमें इस प्रकारको अलग छाँटा है। इसे विशुद्धि

कही है। वैसे इसके भी अनेक प्रकार हैं। ऐसी विशुद्धि होती है कि लब्धि प्रगट हो जाय। सभीको प्रगट नहीं होती। सभी मोक्षमार्गीको लब्धि प्रगट होती है ? सभी मुनियोंको भी (प्रगट नहीं) होती, सभी साधकोंको (प्रगट) नहीं होती। किसीको चतुर्थ गुणस्थानमें प्रगट होती है तो किसीको छट्ठे-सातवें (गुणस्थानमें) भी प्रगट नहीं होती है। लब्धि है, वह कोई साधनाका फल नहीं है। वह पुण्यका फल है। उस प्रकारकी क्वालिटी अलग है, जबकि मिथ्यादृष्टिको लब्धि प्रगट हो, उसकी क्वालिटी अलग है ! मिथ्यादृष्टिको लब्धि प्रगट हो और उसका प्रयोग करे तो अधोगतिमें जाये ! सम्यग्दृष्टिको लब्धि प्रगट हो, उस पर लक्ष्य तक नहीं दे, और निर्वाणमें चले जाये ! (इस प्रकार इसमें) काफी भंगभेद हैं। कितने ही प्रकारके भंग-भेद हैं। लब्धियोंमें भी असंख्य प्रकार ! लब्धियोंके असंख्य प्रकार ! एक आत्माके आगे उन सबका स्थान बहुत नीचा है। सब धूल (ही) है। एक शुद्धात्मको देखा जाये तो इसके आगे सब धूल है। आत्माकी ऐसी महिमा है। जिसके आगे रिद्धि-सिद्धि और लब्धि-फब्धि सब `धूल-धाणी और वा-पाणी है' (यानी कि एकदम तुच्छ है)। आत्माकी ऐसी महिमा है। यह गुरुदेवने महिमा करायी है।

(अतः पूछते हैं,) `**क्या इसमें शुभभाव नहीं है ? - इसमें तो ज्यादा शुभभाव है,...**' आप ये पूजा-भक्तिके शुभभावको शुभभाव गिनते हो लेकिन हमारा पुरुषार्थ चौबीसों घंटे चलता है, उसमें जो शुभभाव होता है इसकी क्वालिटी अलग है और आप ये जो पूजा-भक्तिमें बैठते हो उसकी जाति अलग है, ऐसा कहते हैं। उसमें तो अधिक उच्च कोटिका शुभभाव है। `**उसकी तो गिनती ही नहीं;...**' आपको उसकी तो गिनती नहीं है, और वह बात समझते नहीं हो ! क्यों आप पूजामें नहीं आये ? क्यों आप भक्तिमें नहीं बैठे ? इसप्रकार

पूछते थे।

`**उसकी तो गिनती ही नहीं; और शरीरादिककी क्रिया हो उसको गिनते हो** !' उसको गिनते हो। यह देखो ! पूजामें बैठे हैं, भाई ! अभी भक्तिमें बैठे हैं ! जबकि (ज्ञानी) आत्मामें रहनेका पुरुषार्थ करते हो, इसमें पुरुषार्थ जब अल्प मात्रामें रहे उस वक्त जो शुभभाव उत्पन्न हो जाता है इसके आगे पूजा-भक्ति तो स्थूल है। वह शुभभाव तो स्थूल है और निम्नकोटिका शुभभाव है। स्थूल है और निम्नकोटिका है, जब कि वह तो उच्चकोटिका है।

मुमुक्षु :- पूजा-भक्ति में तो निमित्त अधीन है जब कि उसमें उपादान अधीन है ?

पूज्य भाईश्री :- वह जीव उपादान अधीन नहीं है। परंतु उपादानका लक्ष्य इसमें विशेष है। इससे भी मुख्य बात यह है कि साथमें पुरुषार्थ (है)। लक्ष्य तो फिर भी मानो कि सम्यग्दृष्टि पूजा करते हो तब उनका लक्ष्य आत्माका ही होता है। और सम्यग्दृष्टि ध्यानके पुरुषार्थमें बैठे हो, घंटे, दो घंटे, चार घंटे बैठे तो निर्विकल्पता तो आये नहीं, आ जाये तो क्षणवर्ती आ जाये, कभी नहीं भी आती है। (परंतु) उस वक्त जो शुभभाव है और पूजा-भक्तिके वक्त जो शुभभाव होता है उसमें भी फर्क है। सम्यग्दृष्टिके स्वयंके (अपने दोनों प्रकारके परिणाममें भी) फर्क है। यह तो अभी मिथ्यादृष्टि अपने साथ तुलना करता है ! ऐसा है। स्वरूप चिंतवनका जो शुभभाव है वह तो पूजा-भक्तिसे उच्चकोटिका है। (क्योंकि) पूजा-भक्तिमें तो पराश्रय है, जब कि इसमें स्वआश्रय करते-करते बचा हुआ भाव है। स्वआश्रय करते हुए बचा हुआ भाव है। (पूजा-भक्तिमें) तो सीधा ही पराश्रय है। ऐसा है।

मुमुक्षु :- हरएक जगह वृत्ति देखी जाती है, प्रवृत्ति नहीं

देखी जाती।

पूज्य भाईश्री :- वृत्तिमें भी अभिप्राय देखा जाता है। वहाँ वृत्तिमें अभिप्राय कहनेका आशय है कि, अभिप्राय क्या है ? डॉकटर आपरेशन करे और मरीज मर जाये, तो उसका अभिप्राय देखा जाता है। वे तो बचाने गये थे। बचानेका प्रयास करते-करते वह (मरीज) मर गया है, किसीके मारनेसे नहीं मरा परंतु बचाते हुए मर गया है। उलटा-सुलटा फर्क है।

मुमुक्षु :- डॉकटर भी छुरी मारता है और गुंडा भी छुरी मारता है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, दोनोंके हाथमें खूनसे रंगी हुई छुरी हो और पासमें शव पड़ा हो। यानी कि दार्शनिक सबूतके हिसाबसे सब एक-सा दिखेगा फिर भी एक पर खूनका आरोप आयेगा, जबकि दूसरे पर बचानेका आरोप आयेगा, खूनका आरोप नहीं आयेगा - ऐसी बात है।

प्रश्न :- ऐसे प्रश्न धर्मात्माके प्रति अश्रद्धाको सूचित करते हैं ?

पूज्य भाईश्री :- पहचान तो है ही नहीं। श्रद्धा तो मान लो ओघसंज्ञासे हो सकती है, किन्तु पहचान नहीं है, यह बात तो नक्की है। यह तो प्रश्नकारका पता है लेकिन पहचान नहीं है यह बात नक्की है। पहचान होगी तो ऐसा प्रश्न नहीं होगा, यह बात तो जरूर है। खास करके जिसकी बाह्यदृष्टि तीव्र हो, परलक्ष्य तीव्र हो, और जिसे बाह्यक्रियाकी महिमा और गिनती बहुत हो, उसीको ऐसे प्रश्न उत्पन्न होंगे कि आप क्यों पूजा-भक्तिमें नहीं बैठते हो ? घर पर रहकर ध्यानमें बैठ जाते हो तो निर्विकल्प थोड़े ही हो जाते हो ? क्या भगवानके सामने आपको नहीं बैठना चाहिए ? उसकी दृष्टि कहाँ है ? बाह्यक्रिया पर है। भगवानके सामने मंदिरमें बैठो तो कुछ ठीक कहा जाये ! आपको ऐसा रखना चाहिए।

यानी कि वह खुद ज्ञानीको भी कुछ उपदेश देना चाहता है। उसके अपने अभिप्राय अनुसार (उपदेश देना चाहता है)। उसे अखरता है। वे पूजा-भक्तिमें नहीं बैठते हैं यह उसे अखरता है। जो इसकी बहिर्दृष्टिकी तीव्रताकी प्रसिद्धि है। जब कि वह तो उदयभाव है। पूजा-भक्तिका तो उदयभाव है। सबके उदयभाव एक-से होते हैं क्या ?

मुमुक्षु :- गुरुदेव भक्तिमें बैठते हैं लेकिन आप क्यों भक्तिमें नहीं बैठते हो ? इस तरह पूछेंगे।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, ऐसे भी प्रश्न करते हैं। लेकिन इसमें तो दूसरी तकलीफ होगी। बहिनश्री हररोज पूजा करते थे, जब कि गुरुदेव हररोज बिलकुल नहीं करते थे, सिर्फ पर्वके दिनोंमें ही करते थे, अब क्या करेंगे ? तकलीफ होगी या नहीं ? यदि ऐसी गिनती आप करने लगे तो तकलीफ होगी कि नहीं ? अतः उस प्रकारसे विचार करनेका दृष्टिकोण यथार्थ नहीं है। उस तरीकेसे विचार करनेका दृष्टिकोण है वह यथार्थ नहीं है। हाँ, (अगर) जिनमंदिर पासमें हो फिर भी मंदिर ही न आते हो तो शंका उठ सकती है कि क्या इन्हें भगवानके दर्शनका विकल्प भी नहीं आता होगा ? ऐसी शंका उठेगी (परंतु) ऐसा नहीं बनता। (दूसरी बाह्यक्रियामें) हीनाधिकता हो सकती है। (जैसे कि) गुरुदेव पूजा नहीं करते हो, लेकिन दर्शन करने भी न आये, ऐसा एक दिन भी नहीं होगा, सोगानीजी पूजामें नहीं बैठते हो, लेकिन दर्शन करने न आये हो ऐसा एक दिन भी नहीं होगा। यहाँ थोड़ी सूक्ष्म भेदरेखा उत्पन्न हो जाती है। (दर्शन करनेका) विकल्प होता ही है, जरूर होता है और अवश्य जायेंगे। फिर स्वास्थ्य ठीक न हो तब दूसरी बात है, परंतु विकल्प आ जायेगा ! मान लीजिए स्वास्थ्य ऐसा हो कि

मंदिर तक न जा सकें, तो नहीं भी जायें, लेकिन विकल्प आयेगा। इसकी एक Limit है। और ये सारी गिनती करना मुमुक्षुके बसकी बात नहीं है। मुमुक्षु अपना सँभाले तो भी बहुत है। ज्ञानियोंको सँभालने जाता है इससे तो अपनी सँभाले तो भी बहुत है। परंतु स्वच्छंद आदि प्रकारकी विशेषतामें ज्ञानियोंकी चर्या, ज्ञानियोंके वचन, इस पर जब मुमुक्षुकी टीका-टिप्पणी (आती) है, वह बेहद स्वच्छंदका प्रकार है। स्वच्छंद जब बढ़कर फट जाता है तब ऐसा बनता है।

मुमुक्षु :- एक तरफ स्वाध्याय चलता हो तब पूजा भी करनी हो, तो दोनों प्रवृत्तिमें भेद है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, पूजा-भक्तिके परिणामसे स्वाध्यायके परिणाममें शुभभाव भी विशेष है और श्रद्धा-ज्ञानको ठीक करनेका भी प्रसंग है। शुभभावके अलावा, शुभभाव चारित्रगुणकी पर्याय लें, तो इसके अलावा श्रद्धा-ज्ञानको ठीक करनेका भी विशेष प्रसंग है। इसे छोड़कर वापिस पूजा-भक्तिमें बैठ जायें ! अभी भी अपने यहाँ ऐसी गड़बड़ चलती है। इसके तो शुभभावका भी अभी ठिकाना नहीं है या श्रद्धा-ज्ञानके विचारका भी ठिकाना नहीं है, उसकी वैचारिक भूमिकाका भी कोई ठिकाना नहीं है। विचार करना हो तो अपनी (हितदृष्टि)से विचार करना चाहिए, समझना चाहिए। Priority किसको देना ? यह सब विचार करना चाहिए।

मुमुक्षु :- अभी तो खुदका ठिकाना न हो और ज्ञानियोंके नाप करने जाये !

पूज्य भाईश्री :- हाँ, अपना तो ठिकाना न हो ज्ञानियोंकी टीका-टिप्पणीमें चला जाये ! ऐसा तो तभी होता है जब बहुत स्वच्छंद बढ़ गया हो !

मुमुक्षु :- ज्ञानी हों वहाँ नहीं जाकर दूसरेकी पर्यायकी जाँच

करने जाये, तभी महादोष उत्पन्न हो जाता है।

पूज्य भाईश्री :- उसमें क्या है ? कि वह दोषदृष्टिकी प्रवृत्ति है, गुणदृष्टिकी प्रवृत्ति नहीं। सम्यग्दृष्टि गुणदृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि दोषदृष्टि है। अतः दोषदृष्टि तीव्र होने पर दूसरोंके दोष देखनेका, छिद्र देखनेका ही सूझता रहता है। ये ऐसा नहीं करते हैं परंतु ऐसा करते हैं। ये ऐसा नहीं करते, ये ऐसा करते हैं, ये ऐसा नहीं करते हैं वह गलत है। ये सब खुदको अधिक नुकसानकर्ता है। अपने आत्माको वह अधिक नुकसान करता है।

मुमुक्षु :- दर्शन करनेके भाव हो उसे उत्कृष्ट ऐसे स्वाध्याय व पूजाके भाव क्यों नहीं होंगे ?

पूज्य भाईश्री :- होने चाहिए लेकिन अभी इनका प्रश्न दूसरा है। जैसे यहाँ स्वाध्याय चलता है, अपना स्वाध्याय परदा रखकर जिनमंदिरमें चलता है, और भगवान भी बिराजमान हैं, अब बात यह है कि स्वाध्याय चलता हो तब पूजा करनी कि नहीं करनी ? ऐसा कहते हैं। पहले स्वाध्याय करना चाहिए या पहले पूजा करना ? इसका विवेक करना चाहिए। इतना भी यदि विवेक न हो तो विचारका भी कोई ठिकाना नहीं है। विचारनेका या विचारदशाका भी ठिकाना नहीं है। यह परिस्थिति है। उसमें तो सामान्य विचारशक्ति भी नहीं है। शुभभाव (और) शुभभावकी या श्रद्धा-ज्ञान संबंधित सामान्य विचारशक्ति भी नहीं है। विशेष विचारशक्तिकी बात तो दूर रही, सामान्य (विचारशक्ति) भी नहीं है। ऐसा है।

भक्तिका रागांश कभी तीव्र आ जाता है, वह भी सहज ही आ जाता है। अपनी तो सहज प्रकृत्ति है, बलजोरी (हठ) अपनेसे नहीं होती। (अंगत)

प्रवचन - १० दि. २९-०६-१९९२ - वचनामृत-३५६

`**भक्तिका रागांश कभी तीव्र आ जाता है, वह भी सहज ही आ जाता है।**' अपनी अंगत बात करते हैं। खुदको भक्तिका राग कभी तीव्र आ जाता है। - भक्तिका राग भी कभी तीव्र आ जाता है। `**वह भी सहज ही आ जाता है।**' सहज - सहज ही कभी तीव्र भक्तिका राग आ जाता है। रागांश लेना है। क्योंकि पूरा का पूरा राग नहीं है, (यानी कि) एकाकार होकर पूरा राग नहीं है, अल्प अंशमें है। टूट जो गया है न ! अतः वीतरागता (समेत है)। एक चारित्रगुणकी पर्यायमें अंशतः वीतरागता है और अंशतः राग है। `रागांश' शब्द इस्तेमाल किया है। पत्र(३०)में गुरुदेवकी (वाणी संबंधित) ऐसा लिखा है कि गुरुदेवकी वाणी कैसी है ? कि रागांश निमित्तक वाणी है। गुरुदेवकी वाणी रागांश निमित्तक है, ऐसा लिया है। (इसका अर्थ यह है कि,) गुरुदेवको वाणीका जो राग-विकल्प है, वह आंशिक है। वीतरागता सहित है न ! इसलिए (ऐसा कहा)। एक-एक बातमें कितनी सावधानी है !

`**भक्तिका रागांश कभी तीव्र आ जाता है, वह भी सहज ही आ जाता है। अपनी तो सहज प्रकृति है,...**' अपनी तो सहज प्रकृति है। `**बलजोरी (हठ) अपनेसे नहीं होती।**' हठसे मैं कोई काम नहीं करता। जबरदस्ती कोई काम (नहीं करता हूँ)। कृत्रिमतासे, हठसे करनेकी मेरी प्रकृति ही नहीं है। राग आया तो भी सहज, नहीं आया तो भी सहज।

मुमुक्षु :- ज्ञानियोंकी प्रकृति ही ऐसी होती है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, सरलता अधिक होती है। सरलतामेंसे ज्ञानप्राप्ति हुई है न ! इसलिए (ऐसा है)।

मुमुक्षु :- यहाँ जो प्रकृतिका उल्लेख है, वह उदयभावरूप प्रकृति है या सहज परिणति ?

पूज्य भाईश्री :- प्रकृति अर्थात् स्वभाव, परिणाम स्वभाव। सहज जैसे परिणाम हो उस जातिका स्वभाव है। जैसे नहीं कहा जाता है कि मेरा स्वभाव थोड़ा तेज़, थोड़ा ठंडा है। कोई बुरा कह दे तो भी शांत रहे, तो इसमें कोई वीतरागता नहीं है (परंतु) प्रकृति ऐसी होती है ! कोई थोड़ा-बहुत सुना दे तो भी सहन कर ले, शांत ही रहे, वैसे। कोई बिना कारण ही तेज़-उतावला हो जाता हो, (वह) प्रकृति स्वभाव है, ऐसे ! मेरी तो शुरूसे ही सहज प्रकृति है ऐसी।

मुमुक्षु :- अर्थात् उदय ही है न !

पूज्य भाईश्री :- हाँ, उदयकी ही बात है। प्रकृति अर्थात् उदयकी बात है। लेकिन उस परिणामका (ऐसा) प्रकार है, यों (कहना है)। प्रकृति माने प्रकार। प्रकार शब्द ही प्रकृतिमेंसे आया है। जैसे कि कार्मणवर्गणा, उसमें ज्ञानावरणीयकी प्रकृतिका मतलब उस प्रकारके परमाणु, फिर दर्शनावरणीयकी प्रकृति तो उसप्रकारके (परमाणु) !

भाव भी उसी प्रकारके। ज्ञानको आवरण करे ऐसा भाव। दर्शनको आवरण करे उस प्रकारका भाव। प्रकार सूचक ही प्रकृति है। यह उन्होंने अपने परिणामकी सहजता संबंधित बात की है कि, हठ करना, बलजोरी करना, ऐसा प्रकार नहीं है। यह बात सरलतासूचक है। जिसे असरलता होती है उससे हठ बहुत हो जाता है, फिर चाहे त्याग करें तो भी हठसे, व्रत लें तो भी हठसे, और किसीके साथ व्यवहार करें तो भी हठपूर्वक करें। अपने हठ अनुसार करे यह खुदकी असरलता है, या वक्रता है और ऐसे परिणाम आत्माके विराधक परिणाम हैं। साधनासे प्रतिकूल हैं।

शुभ या अशुभ (भाव होना) दूसरी बात है। सरलता और असरलता (होना) दूसरी बात है। उसका संबंध आराधना-विराधनाके साथ है। इस तरह (सरलता-असरलताका) प्रकार ऐसा है, शुभाशुभमें वह नहीं जाता।

मुमुक्षु :- सरलताका संबंध आराधनाके साथ है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, सरलता आराधनाके साथ सुसंगत है जब कि हठ विराधनाके साथ सुसंगत है। एक-दूसरेके प्रतिपक्षमें हैं।

अपने सहज सुखकी पिपासा होनी चाहिए; जितनी तीव्र पिपासा...उतना जल्दी काम होता है। (द्रव्यदृष्टिप्रकाश - **२९२**)

मेरी तो ऐसी आदत पड़ गयी है कि बाहरमें चाहे-जैसी खड़खड़ाहट हो परन्तु मेरे तो इधर (अंतर-परिणमन) चलता है न...! तो उधरका लक्ष्य ही नहीं रहता। खड़खड़ाहट तो पसंद ही नहीं है। (अंगत)

प्रवचन - ११ दि. ०४-०८-१९९२ - वचनामृत-३८४

`मेरी तो ऐसी आदत पड़ गयी है कि बाहरमें चाहे-जैसी खड़खड़ाहट हो परंतु मेरे तो इधर (अंतर-परिणमन) चलता है न...! तो उधरका लक्ष्य ही नहीं रहता। खड़खड़ाहट तो पसंद ही नहीं है।' खड़खड़ाहट माने (गुजरातीमें) घोंघाट। घोंघाट ही कहते हैं न ? बाहरमें खड़खड़ाहट हो तो भी खुदका उसतरफ लक्ष्य नहीं है। भीतरमें जो परिणति चलती है, और लक्ष्य आत्मा पर है, इसलिए बाहरमें शोर-गुलवाली जगह हो तो भी, चाहे कैसी भी शोर-गुलवाली जगह हो तो भी उनका लक्ष्य नहीं जाता था। वैसे देखे तो बाज़ारमें चलते मालूम पड़े, और इसमें भी कलकत्ताका बाज़ार, बड़ाबाज़ार, (वहाँ) बहुत गिर्दीवाले रास्ते, बहुत ट्रैफिक - Heavy ट्रैफिक, फुटपाथ पर भी लोग टकराते-टकराते चलते, भीतरी इलाकेमें तो बहुत सँकरे रास्ते (हैं)। जहाँ कपड़ेका बाज़ार है, मिठाईका बाज़ार है, वहाँ तो बहुत सँकरी गलियाँ, ६-६, ७-७ फुट चौड़ी गलियाँ हैं। जिसमें गाड़ी चलनेका तो सवाल ही नहीं, गाड़ीवालोंको तो बाहर चौड़े

रास्ते पर गाड़ी पार्क करके चलकर जाना पड़े, सिर्फ रिकशाएँ चलती हैं। वह भी हाथ-रिकशाएँ कि जिसे आदमी चलाते हैं वह। वरना तो चलकर ही जाना पड़े। (ऐसेमें सर्वत्र) शोर-गुल तो होना स्वाभाविक ही है ! जहाँ बस्ती बढ़ जाये वहाँ शोर-गुल तो बढ़ेगा ही। (इनका) लक्ष्य नहीं रहता इसलिए दिक्कत नहीं थी। (श्रीमद् राजचंद्रमें आया न !) `द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावका प्रतिबंध नहीं है ऐसे महात्माओंको नमस्कार' इसको कहते हैं प्रतिबंधका अभाव। लक्ष्य नहीं है मतलब प्रतिबंध नहीं है। और अगर इनको प्रतिबंध होता तो सम्यक्‌दर्शन प्राप्त करनेके पश्चात् एकावतारीपनेमें आनेका पुरुषार्थ नहीं हुआ होता। दशा वृद्धिगत न हुई होती। दशा जो वृद्धिगत हुई है यह सूचित करता है कि, उन्हें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका प्रतिबंध अवरोधरूप नहीं हुआ। शुरुआतमें तो कुटुंब वहाँ साथमें नहीं था इसलिए बरसों तक बाहर खा लेते, बाहर रहना और बाहर खाना। कुटुंब परिवार आ गया तो भी स्थितिके प्रमाणमें सब जगह होवे, सब प्रकारकी अनुकूलता कहाँसे हो ? परंतु अनुकूलता हो तो ही धर्म हो सकता है वरना नहीं, ऐसा नहीं है, जिसका यह सबूत है।

मुमुक्षु :- सोगानीजी और श्रीमद्‌जीकी (बाहरमें) स्थिति उलटी-सुलटी थी।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, श्रीमद्‌जीका क्या था कि पहलेसे ही बाहरमें (कितने ही) अतिशय थे। पूर्वके आराधक थे। जब कि सोगानीजी पूर्वके आराधक नहीं थे। दोनोंमें इतना फर्क है। श्रीमद्‌जी पूर्वके आराधक थे तो बिना गुरु भी ज्ञानप्राप्ति हुई, समयसारसे (हुई)। जब कि सोगानीजी तो मूल दिगम्बर थे । श्रीमद्‌जी तो मूल दिगम्बर भी नहीं थे, फिर भी गुरु बिना ज्ञानप्राप्ति हुई। जब कि ये मूल

दिगम्बर तो थे, शास्त्र भी पढ़े थे, (फिर भी) ज्ञान नहीं हुआ। गुरु बिना ज्ञान प्राप्ति न हुई।

मुमुक्षु :- मैंने तो स्थितिकी अपेक्षासे कहा।

पूज्य भाईश्री :- स्थितिमें भी क्या हुआ है कि पूर्वके आराधक थे इसलिए उन्हें (श्रीमद्‌जीको) बाहरमें कुछएक अतिशय थे। पहलेसे ही अतिशय थे इसलिए छोटी उम्रसे बहुत चमत्कारिक व्यक्ति हैं - ऐसी बाहरमें एक प्रसिद्धि हो गई, ख्याति हो गई। स्वयं २२वें वर्षमें लिखते हैं कि, `मैंने अभी तक जिस ख्यातिका वेदन किया है इससे मेरी परिणति दूषित हुई है।' क्या लिखा है ? `मेरी परिणति दूषित हुई है।' मुझे काफी लोग जानते हैं, मुझे काफी लोग पहचानते हैं, मेरी प्रसिद्धि हुई है, ऐसा अपने परिणाममें रहना वह दूषण है। लोकसंज्ञाका दूषण लग जाये न ! मेरी परिणति दूषित हुई है। २२वें वर्षमें कबूल किया है। कितनी सरलता है !! वयचर्या लिखी इसमें खुदकी प्रसिद्धि हुई वह बात लिखी है। उस प्रसिद्धिके वेदनसे मुझे दूषण, मुझे दोष लगा है। - वह बात भी साथ-साथ लिखी है। कितनी सरलता है !! इसलिए हुआ क्या कि उन्हें शुरूसे ही व्यवसायमें इन्वेस्टमेन्ट करनेवाले इन्वेस्टर मिल गये। और कुटुंबकी परिस्थिति अनुसार उन्हें व्यवसाय शुरू करनेकी जरूरत तो थी ही, और ऐसी जरूरतवाली स्थितिमें उनको इन्वेस्टर्स पहलेसे ही मिल गये, मुंबई जैसा क्षेत्र था और पैसा लगानेवाले उनको मिल गये, स्वयं बुद्धिमान तो थे ही, ऐसा सब मेल बैठ गया।

इनके (सोगानीजीके) साथ ऐसा कोई नहीं था कि चलो (भाई) ! पैसा हम लगायेंगे, आप करो मेहनत ! - ऐसा कोई नहीं मिला था। वे अपने पैरों पर ही खड़े हुए हैं। मेहनत कर-करके, परिश्रम कर-करके आर्थिक दृष्टिसे कुटुंब निर्वाह चलाते-चलाते खुद अपने

पैरों पर खड़े हुए हैं। उसमें भी कोई ज्यादा कमाई नहीं कर ली थी। श्रीमद्‌जीको तो आर्थिकदृष्टिसे काफी कमाई हुई थी। ये कोई ज्यादा नहीं कमाये थे। कुटुंब-निर्वाह हो पाया और इसके अलावा अजमेरमें ३० हजारका मकान लिया था जिसे (वहाँकी) संस्थामें अभी स्वाध्याय हॉलके रूपमें दान दे दिया। अजमेरमें उसे Donate किया। वहाँ सुबह स्वाध्याय चलता है। वह मकान उन्होंने अपनी मौजूदगीमें ३० हजारमें लिया था। (उनके लड़केको) पूछा था कि, आपने जब (व्यवसाय) सँभाला तब बाबूजी कितनी पूँजी छोड़कर गये थे ? तो उन्होंने कहा कोई पूँजी नहीं थी, लेकिन एक व्यवसाय हाथमें था, पूँजी नहीं थी। जितनी उगाही बाकी थी उतना ही सामने देना बाकी था। कपड़ेका धंधा तो उधारका (होता है) न ! जितनी उगाही थी उतना सामने देना बाकी था। जिसका माल लेते थे वह उधारीमें बेचते थे। सामने उधारीमें लेते और उधारीमें बेचते थे। व्यवसाय हाथमें था। `बाँगर ब्रधर्स' वाले मारवाड़ी थे इसलिए वे काम देते थे। ऐसा कहा कि हमारा माल आप बेचना। यह मकान लिया इतना जरूर था ! कमाईमें उतना कि इतने सालों तक कुटुंबका निर्वाह चला। करीब १९५१में (कलकत्ता) गये हैं। १९६४में देह छूटा है। १४-१५ सालका फ़ासला है उसमें कुटुंब निर्वाहमें जो खर्च हुआ वह और ३० हजारमें यह मकान लिया। इसके अलावा (उनके) पास कुछ नहीं था। ऐसा है ! कहनेका मतलब यह है कि अगर लक्ष्य नहीं है तो प्रतिबंध नहीं है।

मुमुक्षु :- कैसा योग !! श्रीमद्‌जी और सोगानीजी दोनों बड़े शहरमें रहनेवाले !!

पूज्य भाईश्री :- हिन्दुस्तानके दोनों बड़े-बड़े शहर, एक कलकत्ता और एक मुंबई। दोनोंने सामान्य कुटुंबमें जन्म लिया।

मुमुक्षु. ऐसे शहरोंमें रहकर एकावतारीपना प्राप्त किया !

पूज्य भाईश्री :- श्रीमद्जीकी (ज्ञानदशा) साढ़े दस साल रही जब कि सोगानीजीकी १८ साल ज्ञानदशा रही। सोगानीजीकी ज्ञानदशाका काल १८ साल है।

वैसे तो खड़खड़ाहट पसंद नहीं परंतु क्या करें ? सर पर जिम्मेवारी आ गई हो तो क्या करें ? लक्ष्य बदल देता हूँ। संयोग नहीं बदल सके ऐसी स्थिति हो वहाँ जीवको अपने परिणाम बदलने चाहिए। क्योंकि परद्रव्यका कर्ता-हर्ता तो है नहीं, हो सकता नहीं। (अतः) परिणामको मोड़ देने चाहिए। परिणाममें फेरफार कर देना चाहिए।

(अज्ञानी जीवको) ज्ञानका थोड़ा क्षयोपशम होवे और थोड़ा विकास भी होता जाए तो वह उसमें ही रुक जाता है; मैं थोड़ा समझदार तो हूँ और पहलेकी अपेक्षा शान्ति भी तो बढ़ रही है, इस तरहसे मैं आगे बढ़ तो रहा हूँ - ऐसे सन्तोष मानकर अटक जाता है। (द्रव्यदृष्टिप्रकाश - १८९)

मुझे तो एकान्तके लिए समय नहीं मिले तो चैन ही नहीं पड़ता। (अंगत)

प्रवचन - १२ दि. ०४-०८-१९९२ - वचनामृत-३८५

'मुझे तो एकांतके लिए समय नहीं मिले तो चैन ही नहीं पड़ता' एकान्तकी भावना बहुत रहती थी। दिनके समयमें एकान्त न मिले तो रातको नींद कम कर देते थे। नींद ही नहीं आती, कम क्या करना ? आती ही नहीं थी। रातको पद्मासन लगाकर ध्यानस्थदशामें घंटों तक बैठ जाते। आम आदमीको नींद न आये तो चैन नहीं पड़ता है। इनको एकांत न मिले तो चैन नहीं पड़ता है, देखिये ! कैसी बात है ! उलटी-सुलटी (बात) हुई न ! नींद न आये तो आदमीको चैन नहीं पड़ता, ये कहते हैं, मुझे एकांत न मिले तो चैन नहीं पड़ता। इतना ज़ोर रहता कि तबीयतका खयाल न रहे उतना ! (यह तो) स्वाभाविक ही है। शरीरधर्म तो शरीरके अनुसार ही काम करेगा। शरीरका तो पुद्गलके विज्ञान अनुसार सब होगा। अब खुदके परिणाम उस तरफ न लगते हो तो शरीरकी उपेक्षा हो जाये, नींद न आये तो ध्यान करने बैठ जाते। शरीरमें अस्वस्थता हो (फिर भी) कोई दरकार नहीं, लक्ष्य नहीं देते थे (अतः और) भी बिगड़ जाती।

पूज्य बहिनश्रीका ऐसा ही है। उन्होंने भी शरीरकी उपेक्षा बहुत की है। साधनाकालके दौरान शरीरकी बहुत उपेक्षा की है। और वह भी सहज ही (होती) है। अज्ञानीके माफिक हठसे नहीं करते। वे लक्ष्य दे नहीं पाते हैं, फिर क्या करें ? लक्ष्य रहता नहीं है और लक्ष्य दे सकते नहीं है फिर क्या करें ? ऐसी बात है।

असल में सुनने आदि का रस कम हो जाना चाहिए, - वह कम कब होगा ? कि - जब अंदर का रस बढ़ता जावे तभी उधर में रस कम होता जाता है। (इसलिए) **शुरू से ही उधर में** (सुनने आदि में) **ज़ोर नहीं आना चाहिए।** (मुमुक्षु जीव को शुभभाव में रस आता है, वह भी विभावरस ही है। सिद्धांत तो यह है कि कहीं भी (शुभाशुभभाव में) विभावरस तीव्र नहीं होना चाहिए। अतः ऐसी समझपूर्वक अत्यंत सावधानी रहने से, उक्त प्रतिबंधक रस तीव्र न होनेसे, अंतर्स्वभावरस उत्पन्न होनेका अवकाश बनता है; और वैसे अवकाश से अंतर्स्वभावरस आविर्भूत होनेकी प्रक्रिया संभवित है।) (**द्रव्यदृष्टिप्रकाश - ४८९**)

(स्वयंके बारेमें :) **मैं तो विकल्पोंसे एकदम थक गया था; तभी** (जैसे कोई) **ऊपरसे एकदम नीचे पटके, वैसे पर्यायसे छूटकर** (ज़ोर पूर्वक चेष्टासे) **अन्दरमें** (निर्विकल्प अनुभवमें) **उतर गया।** (अंगत)

प्रवचन - १३ दि. ०३-१०-१९९२ - वचनामृत-४८४

`(**स्वयंके बारेमें :**)' इस बोलमें अंगत परिणाम संबंधित बात की है। `**मैं तो विकल्पोंसे एकदम थक गया था;...**' `एकदम' माने ? पूरा थक गया था। `**तभी** (**जैसे कोई**) **ऊपरसे एकदम नीचे पटके,...**' ऊपरकी मंजिलसे किसीको पटक दे (वैसे) `**वैसे पर्यायसे छूटकर** (**ज़ोरपूर्वक चेष्टासे**)**...**' ऐसी-ऐसी चेष्टा की थी। ऐसे अंदरमें आ गया...! ऐसा कहते हैं। `**वैसे पर्यायसे छूटकर अंदरमें** (**निर्विकल्प अनुभवमें**) **उतर गया।**' भाषाके साथ चेष्टा होती है कि नहीं ? सामान्य बातचीत के दौरान आदमीकी हाथकी, चेहरेकी सभी चेष्टाएँ होती हैं कि नहीं ? यह तो अध्यात्मका विषय है। निर्विकल्प अनुभवमें खुद उतर गये थे यह बात कभी उन्होंने अपने मुँहसे भी चर्चाके दौरान की है। बहुत ज्यादा लोग मौजूद हो तब ऐसी अंगत बातें नहीं करते थे लेकिन शुरू-शुरूमें हम दो-चार लोग ही बैठते थे। ऐसी-ऐसी बातें चली हैं।

मुमुक्षु :- क्या उन्होंने ऐसी चेष्टा की थी ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, (ऐसे कहा) विकल्पसे इतना थक गया था कि अंदर निर्विकल्प (स्वभावमें) उतर गया। ऐसा हूबहू चेष्टापूर्वक (कहा था।) जैसे किसीको नीचे पटके ऐसे आत्मामें उतर गये ! यह बात प्रत्यक्षमें हुई है। वह चेष्टा देखी थी, इसलिए (वह लिखा है)। लिखा है न ! `ज़ोरपूर्वक चेष्टासे' वह तो देखी हुई बात ही लिखी है।

जहाँ तक परिणाम का लक्ष्य रहता है वहाँ तक `मैं पुरुषार्थ करुँ, अंतर में वलुँ (ढलुँ) - ऐसे कर्तृत्व का बोझा रहा ही करता है।' इसलिए तो कहता हूँ कि `भाई ! तू परिणाम मात्र का लक्ष्य छोड़; विकल्प-निर्विकल्प सभी पर्यायों का लक्ष्य छोड़; अनुभव हुआ, नहीं हुआ वह न देख।' (मुमुभुजीव को तत्त्वविचार चलता है, उसमें जब तक उक्त प्रकार के परिणाम आते हैं तब तक उसका वैसे परिणामों पर वज़न / ज़ोर जाता है तो जिस मात्रा में पुरुषार्थ सामान्यस्वरूप के प्रति होना चाहिए, वह उत्पन्न नहीं हो पाता है। अतएव तत्त्वविचारक मुमुक्षु को तदविषयक अत्यंत सावधानी आवश्यक है।) (**द्रव्यदृष्टिप्रकाश -४७९**)

(शुरू-शुरूमें धार्मिक) **पुस्तकोंका बहुत पठन था, सैकड़ों पुस्तकें पढ़ ली थी, मगर दृष्टि नहीं मिली। पू. गुरुदेवश्रीसे दृष्टि मिली, पीछे पुस्तक पढ़नेका रस कम हो गया।** (अंगत)

प्रवचन - १४ दि. ३-१०-१९९२ - वचनामृत-४८५

आगे ४८५ (बोल) है। `(**शुरू-शुरूमें धार्मिक**) **पुस्तकोंका बहुत पठन था,...**' खुद जब अजमेरमें थे तब धार्मिक पुस्तकोंका बहुत वांचन था। `**सैकड़ों पुस्तकें पढ़ ली थी,...**' यानी जितनी पुस्तकें मिलतीं, सभी पढ़ लेते थे। वे थोड़े धुनी थे न ! दुकानके बाहर मुड्डा लगाकर बैठ जाते थे।

चबूतरेवाली दुकान थी। मुझे दिखायी थी। कहा था कि, यह दुकान बाबुजीकी थी। एक ही मकानमें लाईनमें चार दुकानें थीं (जिनमें से एक दुकान थी।) रोड़ पर ही है। स्टेशनके तरफ आते हुए सोनीजीकी नशिया आनेके पहले रास्तेमें आती है। वे जो शास्त्र पढ़ते थे उसे दुकान पर ही रखते थे। बाहर मुड्डा डालकर बैठ जाते। ग्राहक आते तो नौकरको कह देते, तू निपटा दे ! नौकर धंधा कर लेता, समझा देता, धंधा करे - नहीं करे, कम करे - ज्यादा करे, न करे - इनका कुछ ध्यान नहीं रहता। आखिरमें दुकान बंद करनेकी बारी आई। लोग ऐसे कहते कि, वे ध्यान

नहीं देते थे इसलिए दुकान बंद करनेकी बारी आई। परंतु उन्हें लगन उतनी लगी थी कि उनसे ध्यान दिया नहीं जाता था। मूलमें लगन ऐसी थी ! शास्त्र पढ़ते तब इस तरह पीछे लग जाते थे।

`**सैकड़ों पुस्तकें पढ़ ली थी, मगर दृष्टि नहीं मिली।**' (अर्थात्) चाहे कितनी ही पुस्तकें पढ़ी परंतु दृष्टि नहीं मिली, अर्थात् वे पूर्व संस्कारी नहीं थे। इतना जबरदस्त काम किया लेकिन कोई पूर्व संस्कार लेकर यहाँ नहीं आये थे। अभी मुमुक्षुओंको ऐसा तर्क उठता है कि, गुरुदेवश्री, श्रीमद्‌जी और बहिनश्री - सब तो पूर्व भवका संस्कार लेकर सीमंधर भगवानके पाससे आये थे (इसलिए उन लोगोंको सम्यग्दर्शन हो गया,) हम कहाँ संस्कार लेकर आये हैं? लेकिन यह देखिये ! बिना संस्कार (इन्होंने) काम किया है ! यदि संस्कार ही होते तो (कबका काम हो गया होता क्योंकि) दिगम्बरमें जन्म हुआ था और दिगम्बर शास्त्र पढ़ें थे, इतना ही नहीं बहुत पढ़ें थे। (थोड़े) पढ़ें थे ऐसे नहीं परंतु बहुत पढ़ें थे। धुन चढ़ गई थी और पढ़ें थे फिर भी दृष्टिकी सूझ नहीं आयी।

`**सैकड़ों पुस्तकें पढ़ ली थी, मगर दृष्टि नहीं मिली। पूज्य गुरुदेवश्रीसे दृष्टि मिली,...**' (यानी कि) गुरुदेव मिले और सुना बादमें दृष्टि मिली। ऐसा है, बात तो ऐसी है। `**पीछे पुस्तक पढ़नेका रस कम हो गया।**' गुरुदेवको सुना बादमें पुस्तक पढ़ना कम हो गया, देखो !

मुमुक्षु :- दृष्टि मिली माने क्या ?

पूज्य भाईश्री :- इसमें क्या है कि, आत्मा अगर प्राप्त करना (है तो) वह किस दृष्टिसे आत्मा प्राप्त हो ? काम करनेका गम (सूझ) जिसे कहते हैं - गुरुगम जिसे कहते हैं। गुरुगम (वैसे) तो गुरु संबंधित बात है, (परंतु) गुरुदेवने इसका बहुत अच्छा अर्थ किया

है। परमागमसारमें वह बात ली है कि, गुरुगम माने पात्रता। गुरु कहे उस रहस्यभूत विषयमें गम पड़ना - जो कि पात्रतावालेको पड़ता है, दूसरेको नहीं पड़ता। अतः गुरुगम बिना ज्ञान नहीं है अर्थात् पात्रता बिना ज्ञान नहीं होता, ऐसे लेना। ऐसा कहकर स्वयंने (गुरुगमका) अर्थ खोला है। (सोगानीजी) स्वयं पात्रता लेकर आये थे इसलिए दृष्टि मिल गई। गुरुदेवकी तो जो बात है, वह सबके लिए खुली है। किसी एक व्यक्तिको कहाँ कहते हैं कि तुझे ऐसा कहता हूँ। सभामें जितने बैठे हैं उन सबके लिए बात खुली है। परंतु जिसकी तैयारी है उसके लिए ऐसा कह सकते हैं कि गुरुने दृष्टि दी, गुरुसे दृष्टि मिली।

(इस वचनामृतमें) स्वयंने स्पष्ट इकरार किया है। यह सब गुरुदेवने पढ़ा तो है न ! परंतु स्पष्ट इकरार किया है। इतनी दृष्टिकी बात की है कि, अभिप्रायमें तो ऐसा है कि मुझे किसीकी जरूरत नहीं, देव-शास्त्र-गुरुकी भी मुझे जरूरत नहीं। (परंतु देखो !) स्वीकार तो सब किया है। अतः (उन्हें) निश्चयाभास नहीं है इसका यह सबूत है। निश्चयाभास होता तो एकांत (निश्चयकी) बात आती। यह बात बीचमें आती ही नहीं। (परंतु यहाँ तो) यथाप्रसंग उन्होंने सारी बातें की हैं।

आखरी वक्त जब (सोनगढ़) आये, बात सब बाहर आ गई और बहुत लोग जब आने लगे तब, जिस दिन जानेवाले थे उस दिन करीब खाना खानेके समय एक मुमुक्षुभाई आये। मैं भी साथमें खाना खानेवाला था और चर्चा पूरी होनेके पश्चात् सब लोग चले गये बादमें हमलोग बैठे थे, ऐसेमें वह मुमुक्षुभाई आये और पूछा, `कैसे हो निहालचंदजी ?' ऐसा शिष्टाचार करके बैठे। फिर पूछा `चर्चा कैसी चलती है ?' अब देखिये, उन्होंने (सोगानीजीने) कैसा उत्तर

दिया ! कि, `सब गुरुदेवसे मिला है, गुरुदेव नहीं मिले थे इसके पहले तो मैं A...B...C... भी नहीं जानता था !' क्या कहा ? `मैं तो इस बातका ककहरा - बारहखडी भी नहीं समझता था' (देखो !) कभी ऐसी बात निकल जाती है। निश्चयाभास हो तो फटाकसे स्वच्छंदपूर्वक जो बात निकलती है वैसे निकले। उस वक्त बोले थे तब भले ही ये भाषा थी परंतु उनकी नम्रता दिखनेमें आ जाये ! (जवाबमें कहीं भी) कृत्रिमता नहीं थी। गुरुदेवसे मुझे यह सीखने मिला, इसके पहले मैं कुछ नहीं समझता था। A...B...C... नहीं जानता था, इसका अर्थ क्या ? कि कुछ नहीं समझता था। यह कहते वक्त उनकी जो नम्रता थी वह दिखाई पड़ती थी। यह ४८५ (बोल समाप्त) हुआ।

मृत्यु कब आनेवाली है, यह तो निश्चित (जानकारीमें) **नहीं है, परन्तु आने की है सो तो निश्चित है; इसलिए हर क्षण तैयार रहना है। शरीरके टुकडे-टुकडे हो जाएँ; रोम-रोम पर धधकती सूईयाँ लगा दी जाएँ ...फिर भी, `अपने ध्रुव तत्त्व' में इनका प्रवेश ही कहाँ है ?**

(**द्रव्यदृष्टिप्रकाश -४७४**)

रात्रिमें निद्रा सहज कम हो जाती है, क्योंकि आराम तो सच्चे स्वरूपमें ही है; तो उस तरफकी एकाग्रतामें निद्रा तो सहज ही कम हो जाती है।

जिसको सारे दिन इधर-उधरके विकल्पोंकी थकान बहुत होती है उसको आरामके लिए निद्रा विशेष आती है। लेकिन जिसको इधर-उधर करनेका कर्तृत्व ही टूट गया है उसे थकान न होनेसे निद्रा भी कम आती है। जैसे मुनिराजोंको अन्तरकी जागृतिके कारण विकल्पकी थकान नहीं है तो निद्रा भी कम है।

मुझे तो (सोते वक्त) **पहले दो घण्टे नींद नहीं आती है, फिर थोड़ी नींद आजाए तो जगते ही ऐसा लगता है कि - क्या नींद आगयी थी ! पीछे नींद उड़ जाती है और यही** (स्वरूप-घोलन) **चलता रहता है।** (अंगत)

प्रवचन - १५ दि. ०३-१०-१९९२ - वचनामृत-४८७

यह अंगत बोल बहुत बढ़िया आया है। उनके ये वचन उनकी परिणतिमें रहे पुरुषार्थके सूचक - पुरुषार्थके द्योतक हैं। कितना पुरुषार्थ चलता था (इसे सूचित करते हैं)। बहुत पुरुषार्थ चलता था ! जैसे मुनिदशामें बहुत पुरुषार्थ चलता है वैसा तीव्र पुरुषार्थ उनका चलता था, यह इन वचनोंसे प्रतीत होता है।

`**रात्रिमें निद्रा सहज कम हो जाती है,...**' आदमी सोता क्यों है ? आराम मिले इसलिए। आराम मिलता है न ? सो जानेसे सामान्यतया आदमीको आराम मिलता है। (जब कि) इनकी परिस्थिति पूरी अलग थी। उनकी नींद कम हो गई थी। परिणतिका जो करन्ट था उसमें तीव्रता - तारतम्यता बहुत थी !! और उसके कारण उनकी निद्रा कम हो गई थी।

`**रात्रिमें निद्रा सहज कम हो जाती है, क्योंकि आराम तो सच्चे स्वरूपमें ही है,...**' (अर्थात्) आराम तो सच्चे स्वरूपमें है, निद्रामें कोई आराम नहीं। `**आराम तो सच्चे स्वरूपमें ही है; तो उस तरफकी एकाग्रतामें निद्रा तो सहज ही कम हो जाती है।**' निद्रा कम हो जानेका कारण स्वयंने लिखा है कि स्वरूप प्रत्ययी खिंचाववाली जो उग्र परिणति चलती है उसके कारण निद्रा कम हो गई है।

परिणाममें अशुभ-शुभ या शुद्ध तीनमेंसे किसी (भी) परिणामका रस बढ़ जाने पर निद्रा कम हो जाती है - यह नियम है। क्योंकि परिणाममें रस बढ़नेसे तारतम्यता बढ़ती है और तारतम्यता बढ़ने पर (निद्रा नहीं आती।) निद्रा कब आती है ? कि तारतम्यता कम होने पर। कुछ लोगोंको प्रवचनमें निद्रा क्यों आती है ? कि (सुननेमें) रस कम हो गया तब। रस तीव्र होने पर नींद नहीं आती। ये लोग सिनेमा नहीं देखते ? रातको शादीकी पार्टी (हो), दूसरा-दूसरा जो भी हो, उस वक्त देर रात्रि तक क्यों जाग सकते हैं ? (क्योंकि) रस है उनको। फिर उनको नींद आयेगी ही नहीं। वह अशुभरस है। वैसे ही भक्ति करनेवाले, भजन करनेवाले, जप करनेवालेको भी यदि रस हो तो नींद नहीं आती। ठीक वैसे ही शुद्ध स्वरूपका रस तीव्र हो जाये तो नींद कम हो जाती है। मुनियोंको कम हो जाती है, ज्ञानियोंको कम हो जाती है। इसलिए ऐसी बात ली कि,

`**उस तरफकी एकाग्रतामें निद्रा तो सहज ही कम हो जाती है।**' इस तरह निद्रा कम हो गई है, ऐसा कहते हैं।

`**जिसको सारे दिन इधर-उधरके विकल्पोंकी थकान बहुत होती है उसको आरामके लिए निद्रा विशेष आती है।**' अब देखिये ! (नींद) ज्यादा किसको आती है, इसकी चर्चा करते हैं। जिसको सारे दिन बहुत विकल्प चलते रहते हो - धमाधम (चलती हो) - फिर वह रात होनेपर थक जाता है, फिर सो जाता है। विकल्प सभी बंद हो जाये, तब उसकी थकान उतरे, परंतु ऐसा बहुत विकल्पवालेको होता है।

अब देखिये ! गृहस्थी और व्यापार-धंधा तो ये भी करते थे, परंतु इतने विकल्प नहीं थे कि इनकी थकान लगे और रातको नींद आ जाये। आम आदमी व्यापार-धंधा करता हो वह शामको थक जाता है और नौ-दस बजने पर या उसकी जो आदत हो उसके अनुरूप उसे नींद आ ही जाती है। जैसी आदत हो गई हो उस तरह (नींद आ जाती है)। इन्होंने उस प्रकारसे व्यापार धंधा नहीं किया, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- थकानको बाजारमें ही छोड़ आते थे।

पूज्य भाईश्री :- वहीं छोड़ देते। वैसे पीछेसे तो जब यहाँ (सोनगढ़) आने लगे, पिछले बरसोंमें जब मुझे मिले तब तो ऐसे कहते थे कि, `अब तो बाजारमें मैं जाता ही कम हूँ। लड़के लोग (धंधा) सँभालते हैं' इसलिए खुदने (जाना) कम कर दिया। कभी-कभी तो दोपहरमें खाना खाकर एक-दो बजे जाते थे ! बाजारवालोंने आधे दिनका व्यापार भी कर लिया हो तब तो इनकी बाजारमें जानेकी शुरूआत होती ! लोगोंका आधे दिनका व्यवसाय हो चुका हो, तब ये तो अभी शुरूआत करते ! क्योंकि वे ज्ञान-ध्यानमें जो बैठ गये

हो उस (ध्यानमेंसे) बाहर कब निकलेंगे इसका कोई ठिकाना नहीं रहता। कब स्नान करें, कब दूसरी क्रियाएँ निपटायें और बादमें खाना खाकर फिर जाते थे ! देर हो जाती थी। एक बज जाता, कभी दो बज जाते - ऐसा हो जाता था।

इसलिए (ऐसा कहा कि,) `**जिसको सारे दिन इधर-उधरके विकल्पोंकी थकान बहुत होती है उसको आरामके लिए निद्रा विशेष आती है। लेकिन जिसको इधर-उधर करनेका कर्तृत्व ही टूट गया है...**' (यानी कि) ऐसा हो तो ठीक और वैसा हो तो ठीक.. ऐसा करना है लेकिन क्यों नहीं हुआ ? ऐसा कुछ नहीं। जो होने योग्य होता है वह सब उदयके अनुसार हुआ करता है। अनुकूलता दिखे तब विकल्प आता है कि (अभी) अंदरमें परमाणुके पुण्यका उदय लगता है। और अनुकूलताका विकल्प उठे तो भी उलटा पड़े - सुलटा नहीं भी पड़े लेकिन उलटा पड़े - कम नहीं हो (यानी कि) जिसको मिलने जाये वह मिले ही नहीं, बहारगाँव गये हो - तब ऐसा विकल्प आये कि अंदरमें परमाणुका उदय ऐसा नहीं लगता। जाने दो ! कोई विशेष उपाधि (यानी कि) रस नहीं आता। ज्ञान हो जाता है (कि अभी) उदय कुछ इस प्रकारका लगता है। (वैसे) उदयका ज्ञान हो जाता है कि, उदय कुछ इस प्रकारका चलता है। अभी ऐसा उदय लगता है।

धार्मिक क्षेत्रमें श्रीमद्जीको ऐसा बहुत हुआ है। सौभाग्यभाई और अन्य दो-तीन (मुमुक्षु) जो समीप थे (वे ऐसा कहते थे कि,) `साहब ! मार्ग प्रकाशित कीजिये ! आपका मार्ग प्रकाशित करनेका सामर्थ्य असाधारण है ! भगवानके मार्गको आप प्रकाशित कीजिये !' तब (उन्होंने) कहा `मुझे योग नहीं दिखता है।' क्या (कहा) ? `ईश्वरेच्छा नहीं लगती है !' उसमें क्या कहा उन्होंने ? बाहरमें परिस्थिति

अनुकूल नहीं देखी। विरोध चालू हो चुका था न ! थोडे-बहुत लोग आने शुरू हुए, ऐसा मालूम पड़ा कि तुरंत पता पड़ जाये कि यहाँ इतने लोग आते हैं... यहाँ ये आते हैं... यहाँ वे आते हैं, उन लोगोंको एक ग्राहक भी छूट जाये, यह नहीं पुसाता। दुकानदारीवालेको तो हज़ारों ग्राहकोंमेंसे एक भी छूट जाये यह नहीं पुसाता ! इसलिए वे विरोध शुरू कर देते हैं। अतः (श्रीमद्जीने देखा कि,) मेरा वेष गृहस्थका है, आर्थिक स्थिति साधारण है, निवृत्तिका योग है नहीं, ऐसेमें मार्ग प्रकाशित करने गये तो ज़ोर-शोरसे चार अफवाहें नई चलने लगेंगी ! (इसलिए ऐसा कह दिया,) `ईश्वरेच्छा ऐसी नहीं लगती' क्या कहेंगे ? ईश्वरेच्छा नहीं है `जब तक ईश्वर प्रेरणा न करे तब तक मुझे (मार्ग प्रकाशित करनेका कार्य) नहीं करना है।' ऐसा कहते थे। `ईश्वर जिस दिन प्रेरणा देंगे उस दिनसे मार्ग प्रकाशित करूँगा। उनकी इच्छा अभी नहीं है तो कोई बात नहीं', यानी उदयको जान लिया कि, वैसा उदय नहीं है। (मार्ग प्रकाशित करनेका) सामर्थ्य हो किन्तु उदय नहीं भी हो ! सामर्थ्य न हो उसको उदय हो ! (ऐसा बनता है।) देखो ! (दूसरे पत्रमें ऐसा लिखा है) `निरंजन पदको समझनेवालेको निरंजन कैसी स्थितिमें रखते हैं,...' ऐसा लिखा है। कितना गूढ़ भाषाप्रयोग है !! निरंजन पदको समझनेवालेको निरंजन कैसी स्थितिमें रखते हैं, यह विचार करते हुए अकल गतिपर गंभीर एवं समाधियुक्त हास्य आता है !

इसकी गंभीरता (अर्थात्) कुदरतकी गंभीरता और उस गंभीरतासे उत्पन्न होता जो समाधान, इस समाधानके साथ-साथ बाहरकी विचित्रता देखकर हमें तो हँसी आ रही है, ठीक ! देखो तो सही कुदरतको क्या मंजूर है ! (ऐसा कहते हुए) वे तो हँस लेते हैं, खेदको प्राप्त

नहीं होते। इधर (खुदमें) इतना अत्याधिक सामर्थ्य है, बहुत जीवोंका हित हो सकता है, और वास्तवमें ऐसा ही था। `हमारे अंगमें इतना वैराग्य है' ऐसा लिखते हैं। `हमारे अंगमें इतना वैराग्य है कि हमारे संगमें आनेवाला वैरागी हो जाये ! इतना तो हमारे अंगमें वैराग्य है कि हमारे संगमें रहनेवालेको वैराग्य आ जाये ! और इतना ही ज्ञानातिशय है !' (परंतु बाहरमें) योग नहीं (दिखता) है तो कोई बात नहीं, छोड़ दो ! ऐसा करके विकल्प छोड़ देते हैं। ऐसा है।

(यहाँ क्या कहते हैं ?) `**लेकिन जिसको इधर-उधर करनेका कर्तृत्व ही टूट गया है उसे थकान न होनेसे निद्रा भी कम आती है। जैसे मुनिराजोंको...**' देखो ! मुनिका दृष्टांत लिया है। अपने साथमें मुनियोंका दृष्टांत लिया है। `**जैसे मुनिराजोंको अंतरकी जागृतिके कारण विकल्पकी थकान नहीं है...**' उनको तो बाहरमें प्रवृत्ति भी नहीं है अतः थकान नहीं लगती `**तो निद्रा भी कम है।**' जैसे मुनियोंको निद्रा कम है वैसे खुदकी निद्रा भी कम हो गई है।

अब, क्या होता है वह लिखते हैं, `**मुझे तो** (**सोते वक्त**) **पहले दो घंटे नींद नहीं आती है...**' दो घण्टे तो नींद ही नहीं आती है। ऐसी परिणति है कि दो घण्टे तो नींद ही नहीं आती। `**फिर थोड़ी नींद आजाए तो जगते ही ऐसा लगता है कि - क्या नींद आगयी थी** !' जैसे कि नींदमें भी जागृत हैं ! ऐसी परिणति है कि जैसे नींदमें भी जगे हुए हैं। अरे ! थोड़ी नींद आ गयी, ऐसा लगता है ! परंतु भीतरमें तो जैसे चालू ही चालू है सब ! `**पीछे नींद उड़ जाती है...**' यानी थोड़ी नींद आकर फिर उड़ जाती है `**और यही** (**स्वरूप-घोलन**) **चलता रहता है।**' बादमें तो फिर वे ध्यानमें बैठ जाते थे। कईबार, कभी भी आधि रातको बारह, एक, दो, तीन बजे, कभी भी नींद उड़ जाये कि वे सीधे पद्मासन

लगाकर जम जाते थे। सवेरा हो तो भी ठीक, नहीं हो तो भी ठीक ! नींदका विकल्प नहीं कि यह नींद उड़ गई है। (उड़ गई तो) कोई बात नहीं, नींद उड़ गई तो भले ही उड़ गई, क्या काम है इसका ? अपन अपना काम करो न ! ऐसा है। पुरुषार्थकी दशा बहुत अच्छी थी ! बहुत अच्छी दशा थी !!

सोचते रहनेसे तो जागृति नहीं होती, ग्रहण करनेसे ही जागृति होती है। सोचनेमें तो वस्तु परोक्ष रह जाती है और ग्रहण करनेमें वस्तु प्रत्यक्ष होती है। सुनते रहने और सोचते रहनेसे तो वस्तुकी प्राप्ति नहीं होती। (स्वरूप) **ग्रहण करनेका** (- अपने अस्तित्वको रुचिपूर्वक वेदन करनेका) **ही अभ्यास शुरू होना चाहिए।** (मुमुक्षुजीवको सामान्य भावनासे तत्त्वविचार चलता है। सोचना-विचारना तो बहिर्मुख भाव हैं, इसमें वस्तु परोक्ष रहती है; और ऐसेमें स्वयंके महान् अस्तित्वकी जागृति नहीं होती। किन्तु स्वरूपकी अनन्य रुचिसे `ज्ञानमात्र' के वेदनसे प्रत्यक्ष तौरसे अस्तित्व ग्रहणका प्रयास होना चाहिए- ऐसे प्रयाससे अंतर्मुखता प्राप्त होती है।)

(**द्रव्यदृष्टिप्रकाश -४५४**)

दूसरोंको लगे कि मैं देख रहा हूँ, लेकिन कोई (घरमें) चोरी कर जाए तो भी मुझे मालूम न पड़े। मेरे कपड़े कितने हैं ? घरमें चीज-वस्तु है या नहीं ? - मुझे कुछ मालूम नहीं रहता। (व्यवहारमें लक्ष्य इतना कम हो गया था)। (अंगत)

प्रवचन - १६ दि. ०६-१०-१९९२ - वचनामृत-४९७-अ

`**दूसरोंको लगे कि मैं देख रहा हूँ,...**' क्या (कहते हैं) ? दूसरोंको ऐसा लगे कि मैं उनके सामने देखता हूँ। `**लेकिन कोई (घरमें) चोरी कर जाए तो भी मुझे मालूम न पड़े।**' (माने) आँखें खुली हों परंतु वे अपनी धुनमें बैठे हों। घरमेंसे कोई चोरी करके, चीजवस्तु उठा ले जाये तो भी ध्यान न रहे। हमारे एक रिश्तेदार थे। अब तो नहीं रहे। बहुत धुनी थे। जो धुनी होते हैं वे उनके विषयमें बहुत प्रवीण होते हैं। वे खुद जब पढ़ते थे तब पढ़ते-पढ़ते खानेका समय हो जाये और कोई बुलाए तो भी सुने नहीं। उनको कंधा पकड़कर `चलो खाना खाने' ऐसे बोलना पड़े। कंधा पकड़कर हिलाना पड़े कि, `चलिये खानेका समय हो चुका है, ऐसे कहना पड़े।' वे अपने दीवानखानेमें बैठे हों सोफेके ऊपर बैठकर पढ़ते हों और तब चार आदमी घरमें दाखिल होकर पूरा स्टोरवेल -

अलमारी उठाकर बाहर ले जाते हों तो भी उन्हें पता न रहे कि, ये चार आदमी उठाकर पूरा स्टोरवेल ले जा रहे हैं। इतना उनका Concentration ! इतनी धुनकी प्रकृति थी। (वे ऐसा कहते थे कि,) मुझे ध्यान नहीं रहता कि चार या आठ आदमी आ गये हो, मुझे पता नहीं रहता कि, आठ आदमी घरमें आ गये हैं। वे अपनी धुनमें ही रहते। उनका इतना एक तरफ ही ध्यान रहे, दूसरी ओर ध्यान ही नहीं जाता। इतनी उनकी रुचि, अपने विषयमें इतनी रुचि।

वैसे ही, दूसरोंको ऐसा लगे कि मैं कुछ देख रहा हूँ, परंतु कोई घरमेंसे चोरी कर जाये तो भी मुझे पता नहीं रहता। दूसरा, `**मेरे कपड़े कितने हैं ?**' ये भी उन्हें मालूम नहीं होता था। ये अब नये कपड़े खरीदने होंगे, या कपड़े कहाँ रखे हैं ? कितने हैं ? इस्तिरीमें गये हैं कि नहीं ? इस्तिरी बराबर हुई है कि नहीं ? कोई (ध्यान) नहीं ! इस प्रकारकी एक उदासीनता आ गई थी। चाहे जैसे भी चलता। `**घरमें चीज वस्तु है या नहीं ?**' ये भी पता नहीं रहता। जिसको जरूरत होगी, अपने आप मँगवायेगा ! इसलिए उसका विकल्प नहीं, उसकी चिंता नहीं। अपने कपड़ोंकी चिंता नहीं, घरकी चीज-वस्तुओंकी चिंता नहीं, उन्हें कुछ पता ही नहीं रहता। पता रहे नहीं ऐसी धुन चढ़ गई थी कि कुछ ध्यान ही न रहे। ध्यान रखना चाहें तो भी रहे नहीं। ध्यान रखना है और नहीं रखते - ऐसा नहीं। पता रखना चाहे तो भी रहे नहीं, इतनी धुनमें चढ़ गये थे।

इसलिए उनके लड़केने ही अभिप्राय दिया था। मैंने उनको पूछा कि, ये दूसरे लोगोंसे अलग पड़ते थे तो आपको इनके लिए कुछ Idea तो आया होगा न ! कि भाई ! इनको क्या है ये सब ?

आम आदमीकी तरह जीते हों तब तो ठीक है ऐसा समझ ले कि सब बातें नोर्मल हैं। परंतु इनकी तो कई बातें Abnormal थीं तो आपको कभी विचार आया है या नहीं ? (तो उन्होंने) कहा, हाँ, इतना विचार आता था कि ये `धुनी हैं' अपनी धुनमें रहते हैं। इस तरह एक अभिप्राय बना लिया। किस चीजकी धुन है ? घरमें उन लोगोंका किसीका यह विषय नहीं था कि आत्माकी धुन किसे कहते हैं ? आत्माकी धुन माने क्या ? यह तो उन लोगोंका विषय नहीं था न ! इसलिए जैसे किसी आदमीकी धुनी प्रकृति होती है जैसे मैंने अभी दृष्टांत दिया वैसे इनकी प्रकृति भी धुनी है वैसे प्रकृतिगतरूपसे धुनी जरूर थे लेकिन झुक गये इस तरफ। वे इसमें (अध्यात्ममें) झुक गये। परिणमनकी जो पद्धति थी, वह आत्माकी ओर झुक गयी।

मुमुक्षु :- (किसीको) उनके बारेमें खयाल नहीं गया ?

पूज्य भाईश्री :- कलकत्तामें किसीको पता तक नहीं चला है।

मुमुक्षु :- कलकत्तामें तो उलटा इनका विरोध हुआ था।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, बीचमें (स्वाध्याय) बंद कर देनेका कारण वही था। विरोध करते थे इसलिए, फिर तो क्या करें ? विरोध करे फिर ऐसा ही कहे न ! कि ये कोई समझते तो हैं नहीं। पिछले दिनोंमें सोनगढ़में थोड़ी इनकी प्रसिद्धि हो चुकी थी। अपने समाजमें एक दूसरी तकलीफ यह है कि, खुद समझे तो कुछ नहीं और समझते हों उनका विरोध करें ! खुद तो कुछ समझे नहीं और समझते हों उनका विरोध करने लगे ! नासमझ लोग समझदारका विरोध करें। अपने समाजकी यह एक Tendency है - यह तकलीफ है। यह आगेसे चली आ रही है। कलकत्तामें भी यही हुआ देखो ! (वरना) बहुत शुरू-शुरूमें ही स्वाध्याय देते थे !

वे तो १९५१-५२में स्वाध्याय कराते थे। यह विरोध हुआ जबसे बंद हो गया। अब देखो ! विरोध करनेवाले सब कुछ समझते थे क्या ? परंतु नासमझ लोग भी विरोध करने लग जाये ! इसका कारण यह है कि शुरूसे ज्ञानका रास्ता अपना लिया न ! क्रियाका रास्ता छोड़ा, भक्तिका रास्ता छोड़ा और ज्ञानका रास्ता पकड़ लिया, अतः उघाड़वालेको `मैं समझता हूँ' ऐसा आये बिना रहेगा नहीं। अपने समाजमें सब व्यापारी लोग, बुद्धिजीवी लोग हैं। प्रायः बुद्धिजीवी लोग हैं, मजदूर-वर्ग तो है नहीं। फिर बुद्धि चलाते हैं, जिसमें अहंपना हुए बिना रहेगा ही नहीं, स्वाभाविक है । इतना विचार नहीं करते हैं कि यह हमारा विषय नहीं है, हम क्यों इसमें ज्यादा अक्कल दिखाते हैं ? ऐसा विचार कोई नहीं करते। इतना ही नहीं, इसमें नुकसान कितना है, यह भी नहीं सोचते हैं ! विरोध करनेसे सत्पुरुषकी विराधना हो जाये, इसमें कितना जोखिम है ? यह तो किसीको मालूम नहीं है ! विरोध किया और (ये) बंद हो गये परंतु इसमें जो विराधना हुई इसमें कितना जोखिम है, क्या इसका विचार किया किसीने ? कि इसका क्या फल आयेगा ? इसमें सत्पुरुषके मिलनेमें बहुत बड़ा अंतराय खड़ा हो जाये, ज्ञानको आवरण आ जाये, परमार्थकी दिशा बंद हो जाये, इसमें बहुत बड़ा नुकसान है, इसकी गंभीरता किसीको मालूम नहीं है। ऐसा नहीं होता, ऐसे नहीं होता, फलाना ऐसे होता है, ऐसा होता है...! अरे भाई ! लेकिन यह तू क्या कर रहा है ?! जिज्ञासामें रह न ! तुझे मालूम नहीं है तो तू जिज्ञासामें रह !

मैंने पूछा था (सोगानीजीको) कि क्यों ऐसा हुआ ? हम जब मिले तब यह चर्चा हुई थी। तब उन्होंने कहा कि विरोध चला था, इस मुद्दे पर उन्होंने कहा कि, वहाँ सुननेवाले कहने लगे कि

गुरुदेव तो ऐसा नहीं कहते हैं। सोनगढ़में ऐसे बात नहीं चलती है ! आप जिस तरह कहते हो ऐसा सोनगढ़में नहीं (चलता है) ! फिर कहा पुछवा लीजिये ! फिर वहाँसे किसीने पत्र लिखा। लेकिन यहाँसे उत्तर ऐसा मिला कि अगर इस तरह प्रतिपादन करते हो, तो वह यथार्थ है। फिर लोगोंने कहा कि, नहीं...नहीं... जवाब तो ऐसा आया है कि आपकी बात यथार्थ है। `लेकिन फिर मैंने ही छोड़ दिया' (सोगानीजीने ऐसा कहा कि,) `फिर मैंने ही अपनेआप छोड़ दिया, फिर मुझे रस न रहा,' लगा कि ये लोग समझते तो कुछ हैं नहीं फिर भी विपरीत चलते हैं। जो समझाते हों उनके पास समझनेकी वृत्ति रखनेके बजाय समझानेकी वृत्तिमें आ जाते हैं ! फिर कौन उपाधिमें जाये ? इसलिए खुदने ही बंद कर दिया। मैंने अपनेआप ही बंद कर दिया। मुझे रस न रहा इसलिए मैंने ही बंद कर दिया - ऐसा उन्होंने कहा। फिर उनका पुरुषार्थ बहुत ज़ोरदार चलता था इसलिए ध्यानमें अधिकतर रहने लगे ! एकांतमें, घरमें ध्यानमें बैठ जाना और स्वसन्मुखता आ चुकी थी इसलिए सन्मुखताका पुरुषार्थ बढ़ाते जाना, और आराधना वृद्धिगत करते जाना। - ऐसी लाइन - सूझ आ गई थी। पुरुषार्थकी सूझ आ गई थी। बहिनश्री कहते हैं न। कि मजदूरी करे तो, `पंड रळे तो पेट भराय ने धन रळे तो ढगला थाय।' (मजदूरी करके तो आदमी ज्यादा से ज्यादा पेट भर सकता है लेकन पैसेसे पैसा कमाये तो बहुत कमाई कर सके)। वैसे पुरुषार्थकी सूझ जिसको आ गई कि ढेर सारी निर्जरा होने लगे। फिर तो सूझ आ गई इसलिए समाजसे और भी उदास हो गये ! ऐसा (बना) है।

पूज्य गुरुदेवश्रीने जो उपदेश द्वारा बतलाया सो ही कार्य मैंने किया है। जगत्‌में मुझे मान या यश मिले, वह मुझे पसंद नहीं है। (अंगत)

प्रवचन - १७ दि. ११-१०-१९९२ - वचनामृत-५१३

`**पूज्य गुरुदेवश्रीने जो उपदेश द्वारा बतलाया सो ही कार्य मैंने किया है।**' अपनी अंगत बात करते हैं। पूज्य गुरुदेवश्रीने उपदेशमें जो बताया, वह कार्य मैंने किया। इसमें मैंने विशेष क्या किया है ? (ऐसा कहते हैं।) उन्होंने जो उपदेश दिया उस उपदेशको मैंने अंगीकार किया, इसमें विशेष बात क्या है ? `**जगत्‌में मुझे मान या यश मिले, वह मुझे पसंद नहीं है।**' इसको लेकर कोई मुझे मान देने आये या मान देवें, इसकी कोई आवश्यकता नहीं। इसमें क्या विशेषता हो गई ? सिर्फ उन्होंने जो उपदेश दिया उस उपदेशको मैंने अपने हितके लिए ग्रहण किया। जगतमें मान मिले इस हेतुसे कोई उपदेश ग्रहण करनेका हेतु नहीं होना चाहिए। मेरा हित हो, इसके लिए मैंने उपदेश ग्रहण किया, इसमें मान देनेकी कहाँ आवश्यकता है ? आपको इसका मान देनेकी क्या आवश्यकता है, भाई ? गुरुदेवने जो उपदेश दिया वह मेरे हितका उपदेश था और मेरे हितके खातिर मैंने उपदेश ग्रहण किया, इसमें आपको

(मुझे) मान देनेका कोई कारण नहीं है। आपको क्यों मान देना है ? मुझे यह बात वैसे पसंद भी नहीं। उसके खातिर मुझे मान मिले यह मैं पसंद नहीं करता। देखिये ! यह परिस्थिति है।

इसलिए कोई मान नहीं देवें, यह प्रश्न सम्यग्दृष्टिको रहता या होता नहीं है। क्यों सम्यग्दृष्टि हैं फिर भी मान नहीं मिलता है ? इसमें मानका प्रश्न ही नहीं है। अपमान भी हो सकता है, पापका योग हो तो अपमान भी हो सकता है। लेकिन मान न मिले तो क्या हो गया ? मेरे हितके खातिर मैंने मेरे स्वरूपका बोध ग्रहण किया है, इसमें मान लेनेका प्रश्न कहाँ है ? मान मिलनेका प्रश्न कहाँ है ? यह बात बीचमें क्यों आती है ? यह बिनजरूरी बात बीचमें आती है।

मुमुक्षु :- जिसको मानका प्रश्न है उसे सम्यग्दर्शन नहीं है और होगा भी नहीं।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, वह बात तो है ही ! उसे तो मानमें सुख (लगता) है। उसे कहाँ सुख (लगता) है ? उसको तो मानमें सुख है, आत्मामें सुख नहीं, अतः उसकी श्रद्धा मानकी है। उसे आत्माकी श्रद्धा नहीं। जीवको विभावकी श्रद्धा तो अनादिसे है।

मुमुक्षु :- मानको मारना बहुत मुश्किल है।

पूज्य भाईश्री :- ऐसा कुछ नहीं है, मारना हो तो कोई मुश्किल नहीं। उसे ज़िंदा रखना हो तो सारी मुश्किलें हैं कि जैसे मुझे मान नहीं मिलेगा तो ? मेरा मान नहीं रखा गया तो ? मैं वहाँ जाऊँगा फिर वहाँ मुझे मान नहीं मिला तो ? सबके बीचमें मेरा मान नहीं रहा तो ? यह तो जिसे मान ज़िंदा रखना हो उसे सारी चिंता और मुश्किलें हैं। जिसे मानको मारना है उसे तो कोई चिंता नहीं है। उसको तो कोई मान नहीं दे यह अनुकूल है।

(क्योंकि) मान चढ़नेका प्रसंग तो नहीं ! कोई मान दे जब तो मानका प्रश्न उठता है न ! मान नहीं देवें तो अच्छा, बहुत अच्छी बात है भाई ! कि, मान चढ़नेका प्रसंग तो नहीं हमको ! बातको सुलटी लेनी हो उसके लिए सब सुलटा है। उलटा लेना हो वह उलटा लेता है कि, (देखो !) मुझे मान नहीं देते। मेरेसे कम योग्यतावालेको मान मिलता है जब कि मेरी अधिक योग्यता होनेपर भी मान नहीं मिलता है, ऐसा उसे लगता है तो उसे तो मानको ज़िंदा रखना है। उसे मानको मारना नहीं है लेकिन मानको ज़िंदा रखना है। वास्तवमें तो उसकी यह परिस्थिति है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीका अपमान कोई करे तब वे कैसे लेते होंगे ?

पूज्य भाईश्री :- कुछ नहीं ! भिन्नताका (अनुभव है) ! अपमानसे भिन्नता कर लेते हैं कि, जैसे मुझे क्या लेना-देना है ? क्या वह मुझे देखता है ? मैं तो तीनलोकका नाथ हूँ। मुझे कहाँ देखता है ? मुझे तो देखता है जैसे फलाना मनुष्य है। ये फलाने भाई हैं (परंतु) मैं कहाँ वैसा हूँ ? वह जैसे फलाने भाईके रूपमें देखता है लेकिन मैं तो वह हूँ नहीं, फिर मुझे क्या लेना-देना है ?

जैसे एक बालक हो जो पड़ोसीके लड़केके साथ (रहकर) कोई अनुचित बात बोलना सीख गया हो और वह अनुचित (बात) अपने पिताश्रीको बोल दें, तो (पिता) क्या करेगा ? वह समझता है कि, यह बालक है उसे कुछ, भान नहीं है। दूसरेके सिखानेसे बोलना सीख गया है। क्या करें ?

`भिन्नता' तो द्रव्यानुयोगकी प्रथम सीढ़ी है। `भिन्नपना' द्रव्यानुयोगकी प्रथम सीढ़ी है। जब सारे जगतसे मैं भिन्न हूँ, फिर जगतको भिन्नतामें विस्मृत करना सरल है। विस्मरण ही कर लेता है। जैसे जगत है ही नहीं न ! मेरे लिए जगत है ही नहीं ! मैं ही हूँ, बस !

'मैं ही मैं हूँ' - बात पूरी हो गई। फिर अंदर गहराईमें उतरता है। जितनी (गहराई) तक उतरे उतना अपनेमें जीव गहराईमें जाता है।

मुमुक्षु :- अंतिम सीढ़ी कौन-सी है ?

पूज्य भाईश्री :- अंतिम ? स्वद्रव्यकी गहराईमें उतर जाये वह। अंतरमें उतर जाये और जितनी गहराई तक (जा सके उतनी गहराईमें) जाये। द्रव्यानुयोगके आश्रयसे शुक्लध्यान प्रगट करे, केवलज्ञान तक आ जाये, द्रव्य इतना गंभीर है ! महा गंभीर है !! बहिनश्रीके वचनामृतमें एक बात आती है कि, कोई ऐसा देखे कि ज्ञानी अभी ऐसे ही बैठे हैं, या पढ़ते हैं या कुछ सोचते हैं, परंतु वे अंदरमें कितनी गहराई तक चले गये हैं ! - यह बाहरी क्रियासे कुछ दिखे ऐसा नहीं है, कि अंदरमें कितनी-कितनी गहराई तक चले गये हैं ? द्रव्य इतना गहरा व गंभीर है, गंभीर..गंभीर... इसकी गहराईमें (विचरते हैं)। वचन अगोचर विषयमें ज्ञान पहुँच सकता है, विचार नहीं पहुँच सकता परंतु ज्ञान बराबर पहुँच सकता है और ज्ञान वहाँ पहुँचता है। अनंत दिव्यगुणोंके महलमें ज्ञानी विचरते हैं। उसे चिद्‌विलास कहा है । उसे चैतन्यका विलास कहा है। अनंत गुणोंका बाग खिल उठा है, उसे क्रीड़ावन कहा है। आरामबाग कहा है, उसमें आराम करते हैं, उसमें शांति मिलती है।

त्रिकालीमें विकार-अविकार कुछ नहीं है। (वह तो जैसा है वैसा है।) (**द्रव्यदृष्टिप्रकाश - ६०६**)

(स्वयंकी प्रसिद्धिके बारेमें पूछा गया तब कहा कि :) **कोई जाने न जाने, इसमें आत्माको कोई फायदा नहीं है। अनंत सिद्ध हो गए हैं, (लेकिन) आजकल कोई उनके नाम तक भी नहीं जानता है ! असंख्य सम्यग्दृष्टि** (तिर्यंच) **अभी ढ़ाई द्वीपके बाहर मौजूद हैं, उन्हें कौन जानता है ?**

आप किसीके लिए बोझा न उठावें। मैं अपनी बात अपने मुखसे नहीं कह पाऊँगा, और कोई बात बना करके (कि, ऐसा कहना है) (**वहाँ**) **जाना, ऐसा मुझसे नहीं हो सकता।** (धर्मात्माके समागममें पूर्वयोजित बात कहनेसे कृत्रिमता और असरलताका अपराध उत्पन्न होता है, जो कि मुमुक्षुओंको करने योग्य नहीं है।) (अंगत)

प्रवचन - १८ दि. २५-१२-१९९२ - वचनामृत-६२८

'**(स्वयंकी प्रसिद्धिके बारेमें पूछा गया तब कहा कि :) कोई जाने न जाने, इसमें आत्माको कोई फायदा नहीं है।**' दरअसलमें सामाजिक प्रसिद्धिकी बात नहीं चली थी। बात तो चली थी कि यह परिस्थिति (आपकी अंतरंग परिस्थिति) गुरुदेवको बतायी जाये। जब गुरुदेवसे उपकार हुआ है, आत्मकल्याणमें निमित्तभूत तो गुरुदेव हुए हैं और गुरुदेवको इस बातकी जानकारी नहीं है कि, इनको

सम्यक्दर्शनकी, दृष्टिकी प्राप्ति हो गई है, आत्मदृष्टि प्रगट हुई है, तो गुरुदेवको यह जानकर और प्रसन्नता होगी। जब कोई पात्र जीवको देखकर भी महापुरुषकी प्रसन्नता बढ़ती है तो अपने निमित्तसे किसीको मार्ग मिलता है तो और (भी) प्रसन्नता बढ़ती है। अतः गुरुदेवकी भी प्रसन्नता बढ़ेगी और आपको भी उपकार विदित करनेका एक कार्य हो जायेगा। उपकारीके प्रति उपकार निवेदन करें तो उसमें क्या तकलीफ है? क्या हरज़ा है ? इस ढंगसे बात तो हमने ही रखी थी। लेकिन वे प्रसिद्धिमें आनेके लिये तैयार नहीं थे। खुद तो प्रसिद्धि होवें उस बातमें तैयार नहीं थे। क्योंकि वे जानते थे कि जब गुरुदेवको पता चलेगा तो सारे समाजमें यह बात फैलेगी। और हमें तो समाजसे कोई परिचय बढ़ाना नहीं। न तो हमारा कोई समाजसे प्रसिद्धिका कारण (हेतु) है।

उन्होंने इस ढंगसे बात ली कि, कोई जाने - न जाने, (इससे आत्माको क्या फायदा ?) जवाब तो ऐसे दिया था कि, मानो गुरुदेवने जान लिया, (तो) मेरे आत्माको क्या फायदा हो जायेगा ? मेरा तो इसमें कोई प्रयोजन नहीं है। मेरा फायदा होनेका कोई प्रयोजन तो है नहीं ! तो फिर (हमने) न्याय वह रखा था कि, उपकारीके प्रति उपकार निवेदन करना यह भी एक व्यवहारिक तौरसे फ़र्ज होता है। (उन्होंने कहा कि) कोई सहज बात हो गई तो दूसरी बात है, चलाकरके ये बात करना यह मेरेसे नहीं हो सकेगा। ऐसा कहते थे कि सहज (बात) हो गई तो मुझे कोई आपत्ति नहीं, लेकिन चलाकरके तो मैं नहीं कह सकूँगा। मैंने कहा, 'मैं बताऊँगा, आप कुछ मत बोलिये, मैं साथमें चलूँगा और मेरी तो गुरुदेवसे बातें करनेकी बहुत (छूट है), आगे-पीछे हमारी तो (बातें) चलती रहती हैं, मैं तो आता-जाता हूँ। हम तो बहुतसी बातें करते

हैं।' तो (उन्होंने) कहा 'आप क्यों बोझा उठाते हो इस बातका ? मेरे लिये बोझा क्यों उठाते हो?' इस तरह वे सम्मत नहीं होते थे।

उस सिलसिलेमें यह बात चली है कि '**कोई जाने न जाने इसमें आत्माको कोई फायदा नहीं है। अनंत सिद्ध हो गए हैं,..**' क्या? अनंत सिद्ध हो गये हैं। '(**लेकिन**) **आजकल कोई उनके नाम तक भी नहीं जानता है** !' कौनसे सिद्ध परमात्माका नाम महावीर परमात्मा था ? और ऊपरमें कौनसे सिद्ध परमात्माका नाम ऋषभदेव परमात्मा था ? अनंत सिद्ध हैं वहाँ तो ! पिछली अवस्थामें कौनसा नाम था कौन जानते हैं ? संसारके लोग तो कोई जानते नहीं। क्योंकि वहाँ किसीकी पहुँच नहीं है। सर्वोत्कृष्ट दशा है, उस क्षेत्रमें किसी संसारीकी तो पहुँच नहीं है। अनंत सिद्ध आत्माएँ बिराजमान हैं। कौन क्या है ? कौन क्या है ? कौन जानते हैं ? संसारमें तो उनकी प्रसिद्धि ही नहीं है। सिद्धोंकी प्रसिद्धि संसारमें है ही नहीं। जब सिद्ध दशाकी (भी) प्रसिद्धि नहीं है तो इस सम्यक्दर्शनकी दशाकी प्रसिद्धि क्यों करनी? ऐसा कहते हैं। जब सिद्धोंकी सिद्ध दशाकी भी प्रसिद्धि नहीं है, तो एक जीवको सम्यक्दर्शन प्राप्त होवे इसकी प्रसिद्धिमें क्या रखा है ? कौनसी कीमत है उसकी ? ऐसा कहते हैं। इसकी कोई ज्यादा कीमत नहीं है, सम्यक्दर्शन हो गया तो क्या हो गया ? वे तो ऐसा ही कहते थे कि, सम्यक्दर्शन हो गया तो क्या हो गया इसमें ?

'**असंख्य सम्यक्दृष्टि** (**तिर्यंच**) **अभी ढ़ाई द्वीपके बाहर मौजूद हैं, उन्हें कौन जानता है ?**' इधर सोनगढ़में किसीको सम्यक्दर्शन होवे तो धमाल मचती है, चाहे विरोधकी चाहे अविरोधकी, लेकिन धमाल तो अवश्य मचती है। लेकिन ढ़ाई द्वीपके बाहर तो बहुत (सम्यक्दृष्टि) हैं, असंख्य हैं, कितने (हैं) ? लाख, करोड़, अरब

इतने नहीं, इससे आगे जाना पड़ता है। अरबों के अरबों (हैं)। इसमें कितने तो पंचम गुणस्थानवाले हैं।

मुमुक्षु :- आश्चर्यकी बात है !

पूज्य भाईश्री :- हाँ, लेकिन हैं। यह बात दिव्यध्वनिमें प्रसिद्ध हो चुकी है और आगममें पड़ी है। ऐसी बात है। कोई नाम भी (नहीं जानता), उनको कोई नहीं जानते। क्यों प्रसिद्धि करते हो? सम्यक्‌दर्शनकी क्यों प्रसिद्धि इतनी ? कोई जरूरत नहीं है, ऐसा कहते हैं।

`**आप किसीके लिए बोझा न उठावें।**' यह बात चली थी कि, आप किसीके लिए बोझा नहीं उठाना। `**मैं अपनी बात अपने मुखसे नहीं कह पाऊँगा,...**' मैं बोल नहीं पाऊँगा कि मुझे सम्यक्‌दर्शन हुआ है - यह बात कहनेके लिये मानसिकरूपसे मेरी तो तैयारी नहीं है। `**और कोई बात बना करके (कि, ऐसा कहना है) (वहाँ) जाना,...**' क्या (कहते हैं) ? कि, ऐसे कहना, फिर पहले ऐसा कहना, फिर बादमें ऐसा कहना। पहले थोड़ी फालतू बात कर देना, फिर दूसरी बात करना, फिर ऐसी बात कर देना। Planning जिसको कहते हैं, इसके लिये वे तैयार नहीं थे। (वे कहते हैं) कि नहीं, यह पद्धति मेरी तो नहीं है। सहज बात हो गई, (तो) हो गई। नहीं हो गई तो नहीं हो गई, कोई बात नहीं। `**कोई बात बना करके जाना, ऐसा मुझसे नहीं हो सकता।**'

इस (बात) पर थोड़ी ब्रैकेटमें टीप्पणी दी है कि, (`**धर्मात्माके समागममें पूर्वयोजित बात कहनेसे कृत्रिमता और असरलताका अपराध उत्पन्न होता है,...**' इस प्रकारसे बातकी पद्धति नहीं रखना, क्या? कृत्रिमता नहीं करना और सरलतासे सहज जो बात हो जाये उसमें असरलता करके अमुक बात कहना, ऐसा नहीं रखना। जो बात

है सीधी सरलतासे हो गई तो हो गई, नहीं हुई तो नहीं हुई। `**जो कि मुमुक्षुओंको करने योग्य नहीं है।**)'

मुमुक्षु :- गुरुदेवश्रीको कब मालूम पड़ा ?

पूज्य भाईश्री :- गुरुदेवश्रीको `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' जब हमने दिया तब मालूम पड़ा।

मुमुक्षु :- यानी उनके स्वर्गवास होनेके बाद ?

पूज्य भाईश्री :- क्या हुआ कि, जब स्वर्गवास हो गया तो (उनकी धर्मपत्नी) सोनगढ़ गुरुदेवके दर्शन करनेके लिये आयी थीं। (उस वक्त कुछ एख मुमुक्षुओंसे) फिर बात चली कि, आपको इनकी स्मृतिमें कुछ करना चाहिये। वे तो तैयार हो गये कि, जो भी हमारेसे हो सकेगा हम तो कर लेंगे। तो (मुमुक्षुओंने) कहा कि, बात तो मामूली है, इनके पत्र हमारे पास पड़े हैं, और भी किसीके पास होंगे तो उनके पत्रकी एक छोटीसी किताब निकाल देवें, प्रगट कर लेवें तो उनकी स्मृति रह जायेगी। और इसमें कोई लंबा-चौड़ा खर्च भी नहीं है। तो उन्होंने कहा, `ठीक है, जो भी खर्च आयेगा, हम दे सकते हैं। अगर ऐसा होता है तो हम तैयार हैं।' फिर बात चली कि गुरुदेवकी आज्ञा बिना तो नहीं कर सकते हैं, तो फिर उन्होंने गुरुदेवकी आज्ञा ले ली। गुरुदेवने हाँ भी भरी। फिर यह काम हमको सौंपा गया। इस काममें हमने परिपत्र निकाला कि जिसके पास चिट्ठियाँ हों, वह हमें भेजें, कोई चर्चा हो तो हमें भेज दें। जो भी परिचित थे उनके बीच ऐसे एक Circular letter निकाला। उसमेंसे जो पत्र आये, चर्चा आयी, उसका संकलन करके यह पुस्तक (द्रव्यदृष्टि प्रकाश) बनी।

गुरुदेवने पुस्तक पढ़ी ! यह (पुस्तक तो) अक्षरदेह है। ऐसे तो आत्मा किसीकी दिखनेमें नहीं आती। ज्ञानीको भी दूसरे ज्ञानीकी

कोई आत्मा थोड़ी दिखती है ? उनके भाव ही दिखते हैं। बातचीतके दौरान भाव दिखते हैं। ऐसे ये लिखे गये शब्द हैं, वहाँ बोले हुए शब्द होते हैं, ये लिखे हुए शब्द हैं। उसके माध्यमसे गुरुदेवने भाव तो पकड़ लिये और प्रसिद्धि कर दी। उस वक्त ऐसा हुआ है। और उसका ये सबूत है। गुरुदेवने अपना दस्तखत दिया कि; कुछ सोगानीजीके बारेमें दो शब्द लिख दो (ऐसा कहा) तो उन्होंने इतना ही लिखा है कि, '**ये संस्कार लेकर गये हैं,**' अनुभव लेकर गये हैं ऐसा नहीं लिखा और बात तो हमने की थी तो बोले कि, हमारे ज्ञानमें जितना आयेगा उतना हम कहेंगे। हम कोई ज्यादा - कम करके नहीं कहेंगे। हमारे ज्ञानमें जितना है उतना कहेंगे। वे (सोगानीजी) सुनते थे, उनकी रुचि देखकरके उन्होंने 'संस्कार' शब्द लिखकर दिया है। उसवक्त लिखनेमें ज्यादा नहीं दिया और जब ग्रंथसे भावोंका परिचय हो गया तब तो एकावतारी तकका जो भी ज्ञानमें आया उतना प्रसिद्ध कर दिया। ज्ञानमें जितना आता है उतना वे कहते हैं। न कम कहते हैं, न ज्यादा कहते हैं - यह तो प्रमाणज्ञानका स्वभाव है कि जितना नापमें आता है उतना ही बतावें ! ऐसा हुआ है। (गुरुदेवको) बादमें पता चला है। २०२३ की सालमें प्रसिद्धि हुई है। २०२०में देहांत हुआ है। और किताब २०२३में प्रगट हुई। तो २०२३में यह प्रसिद्धि हुई है।

मुमुक्षु :- अनुभूति कौनसे संवत्में हुई ?

पूज्य भाईश्री :- २००२में। १८ साल वे अनुभूतिमें - मोक्षमार्गमें रहे। १८ साल (रहे हैं)।

मुमुक्षु :- फिर भी उनकी प्रसिद्धि गुरुदेव तक नहीं पहुँची ?

पूज्य भाईश्री :- नहीं, गुप्त रहे। क्योंकि कारणवशात् तो वे (सोनगढ़) आ नहीं पाये। पहले सात सालमें एक दफा आये, फिर

सात सालके बाद एक दफा आये हैं, माने १४-१५ सालमें २ या ३ दफ़ा आये हैं। फिर लगातार पाँच साल तक वे बराबर आते रहे। आखिरमें सं. २०१६ में आये, २०१६,१७,१८,१९,२०में (हरसाल) बराबर आते रहे। (लेकिन) काम बहुत किया। बिना सत्संग, अकेले हाथसे बहुत काम किया है।

मुमुक्षु :- पूर्वका संस्कार था ?

पूज्य भाईश्री :- संस्कार नहीं था, वर्तमान पुरुषार्थ बहुत था। वर्तमान पुरुषार्थ बहुत था। जो काम किया है वह वर्तमान पुरुषार्थसे किया है। संस्कार अगर होता, तो जब उनकी पात्रता अजमेरमें बहुत चरमसीमा पर पहुँची, तभी किसी ग्रंथसे सम्यक्‌दर्शन हो जाता, जैसे गुरुदेवको समयसारसे हुआ वैसे ही। लेकिन ग्रंथ तो बहुत पढ़े थे। मूल दिगम्बर थे तो सत्शास्त्र तो मिले थे लेकिन (संस्कार नहीं थे तो आत्मज्ञान नहीं हुआ)।

मुमुक्षु :- सत्शास्त्र पढ़े होंगे लेकिन जिस चीज़की खोज थी, शांतिकी (वह नहीं मिली ?)

पूज्य भाईश्री :- (लेकिन) जब संस्कार होता है तो सत्शास्त्रसे भी पता चल जाता है। और संस्कार नहीं होता है तो प्रगट सत्पुरुष के बिना देशनालब्धि नहीं मिलती। जैसे श्रीमद्‌जी हैं, गुरुदेव हैं उनको समयसार मिल गया, श्रीमद्‌जीको भी समयसार मिल गया, गुरुदेवको भी समयसार मिल गया। उनको (सोगानीजीको) तो मिला था फिर भी प्राप्ति नहीं हुई और गुरुदेव मिले (तब) प्राप्ति हुई। ऐसा Case (किस्सा) बना।

उस परसे यह भी मुमुक्षुओंके लिये सबक सीखने योग्य है कि धर्मात्माके समागममें पूर्वयोजित बात कहनेकी कृत्रिमता और असरलता नहीं होनी चाहिये। यह ६२८ हुआ।

यह (भव) तो मुसाफ़िरी है। अब तो आखिरी मुसाफिरी है।

प्रवचन - १९ दि. २७-१२-१९९२ - वचनामृत-६४०

`**यह (भव) तो मुसाफिरी है। अब तो आखिरी मुसाफिरी है।**' ठीक !

मुमुक्षु :- कितनी दृढ़ता थी !!

पूज्य भाईश्री :- बहुत दृढ़ता थी। बहुत दृढ़ता क्या (कहे अरे !) ऐसे जो एकावतारी पुरुष होते हैं उनका पुरुषार्थ ऐसा होता है कि इस भवमें ही मैं मेरे कामको पूरा कर लूँ। दूसरा भव भी क्यों ? इसका यही कारण है कि, जब मेरे स्वरूपमें मेरी एकाग्रता होती है, हो सकती है और ये स्ववश परिणाम हैं - परवश परिणाम नहीं हैं, स्वाधीन परिणमन है, तो मैं क्यों पूर्णरूपसे स्थिर नहीं रह पाऊँ ? (इसलिये) उनका प्रयास तो पूर्ण होनेका ही रहता है। पूर्णताकी भावना तो शुरूआतसे है, और पुरुषार्थ भी ऐसा चलता है। फिर भी वस्तुव्यवस्था तो मिटती नहीं है या बदलती नहीं है तो (पुरुषार्थमें) कुछ कमी रह जाती है तो एक भव बीचमें देवलोकका हो जाता है। उतनी बात है। लेकिन इतना पुरुषार्थ ज़ोरसे चलता है कि, वे पूरा करनेकी तैयारीमें आते हैं। फिर भी एक भव रह जाता है तो इसकी कोई गिनती नहीं करनी चाहिये।

मुमुक्षु :- गुरुदेवश्रीने एकभवतारीपना मान्य किया लेकिन उन्होंने खुदने भी इस वचनामृतमें अपनी घोषणा की है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ ! ठीक है। सही बात है।

मुमुक्षु :- देवगति होती है वह सागरों के आयुष्य की होती है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, दो से चार सागर तक (की आयुष्य स्थितिमें) जाते हैं। अभी इस कालके सम्यक्‌दृष्टि जो वैमानिक देवमें जाते हैं उनकी (आयु) स्थिति कम से कम दो सागरकी और अधिक से अधिक तीन-चार सागरकी रहती है। गृहस्थको तो थोड़ा अशुभ भी रहता है। गृहस्थको इतना शुभ परिणाम तीव्र नहीं आता है और अशुभका भी बीचमें योग रहता है तो इनका अघातिका बंध उतना लंबा नहीं पड़ता जितना शुभमें रहनेवालेको पड़ता है। उतना फर्क पड़ता है। शुभ बढ़नेसे अघातिकी स्थिति भी लंबी पड़ जाती है और बीचमें अशुभ आ जानेसे अघातिकी स्थिति कम हो जाती है। अब देखिये ! (गृहस्थीमें रहनेसे) क्या नुकसान हुआ ? नुकसान हुआ कि लाभ हुआ ? अशुभ से लाभ हो सकता है क्या ? यह गणित ही दूसरी जातिका है। यह तो सब सहज है। शुभ भी सहज (और) अशुभ भी सहज। कोई ज्ञानी कलकी चिंता कभी करते नहीं हैं। वे तो वर्तमान पुरुषार्थमें लगे हुए हैं। इतना लगे हुए हैं, इतना लगे हुए हैं कि, उनको कलकी सोचनेकी फ़ुरसत ही नहीं है, समझो ! ऐसा अपने वर्तमान पुरुषार्थमें लगे रहते हैं ! फिर जो होना है सो होता है और पर्याय जिस कालमें जो होनेवाली है वह होकर रहेगी - इस सिद्धांतको वे अच्छी तरह जानते हैं, मानते हैं, स्वीकार करते हैं। (इसलिये) कोई पर्यायमें उलटफेर, करना, वह दृष्टि ही मिथ्या है। (यह बात) अच्छी तरह जानते हैं इसलिए ऐसा विकल्प उनको आता नहीं है। यह तो सहज लग गया कि `**यह (भव) तो मुसाफरी है। अब तो आखिरी मुसाफिरी है।**' ऐसा जो (सहज) लग गया सो बता दिया !

गुरुदेवश्रीके लिए मेरे हृदयमें क्या (महिमा) **है ? - सो चीर कर कैसे बतलाऊँ ? ... बस ! यह तो मेरा ज्ञान ही जानता है।**

प्रवचन - २० दि. २७-१२-१९९२ - वचनामृत-६४१

`**गुरुदेवश्रीके लिए मेरे हृदयमें क्या (महिमा) है ?**' - यानी मुझे गुरुदेवकी कितनी महिमा है, कितनी भक्ति है, `**-सो चीर कर कैसे बतलाऊँ ?**' कोई खोलकरके बता तो नहीं सकते। `**बस ! यह तो मेरा ज्ञान ही जानता है।**' माने बहुत भक्ति थी। अनंतकालकी विटंबनाएँ खत्म होनेका एक अपूर्व निमित्त मिला, तो उनकी भक्तिकी भी कोई हद रहती नहीं है। बेहद भक्ति थी। अनंत तीर्थंकरोंसे भी मेरे लिये तो गुरुदेवश्री अधिक हैं ! - एक तीर्थंकर नहीं, लाख-करोड़-अरब तीर्थंकर नहीं (परंतु) अनंत तीर्थंकरोंसे भी अधिक हैं ! इतनी भक्ति आ गयी। ऐसा सहज होता है, तो उसको कैसे बतायें ? यह कोई बतानेकी या दिखानेकी चीज़ नहीं है।

मुमुक्षु :- Compare करते वक्त गुणस्थान नहीं देखा ?

पूज्य भाईश्री :- नहीं, गुणस्थानकी गिनती नहीं होती। क्या (कहा) ? जैसे कोई दानवीर होता है, कि जिसको दानवीर कहनेमें आता है, वह दान देते वक्त गिनती करता है क्या ? कि इतना दे दूँगा तो मेरे पास कितना रह जायेगा ? ऐसा गिनना तो लोभीका

काम रहता है। किसका काम रहता है ? कि ऐसी गिनती करना यह लोभीका काम रहता है कि, मैं इतना दे दूँ फिर मेरी जो अनुकूलताएँ हैं वह कैसे बनेगी ? फिर मैं प्रतिकूलतामें आ जाऊँगा तो क्या होगा ? यह दानवीरको देते वक्त विकल्प ही नहीं आता। ऐसे भक्तिवंतको गिनतीका विकल्प नहीं आता कि ये कितने गुणस्थानमें हैं ? यह गिनती भक्तिमें कभी होती नहीं है। यानी भक्तिके भाव कोई तोल-जोखसे नहीं होता कि, जितना गुणस्थान इतना मैं तोल करूँ ! ज्यादा गुणस्थान हो तो ज्यादा तोल करूँ, कम गुणस्थान हो तो कम तोल करूँ। यह कोई करणानुयोगका विषय थोड़ी है ? भक्ति कोई करणानुयोगका विषय है या बहुमानका विषय है ? यह बहुमानका विषय है। और अपना हित हुआ वह कितना हुआ ? अनंत हुआ। पूरा - अनंत हुआ न ! तो जब हित पूरा हो और भक्ति हम थोड़ी काट-छाँटके करें, ये कोई बात वाजिब है क्या ? बात ही बराबर नहीं है। जब हित पूरा होता है तो भक्ति भी पूरी आयेगी। सीधी बात है।

महाराजसाहबने दुष्कालमें सुकाल कर दिया है - यह क्या कम महत्त्वकी बात है ? इस कालमें जहाँ ऐसी बात सुननेको नहीं मिलती, वहाँ (तत्त्वकी) **मुसलाधार वर्षा कर दी है।**

(**द्रव्यदृष्टिप्रकाश - ५०९**)

(बाह्य कार्योंमें) **मुझे इतनी थकान लगती है कि कितने ही दिनोंका एकान्त मिले फिर भी थकान न उतरे। इतनी एकांत प्रियता है।** (अंगत)

प्रवचन - २१ दि. २७-१२-१९९२ - वचनामृत-६४३

'**(बाह्य कार्योंमें) मुझे इतनी थकान लगती है कि कितने ही दिनोंका एकांत मिले फिर भी थकान न उतरे। इतनी एकांत प्रियता है।**'

मुमुक्षु :- बाह्यकार्य कौनसे ?

पूज्य भाईश्री :- बाह्यकार्य माने उदयके ये जो कार्य होते हैं।

मुमुक्षु :- उसमें जो विकल्प आते हैं उन्हें बाह्य कार्य माना है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, वही बाह्य कार्य है। उदयके साथ जो भी परिणाम चलते हैं वे तो विकल्पात्मक होते हैं। उसमें बहुत थकान आती है, ऐसा कहते हैं। उतना थक जाता हूँ, बहुत कंटाला (ऊब) आता है कि, कितना भी एकांत मिले (उतना कम पड़े)। निवृत्ति बहुत चाहते थे। प्रवृत्तिमें थे, बहुत निवृत्ति चाहते थे। निवृत्तिके लिये बहुत छटपटाते थे, फिर भी निवृत्ति नहीं मिल रही थी तो ऐसा उनको लगता था कि अगर मुझे निवृत्ति मिल गयी, एकांत मिले तो मैं थकूँ ही नहीं, एकांतमें ही रह जाऊँ। कितना भी एकांत

मिले, कितना भी समय मिले। मुझे तो बाह्यकार्यमें कोई आना जचे ही नहीं।

मुमुक्षु :- एक जगह ऐसा कुछ लिया है कि नींदमें थकान बहुत लगती है, इसमें आया है। तो क्या ऐसी स्थिति हो जाती है ? लोग तो कहते हैं नींदसे थकान उतरती है !

पूज्य भाईश्री :- हाँ, वह तो सही बात है। वहाँ स्पष्टीकरण दिया है कि जिनके विकल्प बहुत चलते हैं उनको नींदमें विकल्पकी थकान उतरकर थोड़ी शांति मिलती है। जिसको नींदमें शांति मिलती है या थकान उतर जाती है कि, भाई ! आराम कर लिया, फ्रेश हो गये। तो इसका मतलब क्या हुआ ? कि उसको विकल्प बहुत चलते हैं। (इसलिये) विकल्पकी थकान उतरनेमें यह जो नींद है वह एक साधन बनती है। लेकिन जिनको इतने विकल्प नहीं चलते हैं उनको नींदमें भी थकान आती है, ऐसी बात है। इसलिये तो मुनिराजकी नींद कहाँ रहती है। मुनिराज अगर नींद लेवें तो भी रातको १२ बजेके बाद (लेते हैं), इसके पहले तो कभी नहीं। आधा घंटा, पौन घंटा, वह भी पूरी नींदमें नहीं, आछी (हलकीसी) निद्रामें रहते हैं। एक करवट पर सोये रहते हैं। थोड़ी सी नींद आती है। (लेकिन) जागृति बहुत रहती है। फिर वे ध्यानमें बैठ जाते हैं। १२ बजेके पहले तो ध्यानमें रहते ही हैं, नींद लेते ही नहीं, बादमें भी उतनी नींद नहीं आती। नींदमें भी थकान लगती है। हाँ ! नींदमें भी थकान लगती है - सही बात है। लेकिन उसका अंदाज सामान्य जीवको, सामान्य प्राणीको नहीं आता। मुनिदशाका अंदाज सामान्य जीवको नहीं आता कि, मुनिदशा कैसी होती है ! बहुत अलौकिकदशा है कि, जिसमें नींदमें आराम नहीं है (अपितु) नींदमें थकान है, यह बात है। और यह तीव्रदशा जिसकी होती

है, आत्मरसकी तीव्रदशा जिसकी होती है, उसीकी शुरूआत यहाँसे हो जाती है। साधकपनेमें यह शुरूआत हो जाती है।

मुमुक्षु :- उनका सोनेका भी कम होता होगा ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, सोनेका कम था। बहुत कम सोते थे! लिखा है एक जगह कि, वैसे तो दो घंटा नींद आती नहीं और फिर भी हमारा तो जो चलता है, उसमें थोड़ीसी नींद आ गई तो ऐसा लगता है, अरे ! क्या नींद आ गई। तो वह क्या सूचित करता है ? कि नींद कम हो गई थी।

मुमुक्षु :- ४८७ (में है।)

पूज्य भाईश्री :- ठीक है। पत्रांक:१६८, `अंगत' नीचे लिखा है न ! अपनी अंगत बात की है।

`रात्रिमें निद्रा सहज कम हो जाती है, क्योंकि आराम तो सच्चे स्वरूपमें ही है;...'** क्या (कहा) ? यह सिद्धपदकी स्तुति है न ! `समाधान सर्वांग सहज अभिराम है।' आराम...! आरामका स्थान तो स्वरूपमें है। आरामका स्थान निद्रा नहीं है और सोनेका जो पलंग-पथारी है, वह भी नहीं है। `(**आराम तो**) **सच्चे स्वरूपमें ही है; तो उस तरफकी एकाग्रतामें निद्रा तो सहज ही कम हो जाती है।**' है ? `जिसको सारे दिन इधर-उधरके विकल्पोंकी थकान बहुत होती है उसको आरामके लिए निद्रा विशेष आती है।**' ठीक ? यह तो सबको अनुभवसिद्ध है। `**लेकिन जिसको इधर-उधर करनेका कर्तृत्व ही टूट गया है उसे थकान न होनेसे निद्रा भी कम आती है। जैसे मुनिराजोंको अंतरकी जागृतिके कारण विकल्पकी थकान नहीं है तो निद्रा भी कम है।**' दृष्टांत भी लिया है। `**मुझे तो** (**सोते वक्त**) **पहले दो घंटे नींद नहीं आती है, फिर थोड़ी नींद आजाए तो जगते ही ऐसा लगता है...**' थोड़ी (नींद) आजाए (तो ऐसा लगता

है) `**कि - क्या नींद आगयी थी ! पीछे नींद उड़ जाती है और यही** (**स्वरूप-घोलन**) **चलता रहता है।**' अपना परिणमन बताया है। बताया (है) कि नहीं ? नींदमें आराम मिले, यह कल्पना है। क्या है ? नींदमें आराम मिलता है, यह वास्तवमें एक कल्पना है। आरामका धाम जो अपनी आत्मा है, शांत...शांत...शांतरसका पिंड है। उसको छोड़करके और दूसरी जगह आरामकी कल्पना करना वह एक भ्रांतिके सिवा और कुछ नहीं है - ऐसी परिस्थिति है।

गुरुदेवने जो एकावतारीपना घोषित किया, वह वास्तवमें ये सब बातें इनकी गिनतीमें हैं। गुरुदेवके ज्ञानमें यह सब बात गिनतीमें आ गयी हैं कि, कितनी तीव्र पुरुषार्थकी दशा थी ! ऐसा बोले हैं कि, हमारे तो चार भव हैं, ऐसा करके बोलते थे। वे अपनेसे Comparision करते थे ! हमारे तो चार भव हैं, उनको नहीं (है)।

मुमुक्षु :- एक ही भवमें चले जायेंगे !

पूज्य भाईश्री :- एक ही भवमें चले जायेंगे। देवलोकमें गये हैं वहाँसे निकलकरके `**झपट**' करेंगे। वह हमारा काठियावाड़ी शब्द है - `झपट'। झपट माने क्या ? जैसे बाज़ पक्षी झपटा मारता है न ! ऐसा करेंगे। उनका पुरुषार्थ इतना तीव्र है।

मुमुक्षु :- वारंवार (उनकी) अधिकता बताते थे।

पूज्य भाईश्री :- हाँ !

मुमुक्षु :- वहाँ वैमानिकदेवमें भी स्वरूपका घोलन चलता होगा ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, अच्छी तरह चले। क्यों नहीं चले ? वहाँ भी चलता है। समाधिमरणमें जाते हैं, आत्मजागृतिसे देह त्याग करते हैं, वे नया देहधारण करनेमें भी आत्मजागृतिके साथ ही नया देहधारण करते हैं। वहाँ जागृति मिटती नहीं है। वहाँ जागृति बहुत अच्छी रहती है। बहुत अच्छी जागृति रह सकती है, बराबर रह सकती

है। आत्मजागृति कोई (भी) अनुकूलता-प्रतिकूलताके निमित्तसे परेकी चीज़ है। इसे कोई संबंध नहीं, कोई लेना-देना नहीं।

मुमुक्षु :- जैसे क्षायिक सम्यक्त्व तो था नहीं तो सम्यक्त्व छूट भी सकता है !

पूज्य भाईश्री :- छूट सकता है लेकिन छूटे उसका छूटे। जिसका छूटे इसका छूटे। पूज्य बहिनश्रीने वह बताया था कि, हमलोगोंका क्षयोपशमिक सम्यक्दर्शन होनेके बावजूद भी छूटनेवाला नहीं है। क्या (कहा) ? हमारा समकित छूटनेवाला नहीं है। उन्होंने एक नया विशेषण दिया था। गुरुदेव इस बातको दोहराते थे कि ये क्षयोपशम पलटकरके क्षायिकमें चला जायेगा। तो उसे `जोडणी समकित' बोले। क्या (बोले) ? नया विशेषण दिया। शास्त्रमें ऐसी बात नहीं मिले। कई बातें जो ज्ञानीके मुखसे निकलती हैं, शास्त्रमें मिले ही नहीं। ऐसी बात है। जोडणी समकित बोले, कि जुड़ जायेगा। वह क्षायिकमें जुड़ जायेगा। यह चला जानेवाला नहीं है, ऐसी बात है। और (जिन्हें एक भव बाकी है उनको) एक भवमें तो क्यों चला जाये ? वे तो तीव्र पुरुषार्थमें रहते (हैं)।

रुचि अपने विषय में बाधक पदार्थों को फटा-फट हटा देती है, उनमें रुकती नहीं; (सीधे) अपने विषय को ही ग्रहण कर लेती है। (द्रव्यदृष्टिप्रकाश -४५६)

(शामका समय) (प्रस्ताव :) **आप हमारे साथ गुरुदेवश्रीके पास चलेंगे ?**

उत्तर :- आप जाईए ! (हृदय पर हाथ रख करके बोले :) **मैंने तो गुरुदेवको यहाँ बैठा लिया है।** (बादमें आप ध्यानमें बैठ गये)।

प्रवचन - २२ दि. २७-१२-१९९२ - वचनामृत-६४४

`(**शामका समय**) (**प्रस्तावः**) **आप हमारे साथ गुरुदेवश्रीके पास चलेंगे ?**' शामको गुरुदेव बैठते थे न ! खाना खाकर फिर थोड़ा घूमते थे, बाहर बैठते थे। तो वे बोले कि, `**आप जाईए** ! (**हृदय पर हाथ रख करके बोले** :) **मैंने तो गुरुदेवको यहाँ बैठा लिया है।**' (अर्थात्) भावसे तो गुरुदेव मेरे हृदयमें हैं, फिर मुझे द्रव्यसे नजदीक जानेका अभी कोई विकल्प नहीं है। क्या (हुआ) था ? वे शामको खाना खाते (और) कभी नहीं भी खाते थे। उन दिनोंमें वे खाना नहीं भी खाते थे। फिर खाना खानेके समयके पहले-पहले चर्चा तो पूरी हो जाती थी। बहनोंको तो रसोई बनानी होती है, तो उन दिनोंमें तो खाना खानेके पहले, घंटा भर पहले ही सबकी चर्चामें से छुट्टी हो जाती। वे खाना खाये तो खाये, नहीं खाये तो फिर अपना कमरा बंद करके बैठ जाते थे। यह भी अंगत बात लिखी है। यह तो इनके जो परिणमनके जो विलक्षण प्रकारके चिह्न थे, वह दिखानेके लिये जो बात सहजरूपसे चली थी वह संकलित की गई है।

प्रश्न :- अभी आप कौनसे शास्त्रका वांचन करते हो ?

उत्तर :- शास्त्रवांचनकी खास आदत नहीं रही। और मुझे क्षयोपशम भी बढ़ाना नहीं है।

प्रवचन - २३ दि. २७-१२-१९९२ - वचनामृत-६४५

`**प्रश्न :- अभी आप कौनसे शास्त्रका वांचन करते हो ?**' आप जिस ढंगसे बात करते हो, यह पद्धति तो नियमसारकी दिखती है। पर्याय भी परद्रव्य है, परभाव है और हेय है। क्षायिक पर्याय भी `परद्रव्यम् परभावम् हेयम् इति।' (ऐसा नियमसारमें आता है) ! तो कहीं शास्त्रस्वाध्याय चलता हो, इसका असर रह गया हो, और चर्चामें उस असरसे कोई बात चलती है क्या ? पूछनेवालेके मनमें जो अभिप्राय था वह यह अभिप्राय था कि, आप आजकल कौनसे शास्त्रका स्वाध्याय करते हो, वांचन करते हो ? तो बताया कि, `**शास्त्रवांचनकी खास आदत नहीं रही।**' और वे शास्त्र तो बहुत कम पढ़ते थे। वे कुछ दिन कोई शास्त्र हाथमें लेते थे। पिछले दिनोंको छोड़करके बीचमें शास्त्र पढ़नेकी उनकी आदत ही बिलकुल छूट गई थी।

पिछले दिनों(में), कलकत्तामें कोई चालीस दिन स्वाध्याय किया था, उन दिनों वे घर पर भी शास्त्र पढ़ने लगे थे। कई साल

तक शास्त्र तो ऐसे ही पड़े रहें, (इसलिये) उस पर तो धूल भी लग गई थी। फिर वे सब साफ कर-करके पढ़ने लगे। ऐसा क्यों ? इतने दिन नहीं पढ़ा अब क्यों पढ़नेका चालू किया ? तो कहा, `क्या करें ? लोग शास्त्रमेंसे पूछते हैं, स्वाध्याय करनेमें प्रश्न तो शास्त्रमेंसे आता है, तो कहाँ कौनसी अपेक्षा चली है, आचार्योंने कहाँ किस बातको की है, किस प्रकारसे उत्तर दिया है, किस प्रकारसे बात चली है, आगे-पीछे देखना पड़ता है।' माने पिछले दिनोंमें फिरसे उन्होंने शास्त्र पढ़ा। बीचमें बिलकुल शास्त्र पढ़नेकी आदत ही छूट गई थी। निवृत्ति मिले तो अपने ध्यानमें बैठ जावे। निवृत्तिका उपयोग शास्त्र पढ़नेमें वे नहीं करते थे। बहुत साल ऐसे चले गये !

पूछनेवालेको तो मनमें यह अभिप्राय था कि, ये दृष्टिप्रधान जो बातें कर रहे हैं तो कोई शास्त्रका असर रह गया है। जो (शास्त्र) आज-कल पढ़ते होंगे उसके असरके नीचे यह बात चलती होगी। तो उत्तर ही कोई दूसरा मिला कि, एक भी शास्त्र आजकल पढ़नेका नहीं बन रहा है। `**और मुझे क्षयोपशम भी बढ़ाना नहीं है।**' यह जरूरतसे ज्यादा उत्तर दिया है। क्या (कहा) ? बहुत सोचसमझकर यह उत्तर दिया है। क्योंकि आप शास्त्र क्यों नहीं पढ़ते हो ? यह प्रश्न नहीं किया है। क्योंकि वे तो शास्त्र पढ़ते हैं ऐसा समझकरके ही प्रश्नकारने प्रश्न किया है। प्रश्नकारको यह पता नहीं है कि, ये शास्त्र ही नहीं पढ़ते हैं। तो `मैं शास्त्र नहीं पढ़ता हूँ' - (इतने उत्तरसे) बात पूरी हो गई। लेकिन क्यों नहीं पढ़ता हूँ ? यह जरूरतसे ज्यादा उत्तर दे दिया है और उसमें कुछ मर्म है। वह मर्म ऐसा है कि, सामान्यतया मुमुक्षु जब शास्त्र अधिक पढ़ता है; अधिक माने जरूरतसे भी अधिक पढ़ता है (तो पढ़नेके पीछे कोई अन्य हेतु रहा है)। क्या (कहा) ?

मुमुक्षु :- क्या पढ़नेकी कोई सीमा है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, पढ़नेकी सीमा है। क्या ? पढ़नेकी भी कुछ सीमा है। कौनसी सीमा है ? कि मुमुक्षुको (ऐसा होना) चाहिये कि जितना अपना प्रयोजन है उतना पढ़े। कितना पढ़ना चाहिये ? कि जितना अपना प्रयोजन जहाँ है, जैसा है, उस विषयको स्वाध्यायमें पढ़ना चाहिये, शास्त्रमें (से) पढ़ना चाहिये। सारा शास्त्र पढ़नेकी कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन अंदरमें थोड़ा लोभ रहता है, क्या रहता है ? लोभ रहता है कि, थोड़ा क्षयोपशम बढ़ता है इससे। क्या होता है ? शास्त्र अधिक पढ़नेसे क्षयोपशम भी अधिक बढ़ता है, यह सूक्ष्म लोभ रहता है। थोड़ी तलाश कर लेना ! ज्यादा शास्त्र पढ़नेवालेको यह रहता है। यह उनको नुकसानका कारण है ! क्षयोपशम बढ़ानेका जो भाव है वह बाह्यदृष्टिके अनुसार आता है। अंतर्दृष्टिवालेको क्षयोपशम बढ़ानेका भाव नहीं आता। उसको तो स्वरूपकी एकाग्रता चाहिये ! क्षयोपशम नहीं बढ़ाना है। इसलिये मार्मिकरूपसे यह बात उत्तरसे भी ज्यादा - अधिक बता दी है कि, शास्त्र पढ़नेकी आदत नहीं और मुझे क्षयोपशम भी बढ़ाना नहीं है। इसलिये शास्त्र पढ़नेवालेको क्षयोपशम बढ़ाना नहीं चाहिये या क्षयोपशम बढ़ानेके दृष्टिकोणसे शास्त्र अध्ययन होना नहीं चाहिये, ऐसी बात है।

मुमुक्षु :- अपने हितकी बात कहाँ लिखी है, इसके लिये तो पढ़ना ही पड़ता है !

पूज्य भाईश्री :- इसमें ऐसा है कि, पहले नया कोई शास्त्र पढ़नेमें ले तो आदिसे अंत तक - आद्यंत पढ़ लेवें। फिर उस वक्त खयालमें - लक्ष्यमें रख लेवें कि मेरे हितकी बात कहाँ-कहाँ आती है ? यह नोट करते जाये या कोई इसकी निशानी करते जाये कि, मुझे

लागू पड़नेवाली बात इस शास्त्रमें कहाँ है ? कितनी है ? कैसी-कैसी है ? फिर उस पर अपना जितना भी उद्यम है, पुरुषार्थ है, वह वहाँ लगाना चाहिए। अपना प्रयोजन छोड़करके अप्रयोजनभूत बातोंमें, (चाहे) शास्त्रकी भी होवे तो उलझना नहीं चाहिये। इसमें नुकसान है, ऐसी बात है। क्या नुकसान है ? कि अप्रयोजनभूत बातका महत्त्व रहनेसे, इसकी महत्ता आयी जब तो इसमें समय गुज़ारते हैं, तो इसकी महत्ता आनेसे प्रयोजनभूत विषय पर हमारा लक्ष्य नहीं जायेगा - यह नुकसान हो जायेगा। प्रयोजनकी जो-जो बात आयेगी, वहाँ ऊपरसे चले जायेंगे। ध्यान नहीं जायेगा।

मुमुक्षु :- द्रव्यानुयोगके जो शास्त्र हैं उनमें तो सब प्रयोजनभूत बातें ही हैं, अप्रयोजनकी बात है ही नहीं। जैसे पूज्य गुरुदेवश्रीने भी सभामें समयसारजी पढ़ा था।

पूज्य भाईश्री :- ऐसे सामूहिक बात अलग होती है, व्यक्तिगत बात अलग होती है। सामूहिक स्वाध्यायमें ऐसी काट-छाँट नहीं हो सकती। उसमें तो आद्यंत पढ़ना पड़ता है। लेकिन जब अपना एकान्तमें स्वाध्याय होवे तब तो प्रयोजनभूत बात पर ही एकाग्र होना, वहाँ ही अपनी शक्तिका प्रयोग ज्यादा करना - यह होना चाहिये। अब आपका प्रश्न रहा कि, सारा द्रव्यानुयोग प्रयोजनभूत है, तो सिद्धांतकी समझदारी के लिये तो प्रयोजनभूत है। द्रव्यानुयोगके जो सिद्धांत हैं, उन सिद्धांतके हिसाबसे तो सारा द्रव्यानुयोग प्रयोजनभूत है लेकिन जब सिद्धांत हमारी समझमें आ जाता है तब, अब हमको हमारी योग्यतामें कौनसी प्रयोजनभूत बात है, उतनी बातको अलग छाँटनी चाहिये।

मुमुक्षु :- द्रव्यानुयोगमेंसे ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, उसमें भी। हमारी योग्यता, सामान्य योग्यताके

अनुकूल हमें कौन-कौनसी बातें प्रयोजनमें लागू पड़ती हैं ? हमारे प्रयोजनमें काममें आनेवाली हैं, उतनी बातें हमें अलग छाँटनी चाहिये। और उसमें भी वर्तमानमें हमारा जो परिणमन चलता है उसमें कौनसी बात प्रयोजनमें आती है, वहाँ तक प्रयोजनकी सूक्ष्म और तीक्ष्ण दृष्टि चलनी चाहिए। जब ही कुछ काम होता है तो होता है, ऐसी बात है। ऐसी सूक्ष्मदृष्टि - तीक्ष्णदृष्टि प्रयोजनकी नहीं होती है तो फिर वैसे ही सब बातें मोटे-मोटे रूपमें चल जाती हैं और कहाँ प्रयोजन है, कहाँ अप्रयोजन है कुछ ध्यानमें नहीं रहता, और समय और आयु चला जाता है। ऐसा बनता है।

यह प्रयोजनका विषय गुरुदेवने मोक्षमार्गप्रकाशकके प्रवचनोमें लिया है और वह सब बातें अपने `परमागमसार' में आयी हैं। प्रयोजनवाली बातें परमागमसारमें जो हैं, नोट करना चाहो तो कर लो ! ९३३, ९३४, ९३५, ९३७ ये चार बोल प्रयोजनके विषयमें हैं। जो मोक्षमार्गप्रकाशकके प्रवचनोंमेंसे लिये हुए हैं।

यह एक महत्वपूर्ण विषय है। उन्होंने जो उतनी बात कह दी कि, मुझे क्षयोपशम भी बढ़ाना नहीं है, एक इस बात पर (उनकी) विचक्षणता (प्रदर्शित होती है)। थोड़ा ऐसा लगता है कि (उनकी) बात कुछ और है। यहाँ तक रखते हैं।

श्री सोगानीजीके संबंधमें... (२९-७-१९९१ के प्रवचनमेंसे)

मुमुक्षु :- गुरुदेवने उनके बारेमें एकावतारी हैं ऐसा कहा लेकिन उनको खुदको पता लग गया हो ऐसा उल्लेख कहीं आता है ? कि जैसे मैं एकावतारी हूँ !

पूज्य भाईश्री :- उनको खुदको खयालमें नहीं आया, ऐसा खयाल गुरुदेवश्रीको आया है। वे खुद तो इसी भवमें पूर्णता प्राप्तिके प्रयत्नमें लगे हुए थे। हमलोगोंको विशेष परिचय था तो ऐसा लगता था कि, अगर आयुष्य होता तो शायद ऊपरके गुणस्थानमें आ जाते (यानी कि) मुनिदशामें (आ जाते!) बहुत पुरुषार्थ था ! (अगर ऐसा होता) तो इस कालमें भावलिंगी मुनिके दर्शन हो जाते !! लेकिन आयुष्य भी न था और वस्तुतः जो बनना होता है (वही बनता है) वस्तुस्वरूपमें क्या फ़र्क पड़ सकता है ? लेकिन मुनिदशा ऐसे जीव प्राप्त करते हैं, इतना तीखा पुरुषार्थ था ! बहुत तीखा पुरुषार्थ था !!

मुमुक्षु :- उनका अंगत लिखा हुआ कुछ है ?

पूज्य भाईश्री :- कुछ नहीं मिला है। कोई बात नहीं मिली। एक तो स्वयं किसीके संगमें रहनेके मतमें नहीं थे। किसी साधर्मीके संगमें रहनेके भी मतमें नहीं थे। और गुप्त रहकर अपना काम कर लेना, कोई न जाने वैसे गुप्त रहकर अपना काम कर लेना, इसके अलावा उनका वर्तमान परिस्थितिमें दूसरा कोई अभिप्राय नहीं था। (बाह्य) प्रसिद्धिसे आत्माको क्या लाभ है ? नुकसानका कारण

है। नुकसान करे तो निमित्त होता है, न करे तो दूसरी बात है। परंतु जितना मर्यादित समय है, उस मर्यादित समयको एकान्तमें बैठकर ध्यानमें - आत्मध्यानमें विशेषरूपसे लगाना - यह उनकी मुख्य वृत्ति थी। इस वजहसे शास्त्र स्वाध्याय भी कम था। सत्संग तो नहीं था परंतु घरमें शास्त्र स्वाध्याय भी कम था, क्योंकि पुरुषार्थकी कला हस्तगत् थी। इसलिये जितना समय मिले उतना ध्यानमें बैठ जाते। दिन हो चाहे रात हो जितना समय मिले उतना (ध्यानमें बैठ जाते।) उस प्रकारसे काममें लगे रहते।

(आगे पत्रांक - १४में) नहीं आया ! एक ही बारमें अथाहका थाह ले लेना, पन्ना १३ `**पर वाह रे पुरुषार्थ ! तूने साथ रही उग्रताका संकल्प किया, मानो अथाहकी थाह सदैवके लिये एकबारमें ही पूरी ले लेगा।**' अथाह माने जिसके नीचे कोई तलवा न हो, मर्यादा न हो, सीमा न हो। `भले ही सीमा न हो, पूरा कर दूँगा' एक ही बारमें पूरा कर लेना है ! खुदके पुरुषार्थका प्रकार उनको ऐसा लगता था। वस्तुस्वरूप अन्यथा नहीं होता कि अभी पूर्णता प्राप्त हो जाये। लेकिन वे तो उस बातको गौण करके ही लग गये थे - श्रीमद्‌जीकी तरह ! इसलिये एकावतारीपना आया, गुरुदेवको ज्ञानमें ऐसा क्यों भासित हुआ ? (उसका कारण यह है।)

(गुरुदेवश्रीने) बहुत गंभीरतासे यह बात कही थी। आगे-पीछे कोई चर्चा नहीं चलती थी। मौन होकर चक्कर लगा रहे थे। सुबह १० बजे आहार लेनेके पश्चात् स्वाध्याय मंदिरके हॉलमें थोड़े चक्कर लगाकर फिर अपने रूममें चले जाते। उस दिन सब मौन थे। कोई बात-चीत नहीं चलती थी। इतनेमें (अचानक) चलते-चलते खड़े रह गये। यहाँसे (भुजा) पकड़कर (कहा था)। भुजासे पकड़ते थे, जब कोई खास बात करनी हो तो हाथ पकड़कर बात करते थे,

तो वैसे यहाँसे (हाथ) पकड़ा (फिर कहा) `**देखो ! यह अंदरसे आयी हुई बात है** !' बहुत गंभीरतासे (बोले) कि `**देखो ! ये अंदरसे आयी हुई बात है। ये सोगानी हैं न ! यहाँसे स्वर्गमें गये हैं, वहाँसे निकलकर झपट करेंगे।**' खास उनका काठियावाड़ी शब्द है। `**वहाँसे निकलकर झपट करेंगे, हमारे तो चार भव हैं। तीर्थंकरके भवमें तीर्थंकर अरिहंतको नमस्कार नहीं करते। दीक्षा लेते वक्त `णमो सिद्धाणं' ऐसा उच्चार जब हम करेंगे तब हमारे नमस्कार उनको पहुँचेंगे।** क्योंकि उस वक्त वे सिद्धालयमें पहुँच गये होंगे ! बहुत गंभीरतासे यह बात की थी। उनका (सोगानीजीके) पुरुषार्थका प्रकार कैसा था ! उसका परिमाण, माप जिसे कहते हैं, यह गुरुदेवके ज्ञानमें आया है। सीधी बात तो यह है।

मैं पहले तो सब जान लूँ...सुन लूँ...पीछे पुरुषार्थ करुँगा; तो पीछेवाला सदा पीछे ही पीछे रहेगा। वर्तमान इसी क्षणसे ही पुरुषार्थ करनेकी यह बात है - पहले अपने आत्माकी प्रभावना करनेकी बात है। (द्रव्यदृष्टिप्रकाश - ५२३)

पत्रांक - ३

अजमेर

३-७-१९५०

आत्मार्थी....प्रत्ये निहालचंद्रका धर्मस्नेह।

आपका कार्ड प्राप्त हुआ। आरंभमें ही सर्वत्र उपादेय, यथोचित विशेषणों द्वारा स्तुत्य गाढ़ आत्मसंवेदनरूपी आपका नमस्कार पढ़कर व आत्मस्वास्थ्यमें निरंतर वृद्धिकी भावना देखकर चित्त अत्यंत प्रसन्न हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्रीका मुमुक्षुगण सहित राजकोटके विहार कार्यका सुंदर धर्मप्रभावनापूर्वक पूर्ण होना जान कर इस बातकी प्रतीति होती है मानो नायक सहित सर्व संघका निश्चय प्रभावनारूपी कार्य भी शीघ्र व निर्विघ्न रीतिसे पूर्ण होनेवाला है। आपश्रीका निश्चित स्थान, सोनगढ़का आगमन इस बातका द्योतक होता है मानो हम सबकी परिणतिका त्रिलोकरूपी राजकोटका विहाररूपी भ्रमण समाप्त होकर निश्चित अविनाशी स्व स्थान - अमृतमयी चैतन्यलोक आत्मगढ़में आगमन हो रहा है, जहाँ कि सहज आनंदसे तरंगित सहज आत्मरमणरूपी विहार सादि अनंतकाल तक स्वाभाविक ही होता रहेगा।

पूर्व उदयके योगसे मैं आप जैसे पुण्यशालियोंकी तरह श्रीगुरुदेवके समीप रहकर उनके संगका, उनके वचनामृतका निरंतरलाभ नहीं ले सक रहा हूँ, इसका मुझे महान्-महान् खेद होता है। साथ ही उनके बोध द्वारा बोधित मुझे यह संतोष भी होता है कि निश्चयसे सत्गुरुदेव मुझसे दूर नहीं हैं - जहाँ मैं हूँ वहाँ ही मेरे गुरु हैं, अतः मैं मुझमें मेरे गुरुदेवको देखनेका सतत प्रयत्न करता रहता हूँ और जब-जब गाढ़ दर्शन होता है तब-तब अपूर्व-अपूर्व रसास्वादका लाभ लेता रहता हूँ, मानसिक विकल्परूपी भारसे हलका होता रहता हूँ, सहज ज्ञानघन स्वभावमें वृद्धि पाता रहता हूँ। सोनगढ़की चिन्मय, भव्य, दिव्यमूर्तिको अधिक समीप होकर गहन दृष्टिसे देखता रहता हूँ।

आशा करता हूँ कि जुलाई माहके अंत तक लगभग एक माहके लिये वहाँ रहनेको आ सकूँगा। आशा है वहाँ सर्व कुशल होंगे। आपका वहाँका पत्र कभी-कभी आनेसे एक प्रकारका संबंध वहाँका बने रहनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त है, यह मेरे पुण्यका योग है, ऐसा मानता हूँ। यहाँ योग्य कार्य लिखें।

धर्मस्नेही

निहालचंद्र सोगानी

प्रवचन - १ दि. ०४-०७-१९९१ - पत्रांक-३

१९५०में अजमेरसे लिखा गया पत्र है। `**आपका कार्ड प्राप्त हुआ।**' पोस्टकार्ड मिला होगा। `**आरम्भमें ही सर्वत्र उपादेय, यथोचित विशेषणों द्वारा स्तुत्य गाढ़ आत्मसंवेदनरूपी आपका नमस्कार पढ़कर व आत्मस्वास्थ्यमें निरंतर वृद्धिकी भावना देखकर चित्त अत्यंत प्रसन्न हुआ।**' यह पत्र एक मुमुक्षुभाई पर लिखा गया है। पत्रके आरंभमें (अर्थात् जो) पोस्टकार्ड मिला है उसमें, यथोचित विशेषणों द्वारा आत्मसंवेदनरूपी नमस्कार जो किया है इससे मुझे प्रसन्नता हुई है। (और) आत्मस्वास्थ्यमें निरंतर वृद्धिकी भावना देखकर चित्त प्रसन्न हुआ है। (ऐसा कहते हैं)।

`**पूज्य गुरुदेवश्रीका मुमुक्षुगण सहित राजकोटके विहार कार्यका सुंदर धर्मप्रभावनापूर्वक पूर्ण होना जान कर इस बातकी प्रतीति होती है मानो नायक सहित सर्व संघका निश्चय प्रभावनारूपी कार्य भी शीघ्र व निर्विघ्न रीतिसे पूर्ण होनेवाला है।**' व्यवहार प्रभावना परसे निश्चय प्रभावनाकी भावना भायी है। उस जमानेमें सत्पुरुषकी विद्यमानताका क्या असर होता है, इसका विचार किया जाये तो मुमुक्षु-मुमुक्षु जब भी मिलते या मुमुक्षु-मुमुक्षुको पत्र लिखते तो उसमें निमित्तभूत जो गुरुदेव थे उनकी किसी न किसी बहाने महिमा संबंधित चर्चा चलती थी। इनके प्रवचनके बहाने, विहारके बहाने, कोई प्रसंग बना हो तो इसके बहाने (चर्चा चलती थी)। ऐसे माहौलका अनुभव तो बरसों तक किया है। अतः कोई पत्र लिखना होवे तो भी उसमें

गुरुदेवश्रीकी महिमा सूचक बातें आपसमें करते हो, मिले तब भी गुरुदेवकी महिमाकी बात चलती रहती। इसका अर्थ यह हुआ कि, ऐसे महापुरुषकी विद्यमानता ही मुमुक्षुओंके लिए सहजमात्रमें इनकी महिमाका निमित्त (बनती) है। और वह मुमुक्षुजीवके लिए दर्शनमोह हटनेका सुगम से सुगम एक प्रसंग बनता है। (अर्थात्) निमित्त प्रसंग बनता है। यह (सत्पुरुषके) सद्भावका बहुत बड़ा लाभ है। वरना शास्त्र चाहे कितने भी पढ़ लें, जैन सिद्धांतका अभ्यास कर लें, उसका दर्शनमोह कम नहीं भी हो; अगर क्षयोपशमका थोड़ा अहंभाव हो जाये तो दर्शनमोह बढ़ भी जायें। जब कि यह एक ऐसा निमित्त है कि अहंभाव होनेका प्रसंग ही न आये। वरना जिससे बचना मुश्किल है ऐसा अहंभाव, वह सहजमात्रमें उत्पन्न ही न हो। अतः दर्शनमोह बढ़नेका प्रसंग ही न आये। (सत्पुरुषकी) विद्यमानताका यह एक बहुत बड़ा फायदा है। इसमें जो बात आयी है उस परसे यह कह सकते हैं। हमलोगकी भी चर्चाएँ चलती, चर्चामें बैठे हो तो गुरुदेवकी महिमाकी ऐसी ही बातें चलती रहती कि, जैसे एकबार तो व्याख्यानमें ऐसी बात आयी थी, एकबार तो गुरुदेवको ऐसे भाव आये थे। (ऐसे) कोई न कोई बहाने गुरुदेवकी महिमाका विषय चलता था। तत्त्वचर्चाके साथ-साथ (महिमाकी बातें भी चलती।) क्योंकि (गुरुदेव) वहाँ बिराजते थे इसलिए उनकी मुख्यता नहीं छूटती थी। उनकी मुख्यता सहज-सहज रहा ही करती। इसलिए चर्चामें भी वह विषय चलता और आपसी पत्र-व्यवहारमें भी वही विषय चलता था। ऐसा बनता था। वह यहाँसे याद रह गया (है)। काफी सालों तक ऐसा चला है।

`**पूज्य गुरुदेवश्रीका मुमुक्षुगण सहित राजकोटके विहार कार्यका सुंदर धर्मप्रभावनापूर्वक पूर्ण होना जान कर...**' यानी कि राजकोटमें

धर्मप्रभावना करके गुरुदेव (वापिस) पधार चुके हैं तो वह जानकर मुझे ऐसी प्रतीति होती है कि जैसे, `मानो' यानी जैसे कि संघके नायक संघ सहित निश्चय प्रभावनारूपी कार्य भी निर्विघ्नरूपसे पूर्ण कर लेंगे। उनकी निश्चय प्रभावनामें कोई विघ्न नहीं आनेवाला है (अर्थात्) पूर्णता तक पहुँच जायेंगे। अपनी निश्चय प्रभावना करते-करते, वृद्धिगत करते-करते पूर्णताको प्राप्त कर लेंगे।

मुमुक्षु :- राजकोट पंचकल्याणक करके लौटे होंगे ?

पूज्य भाईश्री :- बराबर है। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करके गुरुदेव पधारें होंगे (इसलिए) उसके समाचार (पत्रमें लिखे होंगे)। उसके आगे खुदकी यह भावना व्यक्त की है।

`आपश्रीका निश्चित स्थान, सोनगढ़का आगमन इस बातका द्योतक होता है मानो हम सबकी परिणतिका त्रिलोकरूपी राजकोटका विहाररूपी भ्रमण समाप्त होकर निश्चित अविनाशी स्व स्थान - अमृतमयी चैतन्यलोक आत्मगढ़में आगमन हो रहा है, जहाँ कि सहज आनंदसे तरंगित सहज आत्मरमणरूपी विहार सादि अनंतकाल तक स्वाभाविक ही होता रहेगा।' वैसे तो (खुद) व्यापारी थे परंतु लिखाईमें उनकी अलंकारिक भाषा आयी है। कोई लेखक अलंकारिक भाषामें लिखे इस तरह पत्र लिखे हुए हैं। वरना सामान्यरूपसे व्यापारियोंको इस तरह लिखना नहीं आता। हमारा (उनके बेटेसे) बोलनेका व्यवहार इसतरह से था कि, बाबुजीके पत्रोंको देखते हैं तो ऐसा लगता है कि जैसे कोई बहुत अच्छे लेखक हों, जिनका Writing power बहुत अच्छा हो, और जैसे कोई अलंकारिक भाषा लिखे वैसी पत्रोंमें वाक्य रचनाएँ और अलंकार आये हैं ! मैंने कहा, `सही बात है, हमें इतना अंदाज नहीं था कि, ऐसा-ऐसा लिखते होंगे। पत्र पढ़नेके बाद हमें मालूम पड़ा कि वे इतना अच्छा लिख सकते थे।' यहाँ

कितनी सुंदर बात लिखी है !

`आपश्रीका निश्चित स्थान,...**' **`आपश्री' अर्थात् गुरुदेव। गुरुदेवका निश्चित स्थान व सोनगढ़का आगमन इस बातका द्योतक है - यानी कि प्रकाशक है - प्रसिद्ध करता है - प्रदर्शित करता है कि जैसे **`हम सबकी...**' (अर्थात्) हम सभीकी परिणतिको **`त्रिलोकरूपी राजकोटका विहाररूपी भ्रमण समाप्त होकर...**' (अर्थात्) हम सबकी परिणति जो तीनलोकमें (भ्रमण करती है)। तीन लोकरूपी जो राजकोट है मतलब कि तीन लोकका राज (है) उसका परिभ्रमण समाप्त करा कर **`निश्चित अविनाशी स्व स्थान,...**' में पहुँचा देता है। कैसा है स्व स्थान ? कि, **`अमृतमयी चैतन्यलोक आत्मगढ़में आगमन हो रहा है,...**' (अर्थात्) गुरुदेव सोनगढ़में पधारें तो जैसे अमृतमयी चैतन्यलोकरूपी आत्मगढ़में आगमन हो रहा है। इस तरफ सोनगढ़ - उस तरफ आत्मगढ़, आगे राजकोट (कहा) तो त्रिलोकरूपी राजकोटमें परिभ्रमण समाप्त हो गया। वहाँसे लौटकर जो आ गये न ! तो (ऐसा कहा) कि परिभ्रमणकी समाप्ति हो गई। ऐसे-ऐसे अलंकार किये हैं।

वह आत्मगढ़ ऐसा है कि, **`सहज आनंदसे तरंगित सहज आत्मरमणरूपी विहार सादि अनंतकाल तक...**' (अर्थात्) शुरूआतसे लेकर अनंतकाल पर्यंत स्वाभाविकरूपसे सहज-सहज वहाँसे होता ही रहेगा - चालू ही रहेगा। ऐसी परिस्थिति मानो होनेवाली है, ऐसे सब संकेत मिलते हैं। गुरुदेव धर्मप्रभावना करके सोनगढ़ पधारे हैं तो इसके साथ स्वयं अपनी निश्चय भावनाको व्यक्त करते हैं। मेरे अकेलेका (ऐसा होगा) इतना ही नहीं, हम सबका ऐसा होगा, (यों कहते हैं)।

`पूर्व उदयके योगसे मैं आप जैसे पुण्यशालियोंकी तरह श्रीगुरुदेवके समीप रहकर उनके संगका, उनके वचनामृतका निरंतर

लाभ नहीं ले सक रहा हूँ, इसका मुझे महान्-महान् खेद होता है।' अजमेरसे (खुद) आ नहीं सकते हैं इसलिए (कहते हैं कि) मैं आपके जैसा पुण्यशाली नहीं हूँ। यह बात तो हमलोगोंके बीच बहुत बार होती थी कि, (आप) भावनगर (रहते हो) इसलिए ऐसा लगता है कि हम आपके जैसे पुण्यशाली नहीं हैं।

उन दिनों हफ्तेमें एक दिन (सोनगढ़) जानेका (हमारा) क्रम था; फिर किसी (बीचके दिनोंमें) खास विषय कोई चलता हो, कोई खास गाथा चलती हो तो बीचमें चले जाते वरना हर इतवारको जाते थे। (तब भी ऐसा लगता था) कि आठ दिनमें एक दिन (जाना होता था तो) बहुत लंबा समय लगता था ! बीच के जो छः दिन जाते थे तब ऐसा लगता था कि (जो लोग सोनगढ़में रहते हैं) वे कितने भाग्यशाली हैं। भाई ! आप सभीको हररोज मिलता है ! वहाँके मुमुक्षुओंसे ऐसी चर्चा चलती थी। (सामने) कोई भी हो गुरुदेवकी मुख्यताकी तो बहुत बातें होती थी।

`**पूर्व उदयके योगसे मैं आप जैसे पुण्यशालियोंकी तरह...**' यानी कि आप जैसे पुण्यशालियोंकी तरह गुरुदेवके समीप मैं भी रह सकूँ, उनके संगका लाभ ले सकूँ, उनके वचनामृतका लाभ ले सकूँ, ऐसा नहीं बन पाता है। यह संभव नहीं। ऐसा लाभ नहीं ले सकता हूँ इसका मुझे बहुत खेद है, बहुत-बहुत खेद है। महान खेद है माने मुझे इसका बहुत खेद है। एक तरफ इतना खेद होता है तो दूसरी तरफ परिणाममें एक और भी परिस्थिति है जिसे खुद अभी स्पष्ट कर रहे हैं।

`**साथ ही उनके बोध द्वारा बोधित मुझे...**' (अर्थात्) उनके बोधसे जो मैं बोधित हुआ हूँ ऐसे मुझको, `**यह संतोष भी होता है कि निश्चयसे सत्गुरुदेव मुझसे दूर नहीं हैं...**' (अर्थात्) गुरुदेवको मेरे

हृदयमें स्थापित किये हैं अतः वास्तवमें - निश्चयसे गुरुदेव मुझसे दूर नहीं हैं। उनका ऐसा तो बोध मिल गया है कि, गुरदेवको तो मैंने अंदरमें - हृदयमें बसा लिया है। `**जहाँ मैं हूँ वहाँ ही मेरे गुरु हैं,...**' जहाँ भी जाता हूँ वहाँ मेरे गुरु तो मेरे साथ ही आते हैं। मुझसे ज़रा भी दूर नहीं हैं। `**अतः मैं मुझमें मेरे गुरुदेवको देखनेका सतत प्रयत्न करता रहता हूँ...**' यह आत्मा ले लिया। उनका बोध जो है वह गुरुदेव हैं और उनके बोधका विषय जो आत्मा है वह मेरे निश्चय गुरुदेव हैं बस ! मेरे गुरुदेव मुझसे अलग नहीं हो सकते। जहाँ भी जाता हूँ, वहाँ साथमें ही हैं। और सतत उन्हींको देखनेका मेरा पुरुषार्थ चलता है। मेरे आत्माको देखनेका ही मेरा सतत-निरंतर पुरुषार्थ चलता है। `**और जब-जब गाढ़ दर्शन होता है...**' यानी कि (जब-जब) अनुभव होता है - अभेद अनुभव होता है तब गाढ़ दर्शन होता है। ५०के सालमें तो अपनी दशा व्यक्त कर दी है। `**जब-जब गाढ़ दर्शन होता है तब-तब अपूर्व-अपूर्व रसास्वादका लाभ लेता रहता हूँ,...**' अपूर्व-अपूर्व रस (अर्थात्) आत्माके चैतन्यरसका आस्वाद आता है और वह लेता रहता हूँ। और `**मानसिक विकल्परूपी भारसे हलका होता रहता हूँ,...**' और जितना भी विकल्पका बोझ है उससे हलका होता रहता हूँ। `**सहज ज्ञानघन स्वभावमें वृद्धि पाता रहता हूँ।**' (यानी) मेरा जो ज्ञानघन स्वभाव है उसमें मेरा परिणमन वृद्धिगत होता ही जाता है। (स्वयंकी ज्ञानदशाकी) स्पष्ट बात लिखी है। और तब, `**सोनगढ़की चिन्मय, भव्य, दिव्यमूर्तिको अधिक समीप गहन दृष्टिसे देखता रहता हूँ।**' श्रीमद्जीने २२३ पत्रमें ये शब्द इस्तेमाल किया है न ! ज्ञानीपुरुष तो परमात्मा ही हैं - देहधारी परमात्मा हैं - ज्ञानीपुरुष हैं वे तो देहधारी परमात्मा - दिव्यमूर्ति (हैं)। यह `दिव्यमूर्ति' शब्द यहाँ (आया

है)। `**सोनगढ़की चिन्मय, भव्य, दिव्यमूर्तिको अधिक समीप होकर...**' यानी कि उनका जो परिणमन है उसके समीप मैं पहुँच गया हूँ। उनका जो परिणमन है वह परिणमन मुझे स्पष्ट दिख रहा है। `**अधिक समीप होकर गहन दृष्टिसे देखता रहता हूँ।**' अर्थात् उनको मैंने पहचाना है, उनका जो अंतरंग स्वरूप है वह मेरे ज्ञानमें है और उनकी जो गहनता है - उस विषयकी जो गहनता है - अध्यात्म तत्त्वकी जो गहनता है, उस गहनताको मैं भी गहन दृष्टिसे देखता रहता हूँ। मेरा परिणमन सतत मेरेमें है, मेरे स्वरूपका मैं गाढ़ दर्शन करता हूँ। मेरे स्वरूपका रसास्वाद लेता हूँ। विकल्परूपी बोझ हलका होता जा रहा है।

(इन दिनोंमें) आर्थिक स्थिति बिगड़ी है। १९५०में अजमेर छोड़कर, दुकान बंद करके आर्थिक प्रयोजनवश कलकत्ता आये हैं। कि जहाँ कोई आश्रय नहीं था। कोई सगे-संबंधीके वहाँ नहीं, किसीके वहाँ नहीं। धर्मशालामें उतरते थे, सेनेटोरियममें उतरते थे, क्योंकि कम खर्चमें रह सके। कुटुंबको साथमें लानेकी परिस्थिति नहीं थी। कोई रूम लेनेकी भी परिस्थिति नहीं थी। बादमें (किराये पर) रूम लिया था। `नुर्मल लोह्या लेन' पाँचिया गलीमें पहले-पहले रूम लिया है। `महिपत बागला रोड़' पर बादमें (रहने) गये हैं। वहाँ थोड़ी बड़ी जगह थी। वहाँ तो दो बेड़रूम, दिवानखाना, रसोईघर अलग-अलग थे। भीतरमें बरामदा था। वहाँ मैं हो आया हूँ। पहली-पहली बार ३०के सालमें कलकत्ता गया तब तक वे लोग अभी वहीं रहते थे। खाना खाने भी वहाँ गये थे, फिर पूछा था ध्यानमें बैठते थे वह रूम कौन सा? तो कहा, यह जो बेड़रूम है उसमें ध्यान करते थे। ये वही रूम है। इस रूमको बंद करके बैठ जाते थे। उस वक्त तो पूरा परिवार आ चुका था। परिवार बड़ा था - जिसमें

चार लड़कियाँ, चार लड़के, खुद दो, ऐसे कुल मिलाकर दस सद्स्योंका परिवार था।

क्या कहते हैं (यहाँ) ? विकल्परूपी भारसे हलका होता रहता हूँ। देखो ! आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है परंतु (विकल्प नहीं है)। गौरसे ध्यान देने जैसा विषय है। ज्यों-ज्यों निर्विकल्प दशामें गाढ़ होता जाता हूँ, (त्यों-त्यों) इस तरफ विकल्पका भार हलका होता जा रहा है। `**ज्ञानघन स्वभावमें वृद्धि पाता रहता हूँ।**' अभी अजमेरसे ही ऐसा लिखते हैं। (ज्ञानदशाकी) शुरूआत बहुत अच्छी है। और अकेले हाथोंसे भी बहुत काम किया है। परिणति जो जमी है ! कोई गज़ब काम किया है !

मुमुक्षु :- अपनी दशाका स्पष्ट चित्र दिया है।

पूज्य भाईश्री :- स्पष्ट चित्र है। साथ ही साथ निमित्तभूत सोनगढ़की जो चिन्मय, भव्य, दिव्यमूर्ति है उसके, `**अधिक समीप होकर गहन दृष्टिसे देखता रहता हूँ।**' अब देखिये ! इस तरह कोई बात करता है ? गुरुदेवकी अंतरंग परिणतिके समीप जाकर मैं गहन दृष्टिसे उन्हें देखता हूँ। मूलमें तो अंदरकी लाईनके साथ इसका पूरा संबंध है। इसके बिना कुछ दिखना संभव नहीं है। अंदरमें गये बिना बाहरमें ज्ञानी या बाहरमें श्रीगुरुकी गहनता (का अंदाज नहीं आ सकता)। गहनतामें गये बिना बाहरकी गहनताका भी - दूसरेकी गहनताका भी पता नहीं लग सकता, ऐसी बात है। यह बुद्धिका विषय नहीं है कि अगर बुद्धि बहुत अच्छी - बहुत हो तो दूसरेकी गहनताको पकड़ ले, ऐसा नहीं है। खुद अंदरमें गहन विषय तक जाये तब बाहरमें सामनेवालेकी गहनताको समझ सकता है, वरना नहीं समझ सकता। ऐसा विषय है। जो यहाँसे निकलता है।

`**आशा करता हूँ कि जुलाई माहके अंत तक लगभग एक माहके लिए वहाँ रहनेको आ सकूँगा।**' यानी जुलाईकी तीन तारीखको तो यह पत्र लिख रहे हैं और इसी जुलाई महीनेके अंतमें करीब एक महिना सोनगढ़ रहनेकी उनकी भावना है। `**आशा है वहाँ सर्व कुशल होंगे। आपका वहाँका पत्र कभी-कभी आनेसे एक प्रकारका संबंध वहाँका बने रहनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त है,...**' और किसीके परिचयमें ही नहीं आये थे। अतः ये (मुमुक्षुभाई) जब भी पत्र लिखते तब उनको लगता कि, चलो, अच्छा है, वहाँके किसीसे तो संबंध चालू है। कुछ न कुछ समाचार तो मिलते रहते हैं। जहाँ मेरे गुरु हैं, (ऐसे) उपकारीके समाचार तो मिलते हैं। कि जैसे अभी विहारमें गये हैं, अब विहारसे लौट आये हैं। `**यह मेरे पुण्यका योग है,..**' (यानी कि) यह तो मेरे पुण्यका योग है कि अभी समाचार तो मिल जाते हैं गुरुदेवके ! `**ऐसा मानता हूँ। यहाँ योग्य कार्य लिखें। धर्मस्नेही निहालचंद्र सोगानी।**' यह तीसरा पत्र पूरा हुआ।

कोई भी कथन समझनेके लिए यदि (वक्ताके) अभिप्रायको छोड़कर अर्थ करने जाएगा तो अर्थ गलत ही होगा।

(द्रव्यदृष्टिप्रकाश - १५८)

पत्रांक - ४ कलकत्ता

२१-६-१९५२

आत्मार्थी...प्रत्ये निहालचंद्रका धर्मस्नेह !

आपका कार्ड अजमेरसे लौटकर यहाँ आया, कारण मैं अधिकतर आजकल यहाँ ही रहता हूँ। योग कुछ ऐसा ही है कि आर्थिक संबंधकी अपेक्षा प्रत्यक्ष तौर पर मेरा धार्मिक संग इस समय दूर-सा हो रहा है और मैं बहुत समयसे सोनगढ़ नहीं आ सक रहा हूँ। यह कहना व्यर्थ है कि अंतरंगमें, यहाँ होते हुए भी मुझे वहाँ की स्मृतियाँ, ऐसा कोई दिन न होगा कि नहीं आती रहती होवे। पूज्य गुरुदेवकी स्मृति इस समय भी आ रही है व आँखोंमें गर्म आँसू आ रहे हैं कि उनके संग रहना नहीं हो रहा है। उनका असंगरुचिका उपदेश (अथवा स्वसंगका) कानोंमें गूँजता रहता है और उसकी रमणतासे ही यहाँ की उपाधियाँ ढीली-सी रहती है। उस दिनकी प्रतीक्षामें हूँ कि कब उस गरजती हुई दिव्यमूर्तिके चरणोंमें शीघ्र अपने आपको पाऊँ। ...

आशा करता हूँ कि आपकी परिणति स्वरथ्य होगी। पूज्य गुरुदेवके चरणोंमें मेरा सादर भक्तिपूर्वक नमस्कार और सब भाइयोंसे धर्मस्नेह।...

धर्मस्नेही

निहालचंद्र सोगानी

प्रवचन - २ दि. ०४-०७-१९९१ - पत्रांक-४

यह चौथा पत्र १९५२ के सालमें कलकत्तासे लिखा गया (है)। १९५०के बाद कलकत्ता (रहनेके लिए) आ गये हैं।

‘**आपका कार्ड अजमेरसे लौटकर यहाँ आया, कारण मैं अधिकतर आजकल यहाँ ही रहता हूँ।**’ (पत्र लिखनेवालेने) अजमेर (पत्र) लिखा होगा। अतः अजमेरसे इन लोगोंने वहाँ भेजा होगा। १९५२ के सालमें लिखते हैं कि, मैं अब अजमेर नहीं रहता, करीब-करीब अब मैं यहीं (कलकत्तामें) रहता हूँ।

‘**योग कुछ ऐसा ही है कि आर्थिक संबंधकी अपेक्षा प्रत्यक्ष तौर पर मेरा धार्मिक संग इस समय दूर-सा हो रहा है और मैं बहुत समयसे सोनगढ़ नहीं आ सक रहा हूँ।**’ १९५० के जुलाई (मासमें) एक महिने भरके लिए आनेका लिखते हैं, किन्तु आ नहीं सके। १९५०में नहीं आये हैं, १९५१में भी नहीं आये, ये १९५२ के जून (महीनेमें) दो वर्ष बाद इस पोस्ट-कार्डका जवाब दे रहे हैं। बीचमें कोई पत्र-व्यवहार चला होगा जब तो मिला होगा वरना नहीं मिला होगा। (इसलिए लिखते हैं कि) ऐसा ही कोई योग हो रहा है कि, आर्थिक संबंधकी अपेक्षा माने आर्थिक परिस्थितिकी अपेक्षासे देखा जाये तो आर्थिक परिस्थिति बहुत कमज़ोर हो चुकी है। अतः प्रत्यक्षरूपसे तो मुझे ऐसा लगता है कि, मेरा धार्मिक संग अभी तो अधिक से अधिक दूर होता चला जा रहा है। मैं

जल्दीसे सोनगढ़ नहीं आ सकूँ ऐसी मेरी आर्थिक परिस्थिति प्रत्यक्ष तौरसे दिखाई देती है। और बहुत समयसे मैं सोनगढ़ आ नहीं सका।

‘**यह कहना व्यर्थ है कि अंतरंगमें, यहाँ होते हुए भी मुझे वहाँ की स्मृतियाँ, ऐसा कोई दिन न होगा कि नहीं आती रहती होवे।** ऐसा एक भी दिन नहीं जाता कि मुझे वहाँकी कोई स्मृति न आती हो। ऐसा कहनेमें भी क्या मतलब है ? ऐसा कहते हैं। मैं आ नहीं सकता हूँ इसलिए यह कहना व्यर्थ होगा कि एक दिन भी खाली नहीं जाता कि मुझे वहाँ का स्मरण न आता होगा, स्मृति न आती होगी। इसका (ऐसा कहनेका) क्या अर्थ है ? मुझसे आया नहीं जाता इसका क्या ? परिस्थिति तो जैसी है वैसी बतला देते हैं। अतः उन्हें हररोज सोनगढ़ और गुरुदेवका जो स्मरण आता है इसकी महत्ता नहीं है। आना नहीं होता है, इसका खेद है, ऐसा कहना है।

‘**पूज्य गुरुदेवकी स्मृति इस समय भी आ रही है...**’ ये पत्र लिख रहा हूँ तब भी गुरुदेव स्मरणमें आ रहे हैं। ‘**व आँखोंमें गर्म आँसू आ रहे हैं...**’ और आँखोंमेंसे तो आँसू गिर रहे हैं। ‘**कि उनके संग रहना नहीं हो रहा है।**’ (यानी) उनके संगमें मुझे रहना चाहिए इसके बजाय उनके संगमें मैं रह नहीं सकता हूँ, इसके दुःखमें वेदनापूर्वक आँखमेंसे आँसू आ जाते हैं। ‘**उनका असंग रुचिका उपदेश (अथवा स्वसंगका)...**’ अर्थात् स्वसंगका उपदेश ‘**कानोंमें गूँजता रहता है...**’ उनके पाससे जो उपदेश सुना हुआ है वह अभी भी कानोंमें गूँजता है। उनके वचन हैं, वे कानोंसे बाहर नहीं जाते। इसीमें ही - कानोंमें ही गूंजते हैं। ‘**कानोंमें गूँजता रहता है और उसकी रमणतासे ही यहाँ की उपाधियाँ ढीली-सी**

रहती है।' और उनकी जो रमणता है - असंग रुचिका उपदेश है (इससे उपाधियाँ ढीली हो जाती हैं)। `**और उसकी रमणता...**' और असंग तत्त्वकी जो रमणता है उससे ये सारी उपाधियाँ हैं (वे) ढीली हो जाती हैं। उपाधि हैं तो बहुत (किन्तु असंग तत्त्वकी रमणतासे) शिथिल हो जाती हैं (यानी) उसकी पकड़ नहीं होती, इसकी तीव्रता नहीं आती। (परिस्थिति तो) जो है सो है इसमें कुछ अन्यथा कर सके ऐसा तो है नहीं, (ऐसा) अकर्तृत्व प्रत्यक्ष अनुभवगोचर है। (और) यह एक पूर्वकर्मका योग है, बस ! इसका ज्ञान होता है। ज्ञानीको अनुकूलता या प्रतिकूलताका ज्ञान होता है कि, जैसे अभी पूर्वकर्मका उदय ऐसा चल रहा है। जो भी प्रकारका चलता है (उस प्रकार से) वास्तवमें मुझे कोई लेना-देना है नहीं। लेकिन जो प्रकार चलता है उस प्रकारको जानते हैं, जैसे दूसरेका जानते हैं वैसे इसको भी जानते हैं। वास्तवमें मुझे (कोई) लेना-देना नहीं है। अतः उपाधि तो `**ढीली-सी रहती है। उस दिनकी प्रतीक्षामें हूँ कि कब उस गरजती हुई दिव्यमूर्तिके चरणोंमें शीघ्र अपने आपको पाऊँ।...**' गुरुदेवने ये सब पढ़ा तब उन्हें लगा कि, `है तो जरूर कोई' !! (सोगानीजी गुरुदेवके पास) बोलते नहीं थे, मौन रहते थे। यहाँ (सोनगढ़) जब भी आते गुरुदेवके आगे एक अक्षर भी नहीं बोलते थे ! गुरुदेवकी मुख्यताका एक अक्षर गुरुदेवके पास नहीं बोले ! गुरुदेवको पता ही न चले कि इनको अंदरमें क्या चलता है ? पत्र पढ़ें तब लगा कि, गजबकी (बातें) खुली हैं !!

`**उस दिनकी प्रतीक्षामें हूँ...**' (यानी) उस दिनकी मैं राह देखता हूँ कि कब उस गरजती हुई दिव्यमूर्तिके चरणोंमें मैं अपने आपको पाऊँ, बस ! उस दिनकी मैं प्रतीक्षामें हूँ। वैसे सभी संयोगोंसे भिन्न पड़ चुके हैं परंतु श्रीगुरुका संग करनेकी प्रतिक्षा करते हैं।

मुमुक्षु :- पत्र आते थे तब सोगानीजी पर ध्यान नहीं गया होगा ?

पूज्य भाईश्री :- नहीं, कोई उन्हें पहचान ही न सका। उन्हें कोई पहचान नहीं पाया है, वास्तवमें तो यह बात है। मैं २०१६के सालमें परिचयमें आया, इसके पहले उनके पत्र पढ़ें थे। तब उस मुमुक्षुने मुझे पूछा था कि, क्या लगता है ? (तब मैंने कहा) `जैन दर्शनका अपना जो विषय है - Top level का जो दृष्टिका विषय है वह इस पत्रमें आया है।' तब उस मुमुक्षुने कहा कि, `इन पत्रोंमें जो ऐसा आता है इसका क्या लगता है ?' क्योंकि उन्हें भी पहचान नहीं थी। उनको उघाड़ था इसलिए एक खयालमें था कि, दूसरोंसे कोई विशिष्टता है, परंतु प्रतीति कहाँसे लाये ? (क्योंकि) पहचानमें तो विश्वास पैदा होता है। वह विश्वास कहाँसे लाये ? पहचान विश्वासको पैदा करती है, वह कहाँसे लाये ? इसलिए (मुझे) पूछा कि, आपको क्या लगता है ? (तब मैंने कहा) मिले बिना कुछ नहीं कह सकता। प्रत्यक्ष हुए बिना कुछ नहीं कहूँगा। (उन्होंने) आखरी हदकी बात तो कर दी है, फिर भी मिले बिना (कोई) Judjement नहीं दे सकता।

२०१६के सालमें अचानक आ पहुँचे। मैं तो इतवारको (सोनगढ़) जाता था लेकिन वे तो चालू दिनोंमें आ गये। तुरंत ही उस मुमुक्षुने (मुझे) Post-card लिख दिया। दूसरे दिन दुकान पर मुझे Post-card मिल गया और तीसरे दिन सुबह मैं चालू दिनमें ही (सोनगढ़) पहुँच गया ! `हमलोग ने जिनके पत्र पढ़े थे, जिनकी चर्चा हुई थी वे व्यक्ति विशेष श्री निहालचंदभाई सोगानी अचानक ही आये हैं, कागज मिलते ही आप फ़ौरन् आईये।' (ऐसा कागजमें लिखा था।) फिर रूबरूमें तो कुछ पूछना पड़े ऐसा नहीं था फिर भी एक प्रश्न किया था। मैं सुबहकी बससे गया (और घर पहुँचा तब सोगानीजीको) स्नान करना बाकी था। और सब चाय-नास्ता आदि

निपटा लिया था, फिर वे स्नान करने जा रहे थे कि मैं पहुँचा। व्याख्यान शुरू होनेमें अभी १५-२० मिनिटकी देर थी। (अतः उन्होंने कहा) `मेरा स्नान करना बाकी है।' मैंने कहा `इतना टाइम (बाकी) है', उन्होंने कहा `आप जाईये !' (यानी कि) `आप व्याख्यानमें जाईये। मैं तैयार होकर आता हूँ।' अतः उस वक्त तो बात करनेका समय नहीं था। व्याख्यानका एक घंटा पसार हो गया। फिर हमलोग साथमें घर आये तब एक प्रश्न किया था, बादमें दूसरा प्रश्न नहीं किया, लेकिन (उसमें) तो पूछना पड़े ऐसा नहीं था। जो चर्चाएँ चलीं (वह विशिष्ट प्रकारकी चलीं) ! ये तो लिखाईमें इतना आया है वरना बोलनेमें तो बहुत Spirit था, अतिशय Spirit था।

मुमुक्षु :- क्या प्रश्न किया था ?

पूज्य भाईश्री :- प्रश्न तो ऐसा किया था कि स्वानुभवके करीब-करीब पहले चल रहे विकल्पोंके वक्त जो भेदज्ञान चलता है (यानी कि) रागसे भिन्नताका (जो भेदज्ञान चलता है), वह ऐसा भेदज्ञान चलता है कि अनुभवके पश्चात् जो भेदज्ञान चलता है - ऐसा ही भेदज्ञान चलता है। इन दोनों सविकल्पात्मक भेदज्ञानके बीचमें अनुभव होता है। तो जिस भेदज्ञानके फलमें अनुभव होता है (कि) जो करीब-करीब पहलेके मिनटोंमें (चलता है) और (अनुभव होनेके) बाद जो भेदज्ञानकी परिणति चलती है - इन दोनोंमें अंतर - तफावत क्या है ? ऐसा प्रश्न किया था। तो उन्होंने कहा, पहलेके क्षणोंमें जो भेदज्ञान चलता है उसमें `रागसे भिन्न हूँ' ऐसा जो भेदज्ञानका प्रकार है, इसमें जो ज्ञानकी सावधानी है कि `मैं ज्ञानमय हूँ' उसमें समयांतर है, जब कि स्वानुभवके पश्चात् परिणतिमें एक साथ (भिन्न पड़ते) हैं। एकसाथ माने राग और ज्ञान एकसाथ भिन्न पड़ते हैं। एक ही समयमें भिन्न पड़ते हैं। जब कि इसमें (स्वानुभव होनेके पूर्व चलते

हुए भेदज्ञानमें) सूक्ष्म समयांतर है। यह जो चलता हुआ राग है और चलता हुआ ज्ञान है - उसमें `रागसे भिन्न हूँ' - ऐसा (अनुभवमें) लेते वक्त सूक्ष्म समयका अंतराल है। परंतु इतना सूक्ष्म समय है कि जैसे लगे ऐसा कि दोनों भेदज्ञान एक ही सरीखे हैं। इतना सूक्ष्म अंतराल है ! लेकिन अंतराल है। क्योंकि अनुभव नहीं है। परंतु भेदज्ञान ऐसा है कि अनुभवमें परिणत हो जायेगा। बस ! बात पूरी हो गई। जो इसमेंसे पसार हुआ हो उसीको ये पता होगा वरना इस बातसे बेखबर होगा। जैसे ही घर पहुँचे कि पहले ही यह प्रश्न पूछा। आंगनमें खाट पड़ा था। पहला प्रश्न ये पूछा था और उन्होंने ऐसा जवाब दिया था। बादमें कोई भी प्रश्न परीक्षाके खातिर नहीं पूछा था। यूँ ही कोई भी चर्चा चली हो लेकिन (परीक्षाके खातिर) दूसरा प्रश्न नहीं पूछा।

मुमुक्षु :- सोगानीजी जो पहली दफा आये और उसी दिन अनुभव किया, तो ये बात कैसे मालूम हुई ? क्योंकि उस वक्त तो और कोई पहचानता नहीं था ?

पूज्य भाईश्री :- उनके साथ ही बात हुई थी। और अन्य मुमुक्षुओंने मुझे बात कही थी। यानी उन्होंने तो पूछा था कि, आपको अनुभव कब हुआ ? फिर उन्होंने मुझे बात कही थी तब मुझे पता पड़ा। फिर भी मैंने सीधा पूछा था ज़रूर। परंतु उसवक्त जब पहली बार मिले उस वक्त नहीं पूछा था। फिर जब दूसरी, तीसरी बार आये तब एक बार हमलोग बैठे थे तब बात की थी कि, `क्या आपको पहले दिन ही अनुभव हो गया था ?' पहली रातको ही अनुभव हो गया था ? तब कहा था, `पहली रात है या दूसरी रात है, यह मुझे याद नहीं रहा।' इतना निश्चितरूपसे मुझे याद नहीं रहा कि पहली रात थी या दूसरी थी। मैं तो धुनमें चढ़

गया था। इतनी धुन थी कि वह पहली रात थी या दूसरी रात थी यह मैं कह नहीं सकता। बहुत निश्चितरूपसे नहीं कह सकता। हमारी प्रत्यक्ष बात चली जब तो ऐसा उत्तर दिया था। परंतु संभव है कि पहली रातको ही हुआ हो, तो इसमें कोई नई बात नहीं है। मुझे पता था फिर भी मैंने पूछा था। परंतु जब हमारे बीच आत्मीयता बढ़ी और दूसरी-तीसरी दफा जब सोनगढ़ आये तब मैंने एक बार पूछ लिया था कि, सुना है कि आपको उसी दिन रातको अनुभव हुआ है। स्वानुभव-निर्विकल्पदशामें आ गये थे, क्या ठीक है यह बात ? बराबर है ? तो कहा था `इतना तो चोक्कस याद नहीं रहा, मैं तो बहुत धुनमें था। उसी रात मुझे निर्विकल्पदशा आयी या दूसरी रातको - ये अभी उतना याद नहीं रहा।' वास्तवमें तो उनका उपयोग भी उसवक्त नहीं होगा, वे तो धुनमें चढ़े हुए थे। पहली रात हो चाहे दूसरी रात हो इसमें कोई इतना फ़र्क नहीं पड़ता। दूसरे मुमुक्षुओंको (पहली रातका) ही कहा था इसलिए उन्होंने मुझे ऐसा ही कहा। लेकिन मैंने जब पूछा था तब ऐसा कहा था। ये तो मुझे याद है इसलिए कहता हूँ। मतलब क्या है कि, उन्हें पहली-दूसरी रातका कोई महत्त्व नहीं था। इसलिए उस बाबतमें खुद दावेके साथ कुछ नहीं कहते थे। वे तो ऐसा ही कहते थे कि, मैं धुनमें था। पहली रात हो चाहे दूसरी रात हो - इतना निश्चितरूपसे खयालमें नहीं रहा। परंतु दूसरे किसीको भी बात कही होगी, पहली रातकी ही बात की होगी। मेरे साथ बात करते हुए तो वे जैसा होगा वैसा ही मुझे (कहेंगे)। उस वक्त जैसा हो वैसा कहेंगे। अन्यथा कहनेका कोई कारण नहीं है। उन्हें उतना स्पष्टरूपसे याद नहीं रहा।

मुमुक्षु :- दूसरे मुमुक्षुओंसे इतनी चर्चा होती थी तो वे लोग

पहचान नहीं सके ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, पहचान करना कोई बात ही दूसरी है। यह पूरा अलग ही Factor है। पहचानना - वस्तु ही कोई दूसरी है। मान लीजिए, कोई आदमी आगम अनुसार तत्त्वकी-आगमकी-अध्यात्मकी सारी बातें कर सकता हो, फिर भी वह सम्यक्‌दृष्टि नहीं भी हो और सम्यक्‌दृष्टि हो भी सकता है। अब कोई (सम्यक्‌दृष्टि) हो और ऐसा कहे कि, मुझे अनुभव हुआ है तो इससे कोई अगलेको पहचान हो जायेगी ऐसा थोड़ी है ? इससे पहचान थोड़ी होती है ! पहचानके लिए तो योग्यता चाहिए।

पहचान क्या है ? कि वह द्विपक्षीय विषय है। एक तो सामने अनुभूति संपन्न पुरुष चाहिये - आत्मा चाहिये ! और दूसरी तरफ पहचान करनेवालेकी योग्यता चाहिये। कहने - नहीं कहनेसे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। कई लोग ऐसा प्रश्न लेकर आते हैं - आपको अनुभव हुआ है या नहीं ? आप बात तो बहुत अच्छी करते हो - क्या आपको अनुभव हुआ है ? फिर मैं जवाब देता हूँ, भाई ! यह कहने-सुननेका विषय नहीं है। बेकारमें आप कहीं फँस जाओगे। मान लीजिये मैं कहूँगा कि मुझे अनुभव हो गया है, तो इससे आपको क्या फायदा होगा ? और यदि मैं ऐसा कहूँ कि मुझे अनुभव नहीं हुआ है तो इससे भी आपको क्या फायदा-नुकसान होनेवाला है ? आपको जब तक पहचान न हो तबतक यह कहने - नहीं कहनेसे क्या फर्क पड़ता है ? जो विषय पहचानका है उसे आप कहने-सुननेमें ले जाते हो ! तो ये आप गलत ही कर रहे हो। जो विषय पहचानका है उसे आप कहने-सुननेमें ले जाओ, इसका क्या अर्थ है ? गलत रास्ता पकड़नेकी बात है।

दूसरे मुमुक्षुओंको तो कुतूहल था तो पूछ लिया। उनका

(सोगानीजीका) दृष्टिका ज़ोर तो बहुत था। खुद ध्यानमें बैठते थे। वे तो जब (ध्यानमें) बैठते तो एकदम जम जाते थे !! चंचलता बिलकुल नहीं होती थी। वैसे भी चंचलता नहीं थी, ऐसे ही बैठे हो तो भी उनमें चंचलता नहीं मालूम पड़ती थी। फिर ध्यानमें बैठे हो तब तो प्रश्न ही नहीं उठता है। (कोई) घंटों तक देखता रहे तो जैसे मूर्ति ही लगे ! प्रतिमावत् बैठे हो ऐसा लगे ! (सामान्य योग्यता) हो तो भी ऐसा लगे कि, नये व्यक्ति आये हैं, इतनी सारी अध्यात्म तत्त्वकी बात करते हैं ! बातमें कोई फर्क नहीं आता, ज़ोरदार बात है इतना ध्यान करते हैं तो अवश्य कुछ होना चाहिए ! बस ! इतना (होगा)। क्या लगेगा, कि अवश्य कुछ होना तो चाहिए (परंतु) पहचान होनेके लिए तो योग्यता चाहिए।

मुमुक्षु :- प्रश्न पूछनेसे मालूम नहीं होगा ?

पूज्य भाईश्री :- इससे क्या हो गया ? मान लो खुद सीधा कह दे, तो इससे कोई पता लग जाता है क्या ? या पहचान हो जाती है क्या ? बिलकुल नहीं। ये विषय ही कहने-सुननेका नहीं है। सीधा पहचानका विषय है।

मुमुक्षु :- श्रीमद्जीके पत्रोंमेंसे अपने स्वाध्यायमें पहचान संबंधित बात चलती है न ! इसमें प्रथम शर्त यही लेते हैं कि अपनी योग्यताके बिना ज्ञानीपुरुष पहचाने नहीं जाते।

पूज्य भाईश्री :- अपनी उत्कृष्ट पात्रताके बिना, उत्कृष्ट मुमुक्षुतामें आये बिना अन्य किसी भी उपायसे इस बातका निवेडा आ ही नहीं सकता। कहनेसे नहीं, सुननेसे नहीं, किसीके कहनेसे नहीं, यहाँ तक कि खुद ज्ञानीके कहनेसे भी नहीं ! दूसरेके कहनेसे तो क्या (होगा) ? दूसरा कोई ऐसा कहे कि ये ज्ञानी हैं, ये बात तो दूर रही (परंतु) ज्ञानी खुद ऐसा कहे कि, मैं ज्ञानी हूँ तो भी विश्वास

नहीं आये ! विश्वास लाना कहाँसे ? सुननेसे कोई विश्वास पैदा नहीं हो जायेगा। विश्वास तो पहचानसे ही आयेगा। पहचान हुए बिना विश्वास नहीं आयेगा (क्योंकि) यह सहज परिस्थिति है, उसे लाना कहाँसे ? वह कोई सुननेसे विश्वास खड़ा हो जाता है क्या ?

इसकी प्रतीति आपको कैसे होगी ? कि आपको ऐसा कहे कि, क्या आप किसीको भी ज्ञानी मानकर घूम रहे हो ? उस वक्त यदि आपको पहचानपूर्वक विश्वास नहीं आया होगा तो आपको भय लगेगा। और यदि पहचानपूर्वक विश्वास आया होगा तो आपको निःशंकता और निर्भयता रहेगी। अतः पहचान अलग चीज है, वह बात ही अलग है।

(यहाँ चलते हुए पत्रमें आगे कहते हैं) `**आशा करता हूँ कि आपकी परिणति स्वस्थ होगी। पूज्य गुरुदेवके चरणोंमें मेरा सादर भक्तिपूर्वक नमस्कार और सब भाईयोंसे धर्मस्नेह।... धर्मस्नेही निहालचंद्र सोगानी**'।

[ज्ञाता-दृष्टाका स्वरूप बताते हुए कहा :] **निर्विकल्प अनुभव होते ही ज्ञातादृष्टा हो सकता है।** [सिर्फ] **ऐसे विकल्पसे ज्ञाता मानकर, होनेवाला था सो हुआ, - ऐसा मानकर** [-ऐसे] **समाधानमें** (जो) **सुख मानते हैं; वह** (सुख) **तो जैसा : अघोरी मांस खानेमें, सूअर विष्टा खानेमें, पतंगा दीपकमें सुख मानता है, - वैसा है। निर्विकल्प अनुभव बिना धारणामें ठीक मानना, सुख मानना, यह तो कल्पना मात्र है; वास्तविक सुख नहीं।**

(**द्रव्यदृष्टिप्रकाश - १११**)

पत्रांक - ८ कलकत्ता

२८-६-१९५३

धर्मप्रेमी... निहालचंद्रका धर्मस्नेह।

`कार्ड एक आपका लगभग पंद्रह दिवस पहले मिला था, मैं कार्यवश रांची गया हुआ था अतः जवाबमें विलम्ब हुआ।

आशा है परम कृपालु गुरुदेव सुख-शांतिमें विराजते होंगे व आप लोग निरंतर उनकी अमृतमयी वाणीका लाभ लेते होंगे। यहाँ तो पुण्ययोग ही ऐसा नहीं है कि वहाँका लाभ शीघ्र-शीघ्र मिला करे। निवृत्तिके लिये जितना अधिक छटपटाता हूँ उतना ही अधिक इससे दूर-सा रहता हूँ, ऐसा योग अबके हो रहा है। कई बार तो फूट-फूट कर रोना-सा आ जाता है। शायद ही कोई दिवस ऐसा निकलता है कि बारंबार वहाँका स्मरण नहीं आता होवे। किसीने कहा है कि -

``मिलत एक दारुण दुःख देई।
विछुडत एक प्राण हर लेई।।''

सो संयोगोंकी अपेक्षा यहाँ तो ऐसे ही ऐसे संगमें रहना पड़ रहा है जहाँ कि दारुण दुःखका अनुभव हुआ करे।

परम कृपालु गुरुदेव कहते हैं कि ऐसे दुःख-सुख भावोंको पूर्णरूपसे, एकाकाररूपसे जीवको नहीं भोगना चाहिए। सम्यक् एकांतरूपसे स्वरूपदृष्टिके बलसे सहज ही, अंशे-अंशे, जीव इनसे क्षणे-क्षणे सरकता रहे, भिन्न पड़ता रहे व ऐसी दृष्टिका अभ्यास निरंतर बढ़ता रहे, यह ही भावना है।...

धर्मस्नेही

निहालचंद्र

प्रवचन - ३ दि. १८-०७-१९९१ - पत्रांक-८

धर्मप्रेमी... निहालचंद्रका धर्मस्नेह।

`कार्ड एक आपका लगभग पंद्रह दिवस पहले मिला था, मैं कार्यवश रांची गया हुआ था अतः जवाबमें विलम्ब हुआ।

आशा है परम कृपालु गुरुदेव सुख-शांतिमें विराजते होंगे व आप लोग निरंतर उनकी अमृतमयी वाणीका लाभ लेते होंगे। यहाँ तो पुण्ययोग ही ऐसा नहीं है कि वहाँका लाभ शीघ्र-शीघ्र मिला करे।' (अर्थात्) उतना पुण्ययोग नहीं है कि बार-बार पूज्य गुरुदेवका लाभ लेनेके लिए आ सके।.

`निवृत्तिके लिए जितना अधिक छटपटाता हूँ उतना ही अधिक इससे दूर-सा रहता हूँ,...**' निवृत्तिके लिए इतनी छटपटाहट रहती है। वे निवृत्तिके लिए, गुरुदेवके योगमें रहनेके लिए, सानिध्यमें रहनेके लिए प्रयत्न तो करते थे। `छटपटाहट' माने (गुजरातीमें) `चटपटी' जब लगती है तब आदमी प्रयत्न करता है, जिसे हिन्दीमें `छटपटाहट' कहते हैं। जितना प्रयत्न करता हूँ उतना जैसे अधिक दूर-सा रह जाता हूँ। `ऐसा योग अबके हो रहा है।**' अभी तो ऐसा ही कोई योग हो रहा है कि जितना प्रयत्न निवृत्ति लेकर संयोगमें - गुरुदेवके योगमें रहनेका करता हूँ इतना ही दूर होना बन रहा है। ऐसी ही कोई संयोगकी परिस्थिति अंतरायरूप - विपरीत चल रही है। इन दिनों उनकी आर्थिक स्थिति बहुत कमज़ोर थी।

`कई बार तो फूट-फूट कर रोना-सा आ जाता है।' कई बार

तो बहुत रुदन आता है। `फूट-फूटकर रोना' मतलब अपने (गुजरातीमें) कहते हैं कि `हिबका भरे' इतना ज़ोरसे रुदन हो जाता है। ज्ञानदशामें सत्संगका वियोग ज्ञानीपुरुषको इतना दुःखदायी है !

मुमुक्षुको सत्संगके लिए कितना भाव होना चाहिए, कितना तीव्र होना चाहिए, इसका अंदाज यहाँसे करना है। उनको तो भीतरमें स्व-सत्का संग है जो कि मर्यादित है जबकि बाहरमें असत्संग बहुत है, जिसके आगे सत्संग चाहते हैं। असत्संग पुसाता नहीं है। आदमी कहता है न, मुझे तो किसी भी हालतमें पुसाता नहीं है। वैसे (ज्ञानीको असत्संग) पुसाता नहीं है। इसलिए सत्संगके लिए गुरुदेवका जो वियोग है इसके लिए रोना आता है। और वह भी थोड़ा नहीं, बहुत रोना आता है - फूट-फूट कर रोना आता है।

`**शायद ही कोई दिवस ऐसा निकलता है कि बारम्बार वहाँका स्मरण नहीं आता होवे।**' वहाँका स्मरण बारम्बार हो ऐसे दिन जा रहे हैं। कोई दिन ऐसा नहीं जाता कि वहाँका स्मरण बारम्बार आया न हो ! ऐसा कोई दिन नहीं जाता। इसका अर्थ ये हुआ कि उनका शरीर - देह कलकत्तामें था (और) उनका आत्मा सोनगढ़में था। शरीर कलकत्तामें और आत्मा सोनगढ़में ! इस तरह जीते थे। अभी तो सोनगढ़से गये हुए दो महिने हुए हैं, तब ये परिस्थिति है।

`**किसीने कहा है कि**' - `**मिलन एक दारुण दुःख देई। विछुडत एक प्राण हर लेई।।**' इसका सामान्य अर्थ ऐसा है कि, कोई ऐसा मिल जाए कि जिसके मिलनेसे बहुत दुःख हो, दारुण दुःखकी उत्पत्ति हो, ऐसा कोई व्यक्ति मिल जाता है। तो कोई व्यक्ति ऐसा मिल जाता है कि जिसका वियोग होनेपर प्राण छूट जाये ! वियोग सहन न हो। एकका संयोग सहन न हो, एकका वियोग सहन

न हो। ऐसा बनता है। ऐसा मेरा हुआ है, ऐसा कहते हैं। यहाँ ऐसे मिलते हैं कि दारुण दुःखका कारण है। गुरुदेवका वियोग ऐसा हुआ है कि अब प्राण छूट जाये ऐसा हो गया है। इस तरह किसी कविकी पंक्तियाँ दोहराई हैं।

`**सो संयोगोंकी अपेक्षा यहाँ तो ऐसे ही ऐसे संगमें रहना पड़ रहा है जहाँ कि दारुण दुःखका अनुभव हुआ करे।**' ये `मिलत एक दारुण दुःख देई' (जैसा प्रकार है)। संयोगकी अपेक्षासे तो ये हालत है। यहाँ दारुण दुःखमें पड़े हैं। निर्धनताका दुःख नहीं है असत्संगका दुःख है।

`**परम कृपालु गुरुदेव कहते हैं कि ऐसे दुःख-सुख भावोंको पूर्णरूपसे, एकाकाररूपसे जीवको नहीं भोगना चाहिए।**' जो भी उदयभाव है उसे एकाकार होकर नहीं भोगना चाहिए। (वह) कर्मफल चेतना हो जाती है। भले ही दुःख लगे लेकिन भिन्न रहकर लगना चाहिए, एकाकाररूपसे नहीं लगना चाहिए। गुरुदेवका ऐसा उपदेश है कि, ऐसे संसारके सुख-दुःख भावोंको पूरा-पूरा एकाकार होकर नहीं भोगना चाहिए। तन्मय होकर नहीं भोगना चाहिए। `**सम्यक् एकान्तरूपसे स्वरूपदृष्टिके बलसे...**' सम्यक्‌दृष्टिका बल कैसा है ? जो सम्यक् एकांत है। जो आत्माके सन्मुख हो उसे सम्यक् एकांत कहते हैं। ऐसे सम्यक्‌दृष्टिके बलसे, `**सहज ही,...**' अर्थात् कृत्रिमता से नहीं। `**सहज ही, अंशे-अंशे, जीव इनसे क्षणे-क्षणे सरकता रहे,...**' (अर्थात्) ऐसे उदयभावोंसे जीव धीरे-धीरे हटता जाये, भिन्न होता जाये, अंततः संपूर्ण भिन्न हो जाये अर्थात् (उदय) आये ही नहीं। `**क्षणे-क्षणे सरकता रहे, भिन्न पड़ता रहे व ऐसी दृष्टिका अभ्यास निरंतर बढ़ता रहे,...**' ऐसा परिणमन हमेशा बढ़ता रहे, `**यही ही भावना है।**' ऐसी परिस्थितिमें संयोगके आगे तो कुछ चलता नहीं

(और) चलेगा भी नहीं। परंतु इससे भिन्न होना और ऐसा अभ्यास निरंतर चालू रखना ऐसी मेरी भावना है।

इस तरह गुरुदेवके वियोगका दुःख लगा है फिर भी अंतर पुरुषार्थ अभी बराबर चलता है। और ऐसे किसी भी उदय भावोंको तन्मय होकर - एकाकाररूपसे न भोगनेकी जागृति बराबर वर्तती है। ये इसमेंसे स्पष्ट होता है। (इस प्रकार) आठवें पत्रमें खुदकी सत्संगकी भावनाका विषय बहुत स्पष्टरूपसे आता है।

सत्संगके लिए तो श्रीमद्‌जीके पत्रोंमें भी इतना ही भरा है। वे भी `वननी मारी कोयल' ऐसा लिखते हैं ! क्या (लिखते हैं)? कोयल तो जंगलमें रहती है वह कोई शहरमें रहनेवाला पक्षी नहीं। वहाँ (जंगलमें) अगर उसे कोई मारे तो कहाँ जाये ? ऐसा हुआ है हमारा। कहाँ जाये हम ? `वननी मारी कोयल' - (जैसी परिस्थिति है)। और एकाकी होनेसे उदास (हैं)। कोई सत्संग नहीं है इसलिए उदास...उदास... हैं। कहीं भी चित्त नहीं चोंटता।

[परिणतिमें] **सहज सुखका अनुभव** [रागके] **साथ-साथ वर्तता ही है, इसीलिए ज्ञानी हर्षभावको भी प्रत्यक्ष दुःखरूप जानते हैं। परन्तु जिन्हें सहज सुख प्रकट नहीं हुआ वे किसके साथ मिलानकर हर्षभावको दुःखरूप मानेंगे ?**

(**द्रव्यदृष्टिप्रकाश - १९५**)

पत्रांक - ९

कलकत्ता
५-७-१९५३

धर्मप्रेमी... से निहालचंद्रका धर्मस्नेह।

कार्ड आपका मिला। पूर्व पत्र कुछ चिंतित दशाके समय लिखा गया था, अतः शायद आपको कुछ खयाल-सा हुआ दिखता है।

जिस सामान्य ध्रुवस्वभावमें चिंता व अचिंता - दोनों ही पर्यायका अभाव है, उसके आश्रय पश्चात् बेचारी अल्प चिंताकी स्थिति ही कितनी ?

पूज्य गुरुदेवश्रीकी अनुभवरससे भीगी हुई वाणी वहाँ `कर्ता-कर्म अधिकार'की वर्षा कर रही है - अहा ! आपकी इस हार्दिक भावनाका मैं हृदयसे स्वागत करता हूँ कि मैं भी आप सबोंके संग इस वर्षामें स्नान करूँ।

अरे विकल्प ! यदि तुझे तेरी आयु प्रिय है तो अन्य सबको गौण कर व गुरुदेवके संगमें ले चल, वरना उनका दिया हुआ वीतरागी अस्त्र शीघ्र ही तेरा अंत कर डालेगा।

स्वसंग, गुरुसंग व मुमुक्षुसंगके अलावा दूसरे संगको नहीं इच्छते हुए भी, अरे प्रारब्ध ! विषतुल्य संगमें रहना पड रहा है, खेद है।

पूर्ण चेष्टा है, शीघ्र योग मिलते ही वहाँ आऊँ; परंतु अभी कोई नज़दीक समय दिखाई नहीं देता है, फिर भी प्रयत्न पूरा है।

सबोंको यथायोग्य।

धर्मस्नेही
निहालचंद्र

प्रवचन - ४ दि. १८-०७-१९९१ - पत्रांक-९

धर्मप्रेमी... से निहालचंद्रका धर्मस्नेह।

`कार्ड आपका मिला। पूर्व पत्र कुछ चिंतित दशाके समय लिखा गया था, अतः शायद आपको कुछ खयाल-सा हुआ दिखता है। यानी कि क्या है निवृत्तिके लिए जितना अधिक छटपटाता हूँ उतना अब तो निवृत्तिसे अधिक दूर-सा रहूँगा और प्रवृत्ति करनी पड़ेगी, ऐसा दिखता है, ऐसा (कहते हैं)। अतः जल्दीसे निवृत्ति लेनेकी परिस्थिति, आर्थिक स्थितिको देखते हुए दिखाई नहीं देती है। अतः इन्होंने (पत्र लिखनेवालेने) कुछ लिखा होगा कि आपके पत्र (परसे) आप कुछ ज्यादा ही उपाधिमें हैं, ऐसा लगता है। (इसलिए सोगानीजी लिखते हैं कि,) आपको कुछ खयाल-सा आया हो, ऐसा लगता है।

अब उस पर ज़ोर करते हैं। ये दो भाव जो हैं न, इसके सामने ज़ोरदार बात आती है। **`जिस सामान्य ध्रुवस्वभावमें चिंता व अचिंता - दोनों ही पर्यायका अभाव है, उसके आश्रय पश्चात् बेचारी अल्प चिंताकी स्थिति ही कितनी ?'** चिंता कहाँ तक टिके ? उस चिंताको भूल जाता हूँ। चिंता छूट जाती है। चिंताका विकल्प आता है परंतु वह चिंता छूट जाती है, क्योंकि जिस सामान्य ध्रुव स्वभावमें चिंता व अचिंता जैसा कुछ है नहीं। चिंता भी नहीं है और चिंताका प्रतिपक्ष भी नहीं है। कुछ नहीं है। चिंता-अचिंता कुछ नहीं है। कई लोग कहते हैं न ! हमें अभी कोई चिंता नहीं है, हमें तो आनंद ही आनंद है। कोई उपाधि नहीं है। `साम-दाम-ठाम' (सब

ठीक है)। उसे अचिंता कहते हैं। अतः कहते हैं कि सामान्य स्वभावमें वह भी नहीं है। संयोग आश्रित चिंता भी नहीं है और संयोगके आश्रितकी निरूपाधिरूप परिस्थिति भी वहाँ नहीं है। वहाँ तो दोनों ही पर्यायका अभाव है। उसका आश्रय लेनेके पश्चात् बेचारी अल्प चिंता, कैसी चिंता ? बेचारी और अल्प। उस चिंताकी स्थिति कहाँ तक रहे ? उसके टिकनेका फिर सामर्थ्य ही कितना ? वह तो कबकी चली जाती है।

`पूज्य गुरुदेवश्रीकी अनुभवरससे भीगी हुई वाणी वहाँ `कर्ता-कर्म अधिकार'की वर्षा कर रही है...' देखो ! ये गुरुदेवकी वाणीमें क्या था ? यह बात लेते हैं। अधिकार तो कर्ता-कर्मका चलता है, ऐसे (पत्र लिखनेवालेने) समाचार दिये होंगे। तो कहते हैं कि, कर्ता-कर्मकी वर्षा होती है परंतु अनुभवरससे भीगी हुई वाणीकी वर्षा चलती है। अनुभवरस बहुत भरा है। गुरुदेवकी वाणीमें अनुभवरस बहुत भरा है। उनके दृष्टांतमें भी अनुभव-प्रधानता दिखती है। सिद्धांत समझानेके लिए कुछएक दृष्टांतकी बात करें तो भी उसमें काफी अनुभवप्रधानता होती थी !

गुरुदेव दृष्टांत देते, भगवान अमृतचंद्राचार्यने, कुंदकुंदाचार्यदेवके सूत्रमेंसे किस प्रकार तत्त्वको निकाला है ! इसके लिए एक दृष्टांत देते थे - `बळुकी बाई' (दूध दुहनेवाली औरतके हाथमें ताकत बहुत होती है, उसे गुजरातीमें `बळुकी बाई' कहते हैं) दूध दुहनेका काम करती है न ! तो उस बाईको दूध दुहनेके समय जो अनुभव होता है उस अनुभवकी अभिव्यक्तिके लिए उसकी वाणी, चेष्टामें अनुभवप्रधानता कितनी होती थी ! कितनी अनुभवप्रधानता थी !

`पूज्य गुरुदेवश्रीकी अनुभवरससे भीगी हुई वाणी वहाँ `कर्ता-कर्म अधिकार'की वर्षा कर रही है - अहा ! आपकी इस हार्दिक

भावनाका मैं ह्रदयसे स्वागत करता हूँ कि मैं भी आप सबोंके संग इस वर्षामें स्नान करुँ।' (पत्र लिखनेवाले) ने लिखा होगा कि, गुरुदेवके ऐसे अपूर्व प्रवचन आ रहे हैं, आप जैसे श्रोताकी यहाँ उपस्थिति होनी चाहिए, बजाय इसके आप वहाँ बैठे हो ! आपको तो यहीं रहना चाहिए। (अतः ऐसा कहते हैं कि) आपकी भावनाका अनुमोदन मुझे बहुत आता है कि, मैं भी गुरुदेवकी वाणीकी वर्षामें आप लोगोंके साथ स्नान करता रहूँ ! बरसती वाणीके नीचे बैठकर मैं भी स्नान करुँ। आपकी जैसी भावना है ऐसी ही मेरी भावना है। अतः मैं आपकी भावनाका स्वागत करता हूँ।

ऐसा नहीं लिखते कि, आपको क्या पता हमें कितनी उपाधि हैं ? हमारी जिम्मेवारीको आप क्या जानो ? आप तो वहाँ आनेकी बात करते हो परंतु यहाँ मुझे कितनी उपाधियाँ हैं ! कितनी जिम्मेवारी है ! ऐसा कुछ नहीं लिखा। आपकी भावनाका मैं स्वागत करता हूँ। मुझे भी ऐसा ही भाव रहता है कि, मैं गुरुदेवकी वाणी निरंतर सुनता रहूँ !

`**अरे विकल्प ! यदि तुझे तेरी आयु प्रिय है तो अन्य सबको गौण कर व गुरुदेवके संगमें ले चल,...**' विकल्प तो उदयभाव अनुसार चलते हैं, तो कहते हैं कि, हे विकल्प ! अगर तुझे अब जिन्दा रहना हो तो मुझे गुरुदेवके संगमें ले चल। उनका विकल्प मुझे अधिक हो। इसका अर्थ यह हुआ कि, मुझे विकल्प हो तो गुरुदेवके संगका हो ! दूसरा विकल्प मुझे न हो ! ऐसा कहना है। `**वरना उनका दिया हुआ वीतरागी अस्त्र...**' वरना उन्होंने मुझे एक वीतरागी शस्त्र दिया है - अस्त्र कहो चाहे शस्त्र कहो (दोनों एकार्थ हैं) वह `**शीघ्र ही तेरा अंत कर डालेगा।**' (वरना) फिर तुझे खतम कर डालूँगा। ऐसा तो वीतराग निर्विकल्प समाधिमें आ जाऊँगा कि

विकल्पको तोड़ दूँगा। अतः अब यदि तुझे जिन्दा रहना हो तो गुरुदेवके संगमें ले चल ! मुझे वह प्रिय है। तभी तू जिन्दा रह पायेगा। गुरुदेवके संगमें जानेका विकल्प फिर भी जिन्दा रह पाएगा, वरना मेरा पुरुषार्थ अब दूसरे विकल्पको रहने नहीं देगा। ऐसा भीतरमें ज़ोर लगाते हैं।

(अब लिखते हैं) `**स्वसंग, गुरुसंग...**' भीतरमें आत्माका संग या बाहरमें गुरुका संग, `**व मुमुक्षुसंगके अलावा दूसरे संगको नहीं इच्छते हुए भी, अरे प्रारब्ध ! विषतुल्य संगमें रहना पड़ रहा है, खेद है।**' देखो ! यह परिस्थिति है। तीनका (संग) चाहता हूँ। या तो स्वसंग या गुरुसंग अथवा ऐसे कोई पात्र मुमुक्षुका संग। दूसरे जो समझते न हो, पहचान सकते न हो, उनका संग किस कामका ? वे दूसरी नज़रसे देखेंगे। कोई बात चलेगी तो अन्यथा अर्थघटन करेंगे। (बातको) समझ न सके, पकड़ न सके, क्या करें ? अतः ऐसे किसी मुमुक्षुका संग हो तो ज्ञानीको भी रुचता है कि जो पात्र हो, एकदम पात्र हो और अध्यात्म तत्त्वको ग्रहण कर सके।

श्रीमद्‌जीको सबमें एक सौभाग्यभाई मिल गये। अतः उनके संगकी भावना उन्होंने बारम्बार व्यक्त की है, कि आप हमारे अथाह उपकारी हैं ! आपने हमारे मनका सुख दिया है, अतः हम आपको नमस्कारके अलावा आपके उपकारका बदला कैसे चुका सकते हैं ? बदलेमें आपको और क्या दें ? ऐसी-ऐसी भाषाका प्रयोग किया है। देखो ! सत्संगकी कितनी भावना है !! मालूम है कि ये (स्वयंसे) निम्नकोटिके हैं किन्तु पात्र इतने हैं कि खुदके विकल्पका एक स्थान है। कितना व्यक्त करते हैं !! शिष्य तो गुरुके लिए व्यक्त करे इसमें कोई आश्चर्य नहीं है परंतु गुरुको शिष्यका संग मिलता है तो भी इतना उपकार मानते हैं ! ऐसी बात है ! इसका रहस्य समझने जैसा है।

(यहाँ कहते हैं) `**स्वसंग, गुरुसंग व मुमुक्षुसंगके अलावा दूसरे संगको नहीं इच्छते हुए भी, अरे प्रारब्ध ! विषतुल्य संगमें रहना पड़ रहा है,...**' अभी जो संग है वह तो ज़हर-सा लगता है, ऐसा कहते हैं। `**खेद है।**' (यानी) उसका दुःख है।

`**पूर्ण चेष्टा है, शीघ्र योग मिलते ही वहाँ आऊँ;...**' ऐसा मेरा पूरा प्रयत्न है कि ऐसा (योग) मिलते ही मैं तुरंत आऊँ। `**परंतु अभी कोई नज़दीक समय दिखाई नहीं देता है, फिर भी प्रयत्न पूरा है।**' प्रयत्न तो है, किन्तु अभी तो कुछ दिखता नहीं है कि नज़दीक समयमें मैं वहाँ आ सकूँ।

`**सबोंको यथायोग्य।**' `**धर्मस्नेही निहालचंद्र।**'

देव-गुरुसे कुछ लेना नहीं है। उनके स्वरूपको देखकर `मैं भी इन्हींकी जातिका हूँ' - ऐसा जाननेमें आता है; लेना-देना कुछ नहीं है। दूसरेके साथ लेने-देनेका सम्बन्ध ही नहीं है। अशुद्धपर्यायका दूसरेकी ओर लक्ष्य जाता है। [इतना ही है] **किन्तु दूसरेसे लेन-देनका सम्बन्ध नहीं है।**

(**द्रव्यदृष्टिप्रकाश - २९३**)

पत्रांश - १७

........मोक्षमार्गीको कुटुंबीजनों मध्ये सुख मिलता होवे, यह कल्पना ही गलत है।

``जाल सौ जग-विलास, भाल सौ भुवन वास,
काल सौ कुटुंब काज, लोक-लाज लार सी.''

- बनारसीदासजी

उसे तो निरंतर आत्मरमणता चाहिए। `अरे ! जिसे धार्मिक जनोंके संग भी नहीं रुचते, उसे कुटुंब-संग तो रुच ही कैसे सकता है !' अरे ! विकल्पाश्रित पदार्थसे भी लाभ नहीं, साथ ही विकल्पसे भी लाभ नहीं।

आपने लिखा कि `निमित्त-नैमित्तिक संबंध ऐवो छे के तीव्र भावना होय तो पापनो उदय पलटीने पुण्यनो उदय थई जाय'। विकल्पानुसार पदार्थकी प्राप्ति होना पुण्य नहीं है, वरन् तीव्रता पलटकर मंदता होना पुण्य है। अतः राग छूटने अथवा कम होनेमें सुख है, पदार्थके मिलनेमें नहीं। अतः आत्माश्रित रागकी मंदता होवे, यह ही भावना है। ....

प्रवचन - ५ दि. २५-०७-१९९१ - पत्रांक-१७

`**मोक्षमार्गीको कुटुंबीजनों मध्ये सुख मिलता होवे, यह कल्पना ही गलत है।**' मोक्षमार्गीको कुटुंबियोंके बीच सुख मिले, मिलता होवे - यह कल्पना है। अपनी योग्यता अनुसार जीव कल्पना करता है। खुदकी भी ऐसी योग्यता है न ! कि, उसे कुटुंबके बीच सुहाता है। अपने सगे हो, अपने स्वजन हो, प्रियजन हो, (उनके बीच) अच्छा लगता है। ऐसी एक ज्ञानीके लिये फिर कल्पना हो जाती है। परंतु बनारसीदासजीने जो कहा ऐसी (ज्ञानीपुरुषकी अंतरंग) स्थिति होती है। `**काल सौ कुटुंब काज लोक लाज लार सी।**' कुटुंबके कार्य कालरूप लगे। ऐसी दशा तो आत्मार्थीकी भूमिकामें ही हो जाती है।

जब भी कोई अपने आत्माके (हितके) साधन हेतु दूसरी सब जगहसे उदासीन होकर, उपेक्षित होकर एक निजकार्यमें सावधान होकर संलग्न होता है तब उसे दूसरे-दूसरे उदयके कार्य जो कुटुंबके लिए करने पड़ते हैं, वे बोझरूप लगने लगते हैं। यह एक आत्मार्थीकी भूमिकाका भी लक्षण है - आत्मार्थीका स्वरूप है कि उसे कुटुंबके कार्य करने पड़ रहे हैं। करनेका उत्साह तो नहीं है किन्तु करने पड़ते हों वे भी उसे बोझरूप लगते हैं। फिर ज्ञानीके लिए ऐसी कल्पना करना कि उन्हें कुटुंबीजनोंके बीच बहुत सुहाता होगा ! (यह सिर्फ कल्पना है।) इसके लिए बनारसीदासजीने स्पष्ट किया कि, `**काल सौ कुटुंब काज,...**' (कुटुंबके कार्य) काल जैसे दिखते हैं। ये कहाँ मुसीबत आ पड़ी ? कुटुंबका कार्य कहाँ आ पड़ा ?

ऐसा (लगता है)।

अतः ऐसे जीवोंके कौटुंबिक कार्योंका बोझ दूसरे लोग उठानेका प्रयत्न करते हैं। जैसे कि कोई आत्मार्थी हो तो उसे कहेंगे कि, भाई ! आपको यदि आत्मकार्यके लिए निवृत्ति चाहिये, तो उस निवृत्तिके लिये मदद करनेके लिए हम तैयार हैं। और जिस प्रकार इसमें मदद करते हुए हमें (जो) बोझ उठाना पड़े वह आपके कार्यका बोझ हम उठा लेंगे। आप अगर आत्माका कुछ करते हो तो आप अपने आत्माका विशेषरूपसे (हित) करें ऐसी हमारी अनुमोदना है।' - इसका नाम है वात्सल्य।

`**उसे तो निरंतर आत्मरमणता चाहिये।**' मोक्षमार्गीको तो आत्माकी रमणता चाहिये। और कुछ नहीं चाहिये। `**अरे ! जिसे धार्मिक जनोंके संग भी नहीं रुचते, उसे कुटुंब संग तो रुच ही कैसे सकता है** !' यह अवतरण चिह्न उन्होंने इसलिए किया है, क्योंकि कलकत्ताके (मुमुक्षु) मण्डलसे वे थोड़े अलग हो चुके थे। जब उन्होंने वाचन छोड़ दिया तब उन्हें मुमुक्षुमण्डलमें आनेवाले सामान्य मुमुक्षुओंकी योग्यताका खयाल आ गया। उन्होंने देखा कि, इसमें कोई संग करने योग्य जीव नहीं हैं। भले ही धार्मिकजन हैं फिर भी, धार्मिक दृष्टिसे संगके योग्य नहीं हैं।

मुमुक्षु :- यहाँ `**लोक लाज लार सी**' कहा इसका मतलब क्या ?

पूज्य भाईश्री :- `लोक लाज लार सी' इसमें क्या है ? कि जगतमें लोकलाजकी कीमत बहुत है। `लोकलाज लारसी' कहनेमें बनारसीदासजीका अभिप्राय ऐसा है कि जगतमें लोक-लाजके वश आदमी दबावमें आकर भी (काम) करता है। नहीं करना हो वह दबावमें आकर भी करेगा। दृष्टांत ले तो कोई अनुचित कार्य जीव नहीं करता, उसकी करनेकी इच्छा हो तो भी नहीं करता, क्यों

नहीं करता ? क्योंकि लोगोंकी लाज आड़े आती है।

मुमुक्षु :- लोकसंज्ञा गिने इसे ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, लोकसंज्ञा कहो - लोकलाज कहो (दोनों एक ही हैं)। लोकसंज्ञा थोड़े विस्ताररूप अर्थमें गिनी जाती है। वैसे तो क्या है खुदकी लोकलाजसे जो करना पड़े सो करे। अभिप्रायपूर्वक न करे। कर्त्तव्यरूप अभिप्रायसे न करे। इसप्रकार अत्याधिक कीमत लोगोंको देता है। खुद पर लोकलाजकी कीमतका प्रभाव रहता है कि, जिसके कारण इच्छा विरुद्ध जाकर लोकलाजके खातिर भी करता है। इसकी कीमत जगतमें इतनी अत्याधिक है, जब कि ज्ञानियोंको इसकी कीमत मुखकी लार जितनी है। मुखसे लार गिरती हो तो भले ही गिर जाये उसे वापिस लेनेकी कोई जरूरत नहीं। इस प्रकार लोकलाजकी कोई कीमत नहीं है। मुखकी लार जितनी इसकी कीमत है, ऐसा कहते हैं, इस प्रकारसे इसकी कीमत छुड़ाते हैं। इसकी कोई कीमत नहीं। लौकिक इज्जतकी कोई कीमत नहीं है। अतः यदि ज्ञानीके लिए कोई लोग ऐसा अभिप्राय बना ले कि ये तो बिलकुल मिलनसार नहीं हैं, किसीसे मिलते-झुलते नहीं, ठीक ! भले कहे तो कहे, इससे भी ज्यादा खराब कहना हो तो भले ही कहे। हमें तो भीतरमें अपना काम करना है न ! जिसको जैसा ठीक लगे वैसा कहे उसकी योग्यता अनुसार। उस लोकलाजके खातिर वे अपनी आराधनाको गौण कर दे और दूसरोंके अभिप्रायके अनुकूल चलनेका प्रयत्न करे, ऐसा नहीं बनता।

इस विषयमें तो मेरी थोड़ी अंगत चर्चा हुई है कि, जब उन्होंने (पूज्य सोगानीजीने) यह बात कही कि, मेरे संदर्भमें आप किसीसे कुछ मत कहना। उनके शब्द इस प्रकारसे थे कि 'मैं आशा करता हूँ कि आप मेरे विषयमें किसीसे कुछ नहीं कहेंगे।' उन्होंने देखा

कि मेरे तो यहाँ (सोनगढ़में) ज्यादा संपर्क नहीं हैं, किन्तु इनका तो यहाँ कम-बेशी मात्रामें संपर्क है, दूसरेको बात करेंगे तो प्रसिद्धिका कारण हो जायेगा। अतः शुरूआतमें ही उन्होंने यह बात इन शब्दोंमें कही थी कि, 'मैं आपसे आशा करता हूँ कि आप मेरे विषयमें किसीसे कुछ नहीं कहेंगे।' अब, थे तो वे ज्ञानी लेकिन लोग इन्हें अज्ञानीके रूपमें जानते थे या उनके साथ एक मुमुक्षुके नाते अज्ञानी हो - ऐसा व्यवहार भी करते थे। लेकिन ज्ञानीको वह पसंद है। उसमें उन्हें कोई हरजा नहीं। भले ही अज्ञानी जानकर व्यवहार करे परंतु ज्ञानीके रूपमें प्रसिद्धि होनेके बाद अनेक प्रकारके जो उपद्रव शुरू होते हैं, उस उपद्रवकी उपाधि वे नहीं चाहते थे। और ऐसा था उसमें भी इनकी विचक्षणता है या ज्ञानीका ज्ञानत्व है। अज्ञानीके जैसे रहनेमें भी ज्ञानीका ज्ञानत्व है। अभी तो काल बहुत हीन है, (लेकिन) श्रीमद्जीने १०० साल पहले लिखा है कि, अज्ञानी होकर रहना है, अतः उपद्रवका कोई प्रसंग पैदा न हो।

मुमुक्षु :- दूसरे अनभिज्ञ लोगोंको तो नुकसान हो जाये न !

पूज्य भाईश्री :- इसमें ऐसा है कि, पात्रतावाले ठिकाने आ जाते हैं। पात्रतावाले ठिकाने आ जाते हैं। और प्रसिद्ध हुए तो भी सबको कोई एक सरीखा अभिप्राय है, ऐसा तो अभी भी नहीं देखा जाता। और वे स्वयं भी दूसरोंकी चिंता करने कहाँ जाये ? वे खुद अपनी चिंता करे या दूसरोंकी करें ? मुझे क्या नुकसान होगा, यह विचार पहले करते हैं। उनका ऐसा अभिप्राय नहीं होता कि, मैं दूसरोंका भला कर दूँ या मैं दूसरोंका भला हो उसमें निमित्त बनूँ - ऐसा अभिप्राय नहीं है। (अभिप्राय तो ऐसा होता है कि) मैं तो मेरा करने निकला हूँ, मेरा हित करनेकी किसी एक भूमिकामें मुझे बहुत तीव्र भावना हुई थी, बहुत तीव्र भावना होने पर मेरे हितका प्रसंग भी

आया, और मेरा हित हुआ भी सही; परंतु अभी मेरा पूरा-पूरा हित नहीं हुआ, और पूरा हित करनेकी मेरी शीघ्र इच्छा है तो फिर मैं मेरे काममें लग जाऊँ और ऐसा मेरा काम पूरा करनेमें यदि कोई विक्षेप होनेका प्रकार उत्पन्न होता हो तो इससे मुझे हटकर चलना चाहिये। इससे दूर रहकर सावधानीपूर्वक चलना चाहिये। यदि मैं इससे संभलकर नहीं चला तो उसमें फँसनेकी बारी आयेगी। इसलिए विवेक करते हैं। अपने हित संबंधित विवेक करते हैं।

अतः आखिरके समयमें जब लोगोंका थोड़ा परिचय बढ़ गया था तब भी उन्होंने ऐसी बात कही थी कि, १२-१४ आना निवृत्त हो चुका हूँ। धंधा लड़कोंने संभाल लिया है। कहा कि `छोटी-मोटी बातमें (लड़के) लोग पूछ लेते हैं, बाकी १२-१४ आना निवृत्त हूँ। अभी तो पूर्ण निवृत्ति लेकर बैठ जाना है।' तब मैंने कहा कि `फिर तो सोनगढ़ ही आयेंगे न !' तो उन्होंने कहा, `अभी निर्णय तो नहीं किया है परंतु सोनगढ़ आना हुआ तो भी दो दफे गुरुदेवका व्याख्यान और मैं और मेरा कमरा, ये चर्चा-फर्चा नहीं चलेगी। ' ठीक ! सुबह-दोपहर और शाम चर्चाके लिए सब इकट्ठे हो जाते थे, ऐसा नहीं होगा। कह दिया कि, ये चर्चा-फर्चा फिर मैं चलानेवाला नहीं हूँ। वहाँ मैं निवृत्तिके स्थलमें आऊँगा तो मैं और मेरा कमरा। एक दफे गुरुदेवका व्याख्यान, इसके अलावा मैं कोई प्रवृत्ति नहीं करूँगा। फिर एक बात की थी कि, `भूतकालमें भी मुझे साधर्मिओंका संग छोड़नेमें दिक्कत हुई थी, अभी मुझे कोई परिचय बढ़ाना नहीं है।' अतः उन दिनोंमें तो आते थे लेकिन अंदरमें उनका अभिप्राय क्या था ? १९५४के सालमें अभी तो वाचन (चालू) है फिर भी पत्रमें उनका अभिप्राय क्या निकला है, कि `**जिसे धार्मिक जनोंके संग भी नहीं रुचते,...**' क्योंकि जो आते थे उनकी योग्यताका खयाल

तो आ चुका था। देखा कि कुछएक तो विरोध करते हैं, वह पता होता ही है, ख्याल तो आ ही जाता है कि इसको बात बैठती नहीं है। इसलिए भले ही वह धार्मिक जन कहा जाता हो परंतु उसका संग उन्हें नहीं रुचता। `**उसे कुटुंब संग तो रुच ही कैसे सकता है** !' क्योंकि कुटुंबीजन तो इतना भी नहीं समझते; ये तो फिर भी चर्चा करनेके लिए इकट्ठे होते हैं। कुटुंबियोंमें घरमें स्त्री-बच्चे आदि तो अभी A, B, C, D भी नहीं समझते हैं तो इनके साथ तो कैसे रुचे ?

मुमुक्षु :- जैसे कृपालुदेवका लोग ज्ञानीके रूपमें अनुसरण करते थे वैसे सोनगढ़में चर्चामें आनेवाले व्यक्ति कि जो सोगानीजीकी चर्चामें आते थे वे लोग ज्ञानीके रूपमें अनुसरण करके आते थे या दूसरे विद्वानोंकी जैसे प्रवृत्ति चलती थी वैसे सम्मिलित होते थे ?

पूज्य भाईश्री :- ना, बस ऐसे ही। करीब (दूसरेके) जैसे ही। फिर अंदरमें मनके परिणामका तो पता न चले। परंतु ऐसा तो शायद ही कोई निकले कि जिसे पहचान हो। बाकी सामान्यतः वहाँ तत्त्वज्ञान विषयक प्रवृत्तिमें जो सुनानेवाला हो उसे सुननेवाले मिल जाते हैं। ऐसी एक रूढ़ि है, अतः उस रूढ़िके अनुरूप ही करीब-करीब परिस्थिति थी। चलो ! यहाँ चर्चा चलती है, जाकर सुनें। फिर इनकी तो पद्धति थोड़ी विशिष्ट प्रकारकी थी इसलिए लोगोंका कुतूहल भी बढ़ता था (लेकिन) पहचान होना तो बिलकुल अलग ही बात है, ज्ञानीके रूपमें माने लेकिन ओघसंज्ञासे माने वह दूसरी बात है, न माने वह दूसरी बात है और माने तो ओघसंज्ञासे माने वह भी दूसरी बात है, और पहचानपूर्वक माने यह तो तीसरी बात है।

`**अरे ! विकल्पाश्रित पदार्थसे भी लाभ नहीं, साथ ही विकल्पसे**

भी लाभ नहीं।' विकल्पके विषयभूत कोई पदार्थसे आत्माको लाभ नहीं है और ऐसे विकल्पोंसे भी इस आत्माको कोई लाभ नहीं। - इस अभिप्रायमें वे खड़े हैं।

आपने लिखा कि `निमित्त-नैमित्तिक संबंध एवो छे के तीव्र भावना होय तो पापनो उदय पलटीने पुण्यनो उदय थई जाय।' (यानी कि) आपका पापका उदय है इसलिए आप गुरुसंगमें नहीं आ सकते हो परंतु यदि सचमुचमें आपकी तीव्र भावना होती तो आपका पापका उदय पलटकर पुण्यका उदय हो जाये, तो आपको गुरुदेवका संग मिले, परंतु आपकी भावनामें क्षति है। ठीक ! थोड़ा उलाहना देते थे। उलाहना बहुत देते थे। उस बातका उन्होंने उत्तर दिया है कि, `**विकल्पानुसार पदार्थकी प्राप्ति होना पुण्य नहीं है,...**' क्या (कहा) ? पुण्य किसे कहें ? कि विकल्पानुसार बाहरमें पदार्थकी प्राप्ति हो जाये इसलिए पुण्य है, ऐसा नहीं है। `**वरन् तीव्रता पलटकर मंदता होना पुण्य है।**' (इस वाक्यमें) कषाय शब्द अध्याहार है। कषायकी तीव्रता मिटकर मंदता होना वह पुण्यभाव है और कषायकी तीव्रता होना पापभाव है। `**अतः राग छूटने अथवा कम होनेमें सुख है,...**' उस दृष्टिसे देखे तो रागका रस कम हो, या रागका रस मिट जाये उसमें आत्माको सुख है। `**पदार्थके मिलनेमें नहीं।**'

मुमुक्षु :- पुण्यकी व्याख्या कैसी की है !

पूज्य भाईश्री :- कितनी तात्त्विक व्याख्या की है !! ये भी विशिष्टता है। ज्ञानियोंके ज्ञानकी यह विशिष्टता है कि, जिसे तत्त्वदृष्टि होती है उसकी बात भी कोई दूसरे ढंगसे आती है। और उसमें तत्त्व भरा होता है।

`**अतः आत्माश्रित रागकी मंदता होवे, यह ही भावना है।**' इसलिए आत्माका आश्रय करते-करते रागका रस कम हो जाये - ऐसी भावना है। दूसरी भावना नहीं।

कलकत्ता

पत्रांक - १८

९-९-१९५५

आत्मार्थी... धर्मस्नेह।

पत्र एक आज दिन आपने किसीके मार्फत भिजवाया था सो मिला है, पहले भी अजमेरमें मिला था। कई कारणोंसे जवाब लिखनेकी वृत्ति रुक गई, व अब भी पत्रादिक लिखनेको मन नहीं करता है। हमारी तरफके आपको विकल्प होते हैं; परंतु विकल्पोंमें तो जागृति सदा हेय होनी चाहिए, चाहे वह साक्षात् तीर्थंकरके प्रति ही क्यों न होवे। निजद्रव्यमें अस्तित्वका निरंतर श्रद्धान व सहज अनुभव रहनेसे, सहज ही विकल्प टूटने लग जाते हैं व सहज निर्विकल्प स्वाद आने लगता है, जिसके आस्वादन किये बाद विकल्पोंका रस सहज ही ठण्डा पड़ने लग जाता है। हमारा तो मन निज चैतन्यबिंबके अलावा अब कहीं नहीं जाना चाहता। लौकिक दृष्टिसे हमारा एक-डेढ़ वर्षसे अधिकका समय तीव्र असाताकी दशाओंमें रहा, अतः इस कारणसे भी पत्रादिककी वृत्ति ओछी रही। हमारी तो यह ही इच्छा है कि आपके विकल्प भी और कहीं इधर-उधर न जाकर अपनी निज चैतन्यप्रतिमाको घड़ने लग जायें, तो वस्तुका आश्रय होते ही अपूर्वता प्रकट होवे व हमारी तरफ़के निरर्थक विकल्पोंका अंत हो जाये।

हमारा पत्र आदि न मिले तो कोई ख़याल नहीं करना चाहिए। हमारी वहाँ आनेकी जिज्ञासा काफ़ी है, अभी योग्यता नहीं है, आने पर स्पष्ट कर सकेंगे।

श्री गुरुदेवका प्रसाद दैनिक यहाँ आता है। उनका शारीरिक स्वास्थ्य ठीक होगा।...

धर्मस्नेही

निहालचंद्र

प्रवचन - ६ दि. २७-०७-१९९१ - पत्रांक-१८

`**आत्मार्थी... धर्मस्नेह** !

पत्र एक आज दिन आपने किसीके मार्फत भिजवाया था...' सोनगढ़से कोई मुमुक्षु कलकत्ता जानेवाले होंगे तो उनके साथ पत्र भिजवाया होगा, `**सो मिला है, पहले भी अजमेरमें मिला था। कई कारणोंसे जवाब लिखनेकी वृत्ति रुक गई, व अब भी पत्रादिक लिखनेको मन नहीं करता है।**' (अर्थात्) कुछएक कारणवश अभी भी पत्र लिखनेका मन नहीं होता। `**हमारी तरफके आपको विकल्प होते हैं; परंतु विकल्पोंमें तो जागृति सदा हेय होनी चाहिए,...**' प्रासंगिक (लिखा) है। पत्र लिखनेवालेको विकल्प आता है (इसलिए यों कहते हैं कि) आपको मेरी तरफका विकल्प आता है इसलिए आप पत्र लिखते हो; आपके विकल्पको और आपके पत्रको देखकर ऐसा लगता है कि आपकी उस कार्यमें सावधानी है - जागृति है। जितनी जागृति और सावधानी आपकी अपने प्रति होनी चाहिए, जो नहीं है परंतु मेरे प्रति आपकी सावधानी है, परंतु `**विकल्पोंमें तो जागृति सदा हेय होनी चाहिए,...**' (अर्थात्) स्वरूपमें जागृति होनी चाहिए कि जिससे विकल्प हेय हो जाये। ऐसा उलटा-सुलटा आता है।

मुमुक्षु :- ऐसे विकल्प भी हेय हो जाते हैं ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, अपने स्वरूपकी जागृति ऐसी होनी चाहिए कि विकल्पका स्थान हेयकी जगह आये, हेयताको प्राप्त हो।

मुमुक्षु :- जैसे कृपालुदेवकी पत्र लिखनेकी वृत्ति अटक गई थी

वैसी ही इनकी दशा भी पत्रमें आयी है !

पूज्य भाईश्री :- हाँ, (ऐसी ही दशा) हो गई है। परप्रत्ययी खिँचाव उतना कम होना चाहिए कि, प्रवृत्ति करनेमें बोझा लगे, उत्साह आनेके बजाय बोझा लगे। सावधानी हो तो उत्साह आता है, वरना बोझा लगता है।

(आगे लिखते हैं) `**चाहे वह साक्षात् तीर्थंकरके प्रति ही क्यों न होवे।**' (अभी) विकल्प तो आप मेरे प्रति करते हो, परंतु साक्षात् तीर्थंकरके प्रतिका विकल्प क्यों न हो ? विकल्पमें जागृति नहीं होनी चाहिए। `**निजद्रव्यमें अस्तित्वका निरंतर श्रद्धान व सहज अनुभव रहनेसे, सहज ही विकल्प टूटने लग जाते हैं व सहज निर्विकल्प स्वाद आने लगता है, जिसके आस्वादन किये बाद विकल्पोंका रस सहज ही ठंडा पड़ने लग जाता है।**' विकल्पोंका रस किस प्रकार ठंडा पड़ता है या किस तरह विकल्प प्रत्ययी जागृति कम हो, ये बात की है। यहाँसे तत्त्वज्ञान लिया है कि, `**निजद्रव्यमें अस्तित्वका निरंतर श्रद्धान...**' (अर्थात्) अपने स्वरूप अस्तित्वका निरंतर श्रद्धान - श्रद्धाका विषय अस्तित्वग्रहण है। `**व सहज अनुभव रहनेसे,...**' (अर्थात्) अविनाभावीरूपसे अनुभव साथमें रहता है। श्रद्धाके साथ सहज अनुभव रहता है। `**व सहज अनुभव रहनेसे,...**' (यानी कि) ऐसे दो प्रकारके परिणाम रहनेसे, `**सहज ही विकल्प टूटने लग जाते हैं...**' (अर्थात्) चारित्रगुणकी पर्यायमें जो विकल्प है उसकी टूटनेकी स्थिति आती है। `**व सहज निर्विकल्प स्वाद आने लगता है, जिसके आस्वादन किये बाद विकल्पोंका रस सहज ही ठंडा पड़ने लग जाता है।**' और जैसे ही अपने निर्विकल्प स्वरूपका स्वाद आया, अनुभव आया कि इससे विरुद्ध ऐसा जो विकल्प, उसका रस तो सहज ही ठंडा पड़ने लगता है। उसमें फिर रस नहीं आता। `**विकल्पोंका रस सहज**

ही ठंडा पड़ने लग जाता है।' रस ठंडा होते ही विकल्प अपने आप पतले होते-होते कम होने लगते हैं। ज्ञानी क्यों प्रवृत्तिमेंसे निवृत्तिमें आते हैं, ये उनकी अंदरकी Line से विचार किया जाये तो ये परिस्थिति है। ज्ञानी भी निवृत्ति लेते हैं न ! और दूसरे जीव भी निवृत्ति लेते हैं। क्योंकि जब ज्ञानी निवृत्ति लेते हैं तो हमें भी लेनी चाहिए। (परंतु) ऐसा नहीं है। उनको (ज्ञानीको) निवृत्तिमें आनेका कारण यह है कि उन्हें विकल्पोंका रस ठंडा पड़ गया है। अतः प्रवृत्तिमें उन्हें रस नहीं आता। इसलिए प्रवृत्तिके जो विकल्प हैं वे उन्हें दुःखदायी भासित होते हैं अतः उन्हें छोड़नेकी वृत्ति रहती है। वृत्तिका प्रकार छोड़नेका रहता है। फिर बादमें सहज ही ऐसा योग आये तो छूट जाती है। बाहरमें ऐसा ही योग आता है। (स्वयं) कर्ता-हर्ता नहीं होते, परंतु ऐसा ही कोई पुण्ययोग, भावनाके साथ कुदरत बंधी हुई है इसलिए निवृत्ति योग आता है। और जब निवृत्तियोग आता है तब देशचारित्र अथवा सर्व (सकल) चारित्र अंगीकार करते हैं। निवृत्ति लेना अच्छा है लेकिन अगर इसका सदुपयोग किया जाये तो। जीव यदि प्रवृत्तिसे निवृत्त होकर इसका सदुपयोग न करे तो शायद सांसारिक प्रवृत्तिमें जितना नुकसान नहीं करता, इससे अधिक नुकसान कर बैठे तो इसमें आश्चर्य नहीं ! निवृत्तिवालेको खास करके यह एक (बात)का जोखिम व जिम्मेवारीकी गंभीरता समझकर विचार करने योग्य है। जो-जो मुमुक्षुने अपनी प्रवृत्ति छोड़कर निवृत्ति ली हो उसे यह खास विचार करने योग्य है कि, अगर इस (निवृत्ति)में हमारे परिणामकी गति स्वरूप लाभके प्रति चालू न हुई तो कहीं न कहीं दूसरे प्रकारसे फँसना व नुकसान होना अनिवार्य हो जायेगा। अतः आत्महितके लक्ष्यसे निवृत्ति ली जाये तो मुमुक्षुतामें भी उपकारी है। जबकि ज्ञानीको तो निर्विकल्परसके आस्वादनके

कारण विकल्पका रस नहीं सुहाता है इसलिए वे सहज निवृत्तिमें आते हैं।

`**हमारा तो मन निज चैतन्यबिंबके अलावा अब कहीं नहीं जाना चाहता।**' अतः हुआ यों कि शुरूआतमें जब खुद सोनगढ़ छोड़कर आये तब जो सोनगढ़के विकल्प रहते थे वह कम हो गये। सितंबरका यह पत्र है, ९ सितंबर १९५५के पत्र परसे ऐसा लगता है कि अब उनका सोनगढ़ आनेका विकल्प ज़ोर नहीं करता है। खुदने जब देखा कि, कुदरतकी परिस्थिति कोई ऐसी है कि, (सोनगढ़) जानेका योग कोई बैठेगा, ऐसा नहीं लगता। आर्थिक परिस्थिति ऐसी है, कुटुंबकी परिस्थिति कोई ऐसी है कि, कुटुंब बहुत बड़ा था - चार लड़के, चार लड़कियाँ - आठ (और वे और उनकी धर्मपत्नी) इसप्रकार परिवार (बड़ा था), और आर्थिक स्थिति कमज़ोर थी। अतः देख लिया कि इसमें दूसरा कोई खर्च करना, ये नामुमकिन है। ये देखकर खुद अंतर साधनामें इतने ज़ोरसे आये हैं कि, परिणति बहुत जम गई थी। परिणतिको देखे तो हृदयसे बहुमानका उछाला आ जाये, उछल पड़े !! ऐसी उनकी परिणति जम गई थी। ये इधरसे मालूम पड़ता है - इस पत्र परसे (दिखता) है कि, विकल्पोंका रस स्वरूपके आस्वादनके आगे ठंडा पड़ता जाता है, स्वरूप श्रद्धान और स्वरूप अनुभवसे विकल्प टूटते जाते हैं। स्वरूपका सहज निर्विकल्प आस्वाद है वह विकल्पोंके रसको सहज-सहज ठंडा करता रहता है। `**हमारा तो मन निज चैतन्यबिंबके अलावा अब कहीं नहीं जाना चाहता।** अब तो यहीं जमे रहो ! अब कहीं नहीं जाना है। `**हमारा तो मन निज चैतन्यबिंबके अलावा अब कहीं नहीं जाना चाहता।**' अब खुद इस परिस्थितिमें आ गये हैं क्योंकि बाहरकी परिस्थितिका खयाल आ गया। फिर उन्हें कोई कर्ता-हर्ता होनेका ज़ोर तो आ

नहीं सकता, जिसे कर्ता-हर्ता होना हो उसे ज़ोर आता है, जिसको संयोगोंका कर्ता-हर्ता होना ही नहीं, उसे तो ज़ोर आ ही नहीं सकता, क्योंकि सहज उदयका ज्ञान कर लेते हैं कि अभी इसप्रकारका उदय चल रहा है या इसमें इतनी शक्यता है, इतनी अशक्यता है, जब अशक्यको शक्य करना मेरा काम ही नहीं तो फिर मैं अंतरमें ही क्यों न उतर जाऊँ ? वहाँ - बाहरमें ज़ोर करनेके बजाय मैं अंदरमें ही न उतर जाऊँ ? बस ! सीधी-सी बात है ! इस ज़ोरका उपयोग अंदरमें जानेके लिए ही क्यों न करूँ ! ऐसा (कहते हैं।) इसलिए ऐसा कहते हैं कि '**अब...**' 'अब' शब्द इस्तेमाल किया है। अब हमारा मन निजचैतन्यबिंबके अलावा कहीं जाना नहीं चाहता। अब तो मनमें ऐसा रहता है कि, इस निजचैतन्यबिंबमें ही ठहरके जम जाऊँ ! अब जब ठहरते ही हैं, ठहर सकते हैं और अच्छी तरह ठहर सकते हैं, फिर क्यों न अब अंदर ही रह जावे? ये उन्होंने, एक तो गुरुदेवके सत्संगका वियोग था दूसरा व्यवहारमें कुटुंब-परिवार और व्यापारका संयोग था फिर भी - दोनों प्रकारकी बाह्य प्रतिकूलता थी फिर भी अंदरमें अनुकूलता बना ली। इसी प्रतिकूलताको उन्होंने भीतरमें अनुकूलता बना ली ! (इसप्रकार उन्होंने) बहुत काम किया है !! इन बरसोंमें यानी कि १९५५ से १९५९ तक उन्होंने बहुत काम किया है !!

पहलेसे ही उन्होंने ऐसा लिखा है कि, आपका एक पत्र अजमेर मिला था, अभी भी यह कोई सोनगढ़से कलकत्ता आया है उनके (द्वारा) मिला है, परंतु यहाँ कुछएक कारणोंकी वजहसे लिखनेकी वृत्ति ही अटक गई है। इसका कारण यह है कि, उन्होंने अपने (अंदरमें) जो जमावट की है उस (बातको) खोलते नहीं हैं। परंतु कुछ कारणवश मेरी पत्र लिखनेकी वृत्ति अटक गई है (ऐसा लिखते

हैं)। श्रीमद्‌जी लिखते हैं न कि, लिखा हुआ पत्र पड़ा रहता है ! पहुँच लिखनेका भी विचार नहीं आता है, मन नहीं होता, क्या (लिखते हैं) ? अंदरमें परिणति ऐसी चलती है कि, प्रवृत्तिका इतना बोझ लगता है ! थोड़ी प्रवृत्तिका भी इतना बोझ लगता है। कोई तर्क करे कि, वे तो दुकान पर जाकर बैठते थे ! (तो इसका जवाब ऐसा है कि,) उनको दुकान पर जाना पड़ता था लेकिन इसके सामने निर्जरा कितनी करते थे ! यह एक गहन विषय है !! साधारण जीव समझ न पाये इतना गहन विषय है !! कैसे उदयको भोगते हैं !! ज्ञानीपुरुष उदयका वेदन करते हैं, माने क्या? अगर ये बात समझमें आ जाये तो ज्ञानीपना समझमें आ जाये और (एकबार) ज्ञानीपना समझमें आ जाये तो दुबारा ज्ञानीपना समझना न पड़े । बादमें ही आत्मा समझमें आता है !! ऐसा यह विषय है।

अतः (यहाँ) लिखते हैं कि, पत्र लिखनेकी वृत्ति छूट गई है। और अभी भी पत्र लिखनेका मन नहीं होता है। (भले ही) पत्र लिखता हूँ परंतु मन नहीं होता। चौदह महीनेके बाद आपको पत्र लिखता हूँ (परंतु) अब मन नहीं होता है। क्योंकि स्वरूप श्रद्धान, अनुभव और ये रसास्वादन चलता है, (अतः) अब तो इस निज चैतन्यबिंबको छोड़कर इसके अलावा कहीं भी हमारा मन जाना नहीं चाहता। अंदरमें जम जाये (ऐसा ही होता है)।

मुमुक्षु :- ज्ञानियोंका ऐसा उग्र पुरुषार्थ नमन करने योग्य है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, विशेषरूपसे नमन करने योग्य है। ज्ञानीका पुरुषार्थ तो जिसे पुरुषार्थ प्रगट करना हो उसके लिए तो नमन करने योग्य है, आदर करने योग्य है, विनय करने योग्य है। ज्ञानी दूसरे ज्ञानीको वंदन क्यों करते हैं ? उनका पुरुषार्थ देखकर वंदन करते हैं ! गुरुदेवने क्यों वंदन किया ? (वरना सोगानीजी) तो

उनके शिष्य थे। पत्रमें तो भक्ति करते हैं, क्या नहीं मालूम है उन्हें ? क्या उन्होंने पत्र नहीं पढ़े थे ? पत्र तो पढ़े हैं फिर ऐसा क्यों कहा ? (उनका) पुरुषार्थ देखा है, और कुछ नहीं। पुरुषार्थ देखकर तो ज्ञानी वंदन करते हैं ! (तो) मुमुक्षु (वंदन) करे इसमें क्या बड़ी बात है ?

`**हमारा तो मन निज चैतन्यबिंबके अलावा अब कहीं नहीं जाना चाहता। लौकिक दृष्टिसे एक-डेढ़ वर्षसे अधिकका समय तीव्र असाताकी दशाओंमें रहा,...**' यानी कि क्या है कि, बाहरमें प्रतिकूलता बढ़ी तो अंदरमें पुरुषार्थ बढ़ाया है। ये एक सहज परिस्थिति होती है। बाहरमें प्रतिकूलताका उदय बढ़े कि, अंदरसे पुरुषार्थ ज़ोरपूर्वक बाहर आये ! `**अतः इस कारणसे भी पत्रादिककी वृत्ति ओछी रही।** अतः एक कारण ये भी साथमें रहा है कि (जिस कारणसे) उनको पत्र लिखनेकी वृत्ति सहज नहीं आती। क्योंकि उसवक्त पुरुषार्थपूर्वक सामना करनेके लिए सारे परिणाम जो (स्वरूपमें) केन्द्रित होते हैं, इस कार्यके बीच पत्रादि लिखना यह एक बड़ा विक्षेप लगता है। वास्तविक परिस्थिति ऐसी उत्पन्न हो आती है कि, जब कोई ज्ञानीको पूर्वकर्मके उदयवशात् बाहरमें प्रतिकूलताएँ - असाता, निर्धनता और दूसरे-दूसरे अनेक प्रकार भी खड़े होते हो, अनेक प्रकारकी - कोई न कोई प्रतिकूलताओंके प्रकार उत्पन्न होते हो, तब भिन्न ऐसी परिणतिमें विशेष उग्रता आती है। भिन्न तो हुए ही हैं, परंतु उसमें विशेष उग्रता आती है। और जहाँ-जहाँ उन्हें जुड़ना पड़ता है वहाँ विशेष-विशेष पुरुषार्थपूर्वक वे उदयको वेदते हैं - भिन्न पड़ते हैं। वेदते हैं अर्थात् भिन्न पड़ते हैं। क्योंकि विशेष पुरुषार्थ करने पर ही भिन्न हो सकते हैं। वहाँ (वैसे उदय प्रसंगमें) वर्तमान पुरुषार्थ उतनी ही मात्रामें रहे तो भिन्न नहीं हो सकते (और) वे प्रतिकूलताके असरमें

आ जायेंगे। (लेकिन) ज्ञानी प्रतिकूलताके असरमें नहीं आते। और इसका कारण उनका उस वक्तका विशेष पुरुषार्थ है। उस वक्त विशेष पुरुषार्थ करनेके लिए, वे सभी परिणामोंको उस विषयमें केन्द्रित करते वक्त सब कुछ गौण कर देते हैं। पत्र लिखना, दूसरा-तीसरा सब गौण कर देते हैं। अतः उस वक्त ये सब - पत्र लिखना, जवाब देना (इन सबमें) कहीं मन नहीं लगता। वह विक्षेप-सा लगता है। उनको जो निजकार्य करना है न ! उसमें विक्षेप पड़ता है। इसलिए ऐसा (लिखते) हैं।

`**हमारी तो यह ही इच्छा है कि आपके विकल्प भी और कहीं इधर-उधर न जाकर अपनी निज चैतन्यप्रतिमाको घड़ने लग जायें,...**' (अर्थात्) अंदरमें जो निज चैतन्यप्रतिमा है उसे जैसे पत्थरमेंसे टाँकीसे खुदाई करके पूरी प्रतिमा प्रगट करते हैं, वैसे सामर्थ्यमेंसे आराधन करके पूरी प्रतिमा पर्यायमें प्रगट करो ! देखो ! कैसी भाषा आयी है ! आपके विकल्प अन्यत्र नहीं जाकर निज चैतन्यप्रतिमाको घड़ने लग जाये तो अच्छा है ! `**तो वस्तुका आश्रय होते ही अपूर्वता प्रगट होवे...**' (अर्थात्) वस्तुका आश्रय होते ही आपको भी अपूर्वता प्रगट होगी। `**व हमारी तरफके निरर्थक विकल्पोंका अंत हो जाये।**' यानी कि, हमारे प्रतिका आपका विकल्प तो निरर्थक है, वह कोई सार्थक नहीं। हमारा तो सहज योग हो गया तो आ जायेंगे, सहजरूपसे योग न हुआ तो (नहीं आयेंगे)। कितने समय तक नहीं आ पायेंगे, यह कुछ नहीं कह सकते। अतः यह जो ढीला छोड़ दिया है उसमें (सोनगढ़ आनेमें) कई बरसों गुज़र गये।

`**हमारा पत्र आदि न मिले तो कोई खयाल नहीं करना चाहिए।** श्रीमद्जी जैसा लिखते हैं वैसा ही हुआ है। हमारा पत्र मिले, न मिले, देरसे मिले तो आप कोई विकल्प मत करना। `**हमारी वहाँ**

आनेकी जिज्ञासा काफी है, अभी योग्यता नहीं है, आने पर स्पष्ट कर सकेंगे।' ये बातें रूबरूमें करेंगे, वहाँ आनेकी मेरी भावना खतम हो गई है, ऐसा नहीं है। इधर जिज्ञासा माने भावना। भावना तो है लेकिन अभी (वहाँ आनेकी) योग्यता नहीं दिखती है अर्थात् परिस्थिति नहीं दिखती है। परिस्थिति है सो निमित्तप्रधान बात है (और) योग्यता है वह उपादानप्रधान बात है। जिस परिस्थितिमें रहना पड़ता है, उस परिस्थितिमें रहनेकी योग्यता है इसलिए रहना पड़ता है। ऐसा कहते हैं।

`**श्री गुरुदेवका प्रसाद दैनिक यहाँ आता है।**' सद्‌गुरु प्रवचन प्रसाद दैनिक आता है। `**उनका शारीरिक स्वास्थ्य ठीक होगा।**' उसमें गुरुदेवके स्वास्थ्य आदिके समाचार भी बराबर आते रहते थे।

मुमुक्षु :- उस जमानेमें कलकत्तासे सोनगढ़ आनेके लिए कितने पैसे लगते होंगे ? आने-जानेका सौ-डेढ़सौ रुपया लगता होगा। इतनी भी व्यवस्था नहीं है। तो क्या इतनी दिक्कत होगी ?

पूज्य भाईश्री :- सेनेटोरियममें रहते थे, ये क्या सूचित करता है ? होटलमें तो किराया देना पड़े। धर्मशालामें, सेनेटोरियममें इतना खर्च नहीं लगता है। इसका अर्थ क्या हुआ ? कि खर्च करनेकी व्यवस्था नहीं थी। (साथ ही) अंदरमें परिणामकी पुकार कैसी थी ? कि `इस सत्तर लाखकी आबादीमें मैं अकेला ही सुखी हूँ !' उन दिनों कलकत्ताकी आबादी सत्तर लाखकी थी। तो कहते हैं कि, मैं अकेला ही सुखी हूँ। ऐसी (बात) है। ज्ञानीको संयोगाश्रित निर्धनता-सधनतामें सुख-दुखका हिसाब-किताब नहीं होता।

मुमुक्षु :- किसीको स्टेशन छोड़ने जाना हो या दूसरे कामसे गये हो तो कलकत्ताके स्टेशनसे चलकर घर आ जाते।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, चलते हुए आ जाते। हावड़ासे रिकशा करके नहीं लौटते थे वरना वहाँ तो बिहारी लोगोंकी हाथ रिकशा सस्तेमें मिलती है। ट्राममें एक आना लगता था (फिर भी) चलकर घर लौटते थे। न तो ट्राममें बैठते थे न रिकशामें बैठते। हमें तो बाहरका कितना साधन - सहूलियत - अनुकूलता मिले तब धर्म करना है, यह विचार करने जैसा विषय है। कोई प्रतिकूलता व उपाधि न हो तो हम (धर्म) करें वरना कैसे करें ? ऐसा कहेंगे, कि अभी उपाधि है, क्या विचार करें ? अभी उपाधि है इसलिए अभी नहीं होगा। यह रुचिका अभाव सूचित करता है।

प्रश्न :- राग ज्ञेय है, कि दुःखरूप है ?

उत्तर :- इधर (स्वभाव में) **आया तो राग ज्ञान में ज्ञेयरूप जानने में आता है, और वेदन में दुःखरूप लगता है।** (एक ही समय में ज्ञान के `जाननेरूप' व `वेदनेरूप' दो प्रकार के धर्म प्रगट हैं। `जाननेरूप धर्म' राग को मात्र ज्ञेयरूप जानकर ज्ञाताभाव से वर्तता है। `वेदनरूप धर्म' वेदन करता है, तब ज्ञाताभाव होनेपर भी राग की आकुलता का वेदन दुःखरूप लगता है। इस प्रकार ज्ञान के दोनों धर्म एक साथ वर्तते हैं, यही अनेकांत है।) (**द्रव्यदृष्टिप्रकाश - ३३२**)

पत्रांश - १९

........जिस आत्मद्रव्यमें परिणाम मात्रका अभाव है उसमें जम गया हूँ। परिणमन सहज, जैसा होता है, होने दो; हे गुरुदेव ! आपके इन वचनोंने अपूर्व निश्चलता पैदा कर दी है। चञ्चलता व निश्चलता तो परिणाममें है, मैं नित्य हूँ, मेरेमें नहीं, यह अनुभव अपूर्व है। परिणाम क्षण-क्षण निराकुलताकी वृद्धि पामते हैं। ``तो पण निश्चय राजचंद्र मनने रह्यो, गुरु आज्ञाए थाशुं ते ज स्वरूप जो।'' सम्यक् पुरुषार्थसे या तो पुण्ययोग होकर, अनुकूलता प्राप्त होकर राग टूटे अथवा पुण्यके अभावमें वीतरागता बढ़ कर राग टूटे। राग टूटना निश्चित है, क्योंकि श्रद्धाने राग-अरागरहित स्वभावका आश्रय लिया है व वीर्यकी क्षण-क्षण उधर ही उधर सहज उन्मुखता होनेसे ज्ञान-आनंदमयी अरागी परिणाम ही वृद्धिगत होंगे, यह नियम प्रत्यक्ष अनुभवगम्य है।

अभी रात्रिके आठ बजे हैं, मंदिरजी जानेका समय है अतः बंद करता हूँ।...

सबको धर्मस्नेह।

धर्मस्नेही
निहालचंद्र

प्रवचन - ७ दि. २७-०७-१९९१ - पत्रांश-१९

अब (इस पैराग्राफसे) तत्त्वका विषय लेते हैं। `**जिस आत्मद्रव्यमें परिणाम मात्रका अभाव है...**' मूलमें तो (स्वयं जिस प्रकारसे) जम गये हैं वह इसी तरह जम गये हैं। क्या (लिखते हैं) ? `**जिस आत्मद्रव्यमें परिणाम मात्रका अभाव है,...**' भावना, साधना सब इसमें आ गया। `**जिस आत्मद्रव्यमें परिणाम मात्रका अभाव है उसमें जम गया हूँ।**' यह उन्होंने स्थिति लिखी है कि, उसमें जम गया हूँ। ये तीन सालमें इसमें जमावट की है (कि) जिसमें परिणाममात्रका अभाव है। साधना होती है उसका ज्ञान करता हूँ; भावना आती है उसका ज्ञान करता हूँ, दूसरे परिणाम होते हैं इसका ज्ञान करता हूँ। (बाकी मैं तो) यहाँ ही जम गया हूँ।

`**परिणमन सहज, जैसा होता है, होने दो;...**' जैसा परिणमन सहज चले उसे होने दो, मैं यहाँ जम गया हूँ। (परिणाम) जायेंगे कहाँ ? उड़-उड़कर पतंग जायेगी कहाँ ? डोरी तो मेरे हाथमें है। जायेंगे कहाँ ? कभी इधर गुलाँट खाये कभी उधर गुलाँट खाये, (लेकिन) अरे...! कुछ नहीं, डोरी मेरे हाथमें है। ऐसी (बात) है। `**हे गुरुदेव ! आपके इन वचनोंने...**' अब देखो ! है तो पुरुषार्थयुक्त परिणमन खुदका (लेकिन) डाल दिया गुरुदेव पर ! `**हे गुरुदेव ! आपके इन वचनोंने अपूर्व निश्चलता पैदा कर दी है।**' मुझमें तो आपके वचनोंने कोई अपूर्व निश्चलता - अपूर्व स्थिरता पैदा कर दी है। बहुत जमावट की है ! बहुत माने गजबकी जमावट की है !!

इसमें एकावतारीपना (प्रगट) कर दिया !! `**हे गुरुदेव ! आपके इन वचनोंने अपूर्व निश्चलता पैदा कर दी है। चंचलता व निश्चलता तो परिणाममें है, मैं नित्य हूँ, मेरेमें नहीं,...**' ये चंचलता और निश्चलता भी मेरेमें नहीं, मैं तो नित्य हूँ। वह प्रश्न भी मुझे नहीं रहता। `**मैं नित्य हूँ, मेरेमें नहीं यह अनुभव अपूर्व है।**' यह अनुभव अपूर्व है।

मुमुक्षु :- अमूर्तस्वरूप मूर्तस्वरूप जैसा दिखता है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, मूर्ति ही, साक्षात् मूर्ति ही (देख लो) !! वह विषय ही पूरा अलग है। जो परिणाम स्वाभिमुख होते हैं, स्वके अभिमुख होते हैं, उसमें स्वरूप प्रगट ही है ! सामान्यतया जीव ऐसा कहता है कि, मेरा स्वरूप अप्रगट है और मुझे प्रगट करना है, (यहाँ) कहते हैं, स्वरूपको प्रगट करनेका प्रश्न ही नहीं है। परिणाम जो परसन्मुख है वह स्वाभिमुख हो जाये तो स्वरूप तो प्रगट ही है। स्वरूपको प्रगट करनेका प्रश्न ही नहीं है। वास्तवमें तो (स्वरूप) प्रगट-अप्रगटके अनउभय स्वरूप है। ऐसा प्रगट है कि जिसे प्रगटता या अप्रगटताकी विविक्षा या अपेक्षा लागू नहीं होती। ऐसा अनुभय स्वरूप प्रगट है। परंतु समझानेके लिए ऐसा कहा कि, स्वरूप प्रगट है। वास्तवमें तो स्वरूप नित्य या अनित्य दोमेंसे एक भी नहीं, अनउभय स्वरूप है, परंतु समझानेके लिए नित्य है ऐसा कहना पड़ता है। एक तर्क करें (कि) यदि अनउभयस्वरूप न होता बल्कि नित्य होता तो पर्यायमें दिखा कहाँसे ? ज्ञानलक्षणमें आया कहाँसे ? उपयोग लक्षणमें आया कहाँसे ? क्योंकि वह तो अनित्य है। वरना ऐसे कहेगा कि स्वरूप तो नित्य है, नित्यमें फिर अनउभय स्वरूप क्यों लेते हो? अनित्यमें लेना हो तो लो लेकिन नित्यमें ऐसी बात क्यों (करते हो)? नित्यको व्यवहारनयका पक्ष क्यों कहा ? पंचाध्यायीमें एक अपेक्षा (ली) है कि, नित्य भी व्यवहारनयमें

जाता है। अनित्य तो व्यवहारनयमें जाता है परंतु नित्य पक्ष भी व्यवहारनयमें (जाता है)। क्योंकि भेद पड़ा। तो कहते हैं कि, वस्तु तो निर्भेद है। नित्य-अनित्यताका भेद नहीं है। द्रव्य-पर्यायका भेद नहीं है। प्रगट-अप्रगटका भेद नहीं है। अनुभवप्रकाशमें दीपचंदजीने लिया है, वस्तु प्रगट (भी नहीं और) अप्रगट भी नहीं, सर्व अवस्थामें जैसी है वैसी है। `अनुभवप्रकाश'में ये बात उन्होंने ली है।

(यहाँ कहते हैं), `**यह अनुभव अपूर्व है। परिणाम क्षण-क्षण निराकुलताकी वृद्धि पामते हैं। `तो पण निश्चय राजचंद्र मनने रह्यो,...**' देखो ! ये श्रीमद्‌जीके वचनका उद्धरण किया है कि, `**...तो पण निश्चय राजचंद्र मनने रह्यो, गुरु आज्ञाए थाशुं ते ज स्वरूप जो।** (अर्थात्) जैसा मूलस्वरूप है वैसा अपने पुरुषार्थसे प्रगट करनेवाले हैं। उस स्वरूप-रूप परिणमन करनेवाले हैं, फिर भी गुरुआज्ञाको बीचमें रखी है। `**गुरु आज्ञाए थाशुं ते ज स्वरूप जो।**' किसी भी विशेष बुद्धिमान जीवके लिए विचार करने जैसा प्रश्न यह है कि, श्रीमद्‌जीको कोई गुरु नहीं मिले हैं, फिर भी इतना वजन क्यों? इस भवमें तो नहीं मिले। पूर्वभवमें मिले हैं, ये तो खुद जानते हैं, दूसरोंको तो मालूम नहीं, फिर भी सत्पुरुषके निमित्त व गुरु पर इतना अधिक ज़ोर क्यों ? कि बात-बातमें यही आ जाता है, जरूर कोई रहस्य है इसमें। ऐसा कहना है।

`**सम्यक् पुरुषार्थसे या तो पुण्ययोग होकर, अनुकूलता प्राप्त होकर राग टूटे अथवा पुण्यके अभावमें वीतरागता बढ़कर राग टूटे। राग टूटना निश्चित है,...**' ये उनको खुदको खयाल आ गया है कि, या तो सम्यक् पुरुषार्थसे राग टूट जायेगा, या तो पुण्ययोग इतना बढ़ जायेगा कि मैं प्रवृत्ति छोड़ दूँगा (अर्थात्) प्रवृत्तिका राग छोड़ दूँगा - मुझे क्या ज़रूरत है अब ! काफी पैसे आ गये। दोनों

प्रकारसे (बात करते हैं कि) मेरा तो प्रवृत्तिका राग टूटनेकी समीपता आ गई है। ये १९५६के सालमें लिखते हैं। `**सम्यक् पुरुषार्थसे** (राग टूटे) **या तो पुण्ययोग होकर, अनुकूलता प्राप्त होकर राग टूटे,...**' मेरा अनुकूलता प्रत्ययी राग नहीं बढ़ेगा, राग टूट जायेगा, यों कहते हैं। अभीसे खयाल है। `**अथवा पुण्यके अभावमें वीतरागता बढ़कर राग टूटे।**' यदि मुझे पुण्यका सद्भाव न हुआ और ये प्रतिकूलता चालू रही तो इतनी वीतरागता बढ़ जायेगी कि हम कहीं चले जायेंगे। यह परिवारका राग नहीं रहेगा। बहुत ज़ोर किया है, पुरुषार्थका गज़ब ज़ोर किया है !! इतना अंदाज आ गया है कि शायद अनुकूलता न हुई तो वीतरागता बढ़ा लेनी है, (परंतु) अब राग तो नहीं रहेगा। अब राग टूटनेकी परिस्थिति आ गई है। ये अंदरसे खयाल आता है।

`**राग टूटना निश्चित है,...**' क्यों ? `**राग टूटना निश्चित है, क्योंकि श्रद्धाने राग - अरागरहित...**' कैसा (स्वभाव है) ? (सिर्फ) राग रहित नहीं (किन्तु) राग-अराग रहित। इसे अनउभय कहते हैं। आता है कि नहीं ? कितनी जगह अनउभय आता है ! राग-अरागरहित। राग रहितको तो वीतराग कहें, परंतु राग-अराग रहित ऐसा यह (स्वरूप) है। वीतराग अर्थात् रागका त्याग करें वे वीतराग। (समयसारजी)की गाथा ३४में आचार्य भगवानने ऐसा कहा है कि, रागका त्याग करना ये तो नाममात्र है। उसे त्याग करना ये कहाँ लागू होता है ? वीतराग विशेषण भी उसे लागू नहीं होता। इसका नाम अनउभयस्वरूप है।

`**श्रद्धाने राग-अरागरहित स्वभावका आश्रय लिया है व वीर्यकी क्षण-क्षण उधर ही उधर सहज उन्मुखता होनेसे,...**' देखो ! (ये) पुरुषार्थको (स्वयंने) प्रसिद्ध किया है ! `**वीर्यका क्षण-क्षण उधर ही**

उधर सहज उन्मुखता होनेसे ज्ञान-आनंदमयी अरागी परिणाम ही वृद्धिगत होंगे,...' यह हमारी स्थिति हो चुकी है। राग छूट जायेगा, इसका यह कारण है कि, श्रद्धाने (स्वभावका) ऐसा आश्रय लिया है और पुरुषार्थकी भी गति ऐसी ही चल रही है कि, अरागी परिणाम वृद्धिगत होंगे और राग टूट जायेगा। `**यह नियम प्रत्यक्ष अनुभवगम्य है।**' यह नियम शास्त्रसे पढ़कर नहीं कहता हूँ, यह नियम गुरुसे सुना है इसलिए नहीं कहता (परंतु) प्रत्यक्ष अनुभवगम्य है। इसका तो मुझे अनुभव वर्तता है (कि) ऐसा ही होगा, अब दूसरा नहीं होगा। यह पुरुषार्थका, इन दिनों - १९५५-१९५६के (सालमें) काफी ज़ोर है।

`**अभी रात्रिके आठ बजे हैं, मंदिरजी जानेका समय है अतः बंद करता हूँ। सबको धर्मस्नेह।**' (लिखते-लिखते) समयका ख्याल गया होगा इसलिए पत्र लिखना बंद किया है।

१९५५-१९५६में उनकी प्रत्यक्ष स्थिति देखी जाये तो इस पत्रमें उनके जो शब्द हैं, ये इनकी स्थितिको प्रदर्शित करते हैं।

पत्र आने पर (पढ़नेवाला) पढ़ भी ले (और उसे अच्छा भी लगे कि) पत्र बहुत बढ़िया है, तत्त्वकी बात लिखी है, पुरुषार्थ उनका चलता है। क्षयोपशम होनेसे (पढ़नेवाला) विषय तो पकड़ ले कि, श्रद्धका जोरवाला विषय बहुत आता है (परंतु) पहचान होना अलग बात है, जानपना दूसरी बात है और जानपना न हो लेकिन ओघसंज्ञा होना, वह दूसरी बात है। परिणाममें ऐसे-ऐसे भेद-प्रभेद हैं।

ओघसंज्ञा दो प्रकारकी होती हैं। एक बिना जानपना और दूसरी जानपना सहित। जैसे कि सामान्यतः अपने यहाँ तत्त्वके विषयकी चर्चा होती है, इतनी प्रचलित हुई है, प्रसिद्ध हुई है, अतः मुमुक्षुको जानपना हो जाता है, फिर भी ओघसंज्ञा नहीं जाती। यह ओघसंज्ञाका

एक प्रकार है। अतः यहाँ ऐसी भ्रांति नहीं होनी चाहिए कि यह ओघसंज्ञा नहीं है। जबकि किसीको जानपना नहीं भी हो, और उतना उघाड़ नहीं हो और पकड़में नहीं आता हो फिर भी बहुमान रहा करे, भक्ति रहा करे (तो) वह भी ओघसंज्ञा है।

मुमुक्षु :- जानकारी हो जाये और लगे कि हम तो बराबर समझकर करते हैं।

पूज्य भाईश्री :- यहाँ खतरा है, यहाँ थोड़ा ज़ोखिम कि, अब (मुझे) ओघसंज्ञा नहीं है - ऐसा नहीं लगना चाहिए। जब तक भाव भासित न हो तब तक ओघसंज्ञा है। ऐसी स्पष्ट समझ हो तो धोखा नहीं खायेगा और तभी उसके पुरुषार्थकी गति उत्पन्न होनेका अवकाश रहेगा, वरना पुरुषार्थ अटक जायेगा कि, मुझे तो पता है, इसमें पुरुषार्थ अटक जायेगा। पुरुषार्थ आगे नहीं चलेगा, रुचि आगे नहीं बढ़ेगी। जिज्ञासा नहीं रहेगी। ये सारी परिस्थिति खड़ी हो जायेगी और आगे बढ़नेका दरवाजा बंद हो जायेगा। जानपनेमें संतुष्ट हो जायेगा। जानपना होनेमें फायदा भी है और नुकसान भी है। अधूरी समझ नुकसान करती है। पूरी तरह जानना चाहिए कि, भावभासन हुए बिना इस समझका कोई मूल्य नहीं है; जब तो दिक्कत नहीं है और कहीं अटकेगा नहीं।

पत्रांश - २०

........शक्तिकी निरंतर पकड़ अथवा एकतासे अथवा `शक्तिमयी ही हूँ' इस अनुभवसे वृत्तियोंके सहज फेरफारका प्रत्यक्ष समाधान होता है; व गुरुदेवकी वाणीका साक्षात् अर्थ समझमें आता है, जिसका फल वृद्धिगत होते हुए सुखकी पूर्णता है। अशुभमें सहज खेद, शुभमें कुछ उत्साह, सहज ही होता है; पर इन दोनोंमें अथवा शुद्धतामें भी फेरफार करनेसे कोई प्रयोजन नहीं; `मात्र पिंड हूँ,' `वृत्ति नहीं', गुरुदेवके इन्हीं वचनोंको हृदयमें उतार लिया है।

शेष फिर।

धर्मस्नेही
निहालचंद्र

प्रवचन - ८ दि. २९-०७-१९९१ - पत्रांक-२०

`शक्तिकी निरंतर पकड़ अथवा एकतासे अथवा `शक्तिमयी ही हूँ' इस अनुभवसे वृत्तियोंके सहज फेरफारका प्रत्यक्ष समाधान होता है;...' खुद ज्ञानी हैं इसलिए `शक्तिमयी ही हूँ' ऐसे अनुभवसे `शक्तिमयी ही हूँ' ऐसे अनुभवसे वृत्तियोंके सहज फेरफारोंका प्रत्यक्ष समाधान हो जाता है। यानी कि मुझे कोई असमाधान नहीं है, ऐसा लिखते हैं। मैं वहाँ आ नहीं सकता हूँ, गुरुदेवके दर्शन मुझे प्राप्त नहीं

हैं, बरसों बीत गये हैं, ये सब बातें सही हैं, परंतु मुझे असमाधान नहीं है। ऐसा पुण्ययोग नहीं है और गुरुदेवके - उपकारीके दर्शन नहीं होते हैं इसका खेद भी होता है परंतु असमाधानके कारण खेद नहीं होता। (कहीं भी) असमाधान नहीं है। खेद है किन्तु उसका भी समाधान है और खेद नहीं है उसका भी समाधान है। पूरा-पूरा समाधान रहता है। सब वृत्तियोंका समाधान रहता है।

`**प्रत्यक्ष समाधान होता है; व गुरुदेवकी वाणीका साक्षात् अर्थ समझमें आता है,...**' और इस अंतर समाधानपूर्वक - अंतर अनुभवपूर्वक गुरुदेवकी वाणीका साक्षात् अर्थ अब समझमें आता है। गुरुदेवकी वाणीमें जो गहराई है वह अब मुझे मेरा अनुभव होने पर समझमें आती है कि, `**हे गुरुदेव ! आप कितनी पहोलाई तक प्रसर चुके हो, पहोलाई भी है साथ ही ठोसपना भी !**' (पत्रांक - १७में) दोनों बातें ली हैं।

`**व गुरुदेवकी वाणीका साक्षात् अर्थ समझमें आता है, जिसका फल वृद्धिगत होते हुए सुखकी पूर्णता है।**' यह इसका समाधान, यह गुरुदेवकी वाणीसे हुई समझका फल। इस ज्ञानका फल क्या आयेगा ? कि मेरे परिणाममें सुख वृद्धिगत होता रहेगा और पूर्ण सुख प्रगट हो जायेगा। मुझे अनंत सुखकी प्राप्ति हो जायेगी।

`**अशुभमें सहज खेद,...**' (अर्थात्) ये गुरुदेवके दर्शन नहीं होते हैं या अशुभ अंश भी परिणाममें होता है। `**अशुभमें सहज खेद, शुभमें कुछ उत्साह, सहज ही होता है;...**' अतः क्या है कि, आत्माका चिंतवन आदि सहज ही चलता होगा (उसमें) सहज उत्साह होता है। `**पर इन दोनोंमें अथवा शुद्धतामें भी फेरफार करनेसे कोई प्रयोजन नहीं;...**' वृत्तिमें फेरफार करनेका सवाल नहीं है। पर्यायमें कोई फेरफार करनेका प्रश्न नहीं है। न तो अशुभमें या शुभमें या

शुद्धतामें फेरफार करनेका कोई प्रयोजन नहीं है। `**मात्र पिंड हूँ,**' `**वृत्ति नहीं',...**' ऐसी (बात) है।

मुमुक्षु :- अशुभ भाव होते हैं तो खेद होता है, परंतु कहीं भी फेरफार करनेकी बुद्धि नहीं है ?

पूज्य भाईश्री :- नहीं...नहीं...नहीं फिर तो असमाधान हो गया। अगर फेरफार करनेकी बात आये जब तो असमाधान हो गया, ऐसा है। जब अपने परिणाम अंशमें फेरफार करनेकी बुद्धि भी न हो तो संयोगमें (फेरफार करनेका) ज़ोर तो आये ही कहाँसे ? वे तो समझते हैं कि यह कुदरती वस्तु है। प्रत्येक परमाणु कुदरती वस्तु है और प्रतिसमय प्रत्येक परमाणु अपने गुणधर्म अनुसार परिणमन करते ही जा रहे हैं। इन्द्र, नरेन्द्र या जिनेन्द्र किसीको उसमें हस्तक्षेप करनेका अधिकार नहीं है (और) मेरा भी नहीं है। अतः वह Side तो बंद ही कर दो। संयोगोंमें फेरफार करनेकी बात तो छोड़ ही दो। अब बात रही अपने परिणामकी, जहाँ सुख-दुःख होता है। तो कहते हैं कि, उसमें भी फेरफार नहीं करना है। क्यों ? क्योंकि वहाँ भी फेरफार करनेका मेरा अधिकार नहीं। मैं त्रिकाली अक्रिय हूँ, निष्क्रिय हूँ, सक्रियमें फेरफार करनेका अधिकार निष्क्रियको नहीं। सीधा ऐसा ही ले लेते हैं।

मुमुक्षु :- शुद्धतामें फेरफार करना वह पुरुषार्थ नहीं है क्या ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, वह पुरुषार्थ इस प्रकार सम्यक् है। शुद्धतामें फेरफार करनेकी वृत्ति इसका नाम पुरुषार्थ नहीं। वह पुरुषार्थका स्वरूप भी नहीं, वह तो पर्यायका कर्तृत्व है। इसलिए तो `**तत्त्वानुशीलन**' में एक प्रकरण लिखा है न ! ज्ञानके बहाने, पुरुषार्थके बहाने, श्रद्धाके बहाने, रुचिके बहाने, विवेकके बहाने या किसी भी बहाने परिणाममें फेरफार करनेकी बुद्धि असम्यक् है। सम्यक् नहीं (किन्तु)

असम्यक् है। कर सकते नहीं फिर भी करना है (इसलिए) झूठी है, ऐसी (बात) है।

अशुभमें सहज खेद होता है, शुभमें सहज थोड़ा उत्साह भी होता है। होता है, करता हूँ, करता हूँ, ये प्रश्न नहीं है (परंतु) होता है। `**पर इन दोनोंमें अथवा शुद्धतामें...**' (अर्थात्) शुभाशुभमें या शुद्धतामें भी फेरफार करनेका मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। अर्थात् प्रयोजनका विषय एकांतरूपसे अपना शुद्धस्वरूप ही है। स्वयं ही प्रयोजनका विषय है, इसके अलावा कोई प्रयोजनका विषय नहीं है।

प्रयोजनका अर्थ क्या ? प्र = विशेषरूपसे। योजना (अर्थात्) To join = जुड़ना, जुड़ जाना, विशेषरूपसे जुड़ना। कहाँ (जुड़ना) ? स्वरूपमें। प्रयोजनका विषय स्वरूप ही है, और कोई नहीं। बस ! मेरा स्वरूप ही मुझे प्रयोजनभूत है और इसके अलावा मुझे कोई प्रयोजनभूत नहीं है। उसमें पर्यायका प्रयोजन अपने आप आ जाता है। पर्यायका प्रयोजन उसमें समाविष्ट है, समाविष्ट हो जाता है। इसके लिए अलग-से कुछ करनेका प्रश्न नहीं रहता।

मुमुक्षु :- मैं ज्ञानस्वरूप हूँ और ज्ञानस्वरूप रहना ही मेरा प्रयोजन है।

पूज्य भाईश्री :- मैं ज्ञानस्वरूप हूँ और मैं तो ज्ञानस्वरूप ही रहता हूँ। रहनेका प्रश्न कहाँ है ! ज्ञानस्वरूप ही मैं रहता हूँ, बस ! इतना ही मेरा प्रयोजन है। मेरे लिए बात पूरी हो गई। मुझे पर्यायके सामने देखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, पर्यायके सामने मुझे देखनेकी कोई ज़रूरत नहीं है। ये द्रव्यदृष्टिका प्रकाश है ! बहुत सुंदर शैली आयी है ! पत्रोंमें भी (क्या) शैली आयी है !! ज़ोरदार शैली आयी है !!

मुमुक्षु :- पूर्णताका लक्ष्य जो शुरूआतमें बाँधा, वह प्रयोजन इसमें

आ जाता है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, उसके गर्भमें (पूर्णताके लक्ष्यमें) द्रव्यस्वभाव रहा है और द्रव्यस्वभावके अवलंबनमें पूर्णता गर्भित है। पूर्णताका लक्ष्य गर्भित है, वह लक्ष्य छूटता नहीं। वह लक्ष्य कोई छूट नहीं जाता। क्योंकि अपूर्ण पर्यायका ज्ञान होता है और अपूर्ण है ऐसा ज्ञान होते ही पूर्णताकी ओर वेग पकड़ता है। पूर्ण (स्वरूपके) आश्रयसे पूर्ण होनेमें वेग आता है। जब अपूर्ण पर्यायका ज्ञान होता है और अनुभव साथमें हो तब पूर्णके आश्रयसे पूर्ण होनेका वेग उत्पन्न होता है। प्रतिसमय यह रीति चालू रहती है, वृद्धिगत होती है।

`**मात्र पिंड हूँ, `वृत्ति नहीं,' गुरुदेवके इन्हीं वचनोंको हृदयमें उतार लिया है।**' (अर्थात्) मैं तो त्रिकाली पिंड हूँ, अक्रिय चिद्बिंब हूँ, एक समयका परिणमन या वृत्ति मैं नहीं, गुरुदेवके इन वचनोंको मैंने हृदयमें उतार लिया है, देखिये ! एक दिनके व्याख्यानमें जो उतार लिया, वह यह उतार लिया है।

`**शेष फिर।**' विशेष बादमें लिखेंगे, ऐसा कहकर पत्र पूरा कर दिया है। `**धर्मस्नेही निहालचंद्र।**'

मैं तो यह सब स्वप्न देख रहा हूँ - शरीर, शरीरमें; और मैं, मेरेमें हूँ; स्वप्नकी माफ़िक यह सब हो रहा है।
(द्रव्यदृष्टिप्रकाश - २६०)

पत्रांक - २७

ॐ

श्री सद्‌गुरुदेवाय नमः

धर्मस्नेही... शुद्धात्म सत्कार।

आपका कार्ड व पत्र मिले। मानस्तंभके शुभ प्रसंगपर भी मैं वहाँ नहीं आ सकूँगा, इसका कारण पत्रके साथ भेजी गई शादीकी पत्रिकासे मालूम होगा ! बड़े पुत्रकी शादी ता. १६-४ की है; पुण्यवानोंको शुभप्रसंगका योग है, उन्हें अशुभप्रसंगपर बुलाना ठीक नहीं है, फिर भी लौकिक व्यवहारवश दो पत्रिकाएँ भिजवाई हैं। वहाँसे आये पश्चात् परिणति कीचड़में ही फँसी रहती है, जैसी योग्यता है वैसे ही निमित्तों मध्ये रहना हो रहा है। प्रत्यक्ष दुःखसमूहमें वेदन चलता है, परंतु एक ही झटकेमें हटना नहीं होता है। रस बिलकुल नहीं है, खेद वर्तता है। फिर भी इधरसे निवृत्तियोग नहीं बैठता; यह भी पूर्व कर्मोंकी दैन ही है। अखण्डकी अखण्डताका प्रयास भी शिथिल-सा ही रहता है। हे गुरुदेव ! आपमें तीव्र भक्तिका उदय होनेसे ही इधरके दुःखका इलाज होगा, दूसरा कोई इलाज नहीं, यह भलीभाँति जानता हूँ।

अधिक क्या लिखूँ ? सोनगढ़की दयाका पात्र हूँ। आपके उलाहने सुनने योग्य हूँ। करीब एक माहसे कुछ शारीरिक अस्वस्थता भी चल रही है।

हे प्रभु ! शीघ्र इधरसे निवृत्ति होकर गुरुचरणोंमें रहना होवे, जिन्होंने अखण्ड गुरुवासमें चरना सिखाया है, यह ही विनती।

आप सबसे क्षमाका इच्छुक व आपकी वात्सल्यताका आभारी।

निहालभाई

प्रवचन - ९ दि. ०५-०८-१९९१ - पत्रांक-२७

श्री सद्‌गुरुदेवाय नमः

धर्मस्नेही... शुद्धात्म सत्कार।

`**आपका कार्ड व पत्र मिले। मानस्तंभके शुभ प्रसंगपर भी मैं वहाँ नहीं आ सकूँगा, इसका कारण पत्रके साथ भेजी गई शादीकी पत्रिकासे मालूम होगा ! बड़े पुत्रकी शादी ता. १६-४ की है;...**' उनके वहाँ अप्रैलमें लग्न प्रसंग था। `**पुण्यवानोंको शुभप्रसंगका योग है,...**' यानीकि आप सभी पुण्यशाली हैं, (ऐसा कहते हैं)। आपको शुभ प्रसंगका योग है (अर्थात्) आपको गुरुदेवके प्रवचन (सुनने) मिलते हैं, सत्संग मिलता है, आप सभी पुण्यशाली हैं कि आपको गुरुदेवका सत्संग मिलता है। `**उन्हें अशुभप्रसंग पर बुलाना ठीक नहीं है;...**' यानी कि मेरे घर तो यह अशुभ प्रसंग है। कैसा (प्रसंग है) ? लग्नका अशुभ प्रसंग है, ऐसा कहते हैं। लौकिकदृष्टिसे भले ही उसमें शुभप्रसंग और मांगलिक प्रसंग ऐसा-ऐसा लिखा जाता है, किन्तु धर्मदृष्टिसे यह अशुभ प्रसंग है।

मुमुक्षु :- दुर्घटना है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, दुर्घटना कहो, चाहे अशुभ प्रसंग कहो।

मुमुक्षु :- घरवालें ऐसा सुन ले तो पकड़कर मारे !

पूज्य भाईश्री :- प्रसंगपर ऐसा बोल देवें तो मनदुःख हो जाये। ऐसा प्रसंग घरमें हो और कुछ बोल देवें तो मनदुःख हो जाये। ऐसी बात क्यों करते हो ? ऐसा कहेंगे। उन्होंने तो प्रसंगपर ही

लिखा है - शादीके प्रसंगपर ही लिखा है। १६-४ के दिन शादी है और ९-४का पत्र है, एक हफ्ते पहले पत्र लिखा है। साथमें वह लग्न पत्रिका भेजी है न ! **`उन्हें अशुभप्रसंगपर बुलाना ठीक नहीं है, फिर भी लौकिक व्यवहारवश दो पत्रिकाएँ भिजवाई हैं।**

`वहाँसे आये पश्चात्...'** फिर तो हर साल आते थे न ! १९५९के बाद हर साल (सोनगढ़) आते थे। इसलिए लिखते हैं कि, **`वहाँसे आये पश्चात् परिणति कीचड़में ही फँसी रहती है,...' ये शादीका काम आया, व्यापार-धंधा ये सब कीचड़ हैं। वहाँसे आनेक़े पश्चात्, सोनगढ़से आनेके बाद परिणति तो कीचड़में फँसी हुई रहती है। **`जैसी योग्यता है वैसे ही निमित्तों मध्ये रहना हो रहा है।'** मेरी योग्यता इतनी हीन है कि मुझे ऐसे हलके निमित्तोंके बीच रहना पड़ता है। देखो ! कितनी सरलता है !! मेरी योग्यता हीन है। जैसी योग्यता है ऐसे निमित्तोंके बीच रहना पड़ता है। कोई मुफ्तमें रहना नहीं पड़ता। मैं ऐसे पूर्वकर्म करके आया हूँ। ऐसी योग्यता है इसलिए रहना पड़ता है।

मुमुक्षु :- यह उपयोगकी बात नहीं करके परिणतिकी बात क्यों की है ?

पूज्य भाईश्री :- उपयोगमें तो फर्क पड़ता है न ! हररोज ध्यानमें तो बैठते ही हैं, वैसे उपयोगमें तो फर्क पड़ता है न ! परिणतिमें चालू रहता है (अर्थात्) ये सब काम चालू रहते हैं।

मुमुक्षु :- तो क्या परिणतिमें भी ऐसे दो भाग हो जाते हैं ?

पूज्य भाईश्री :- हो जाते हैं।

मुमुक्षु :- लेकिन परिणतिको तो श्रद्धाका अवलंबन है फिर दो भाग कैसे पड़ते हैं ?

पूज्य भाईश्री :- (परिणतिको भले ही) श्रद्धाका अवलंबन हो परंतु

चारित्रगुणकी परिणति है न ! चारित्रगुणकी भी परिणति है न ! (कोई राग) अधिक समय चले, अधिक समय तक चालू रह जाये, बिना विकल्प भी अधिक समय तक चल जाये, जब तो वह परिणतिमें जायेगा न ! भले ही कायम न रहे, कभी छूट जाये, वह चालू नहीं रहता। परंतु अभी इन दिनों ये प्रकार ज्यादा चलता है, ऐसा कहते हैं। परिणति और उपयोगका विषय यहाँ नहीं लेना है। सामान्यतया ज्यादातर परिणाम (ऐसे चलते हैं)। यहाँ ऐसा कहना है। यहाँ लब्ध परिणतिकी बात नहीं लेनी है। परिणामके अधिकतर भागको परिणति कही।

`प्रत्यक्ष दुःखसमूहमें वेदन चलता है, परंतु एक ही झटकेमें हटना नहीं होता है।' (अर्थात्) दुःखके समूहका प्रत्यक्ष वेदन चलता है। ये सारे जो परिणाम, संसारके जो कार्य हैं, उनमें दुःख नहीं (परंतु) दुःखका समूह है। अनुमान नहीं है, प्रत्यक्ष (वेदन) है, वेदनमें आता है फिर भी एक ही झटकेमें भिन्न नहीं हो सकता। इसका मतलब ऐसा हुआ कि एक ही झटकेमें भिन्न होनेका भाव आ जाता है परंतु हो नहीं पाता। **`परंतु एक ही झटकेमें हटना नहीं होता है।**

मुमुक्षु :- भरत चक्रवर्तीको एकही झटकेमें छूट गया था ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, एक ही झटकेमें (छूट गया था।) दीक्षा लेते वक्त तो एक ही झटकेमें छोड़ते ही हैं न ! तब कहाँ संबंध रखते हैं। सूक्ष्म संबंध भी नहीं रखते। **`सर्व संबंधनुं बंधन तीक्ष्ण छेदीने...'** क्या (लिखते हैं) ? संसारके तीक्ष्ण बंधनका छेद करके। (कृपालुदेवने) **`अपूर्वअवसर'** (काव्यमें) लिया न !

मुमुक्षु :- इतने तीव्र पुरुषार्थीको भी हटनेमें तकलीफ होती है, तो मुमुक्षुको कितनी तकलीफ होगी ? ये कुछ कह नहीं सकते।

पूज्य भाईश्री :- फिर भी, वे भी एकबार मुमुक्षु थे। वे भी एकबार

मुमुक्षु थे न ? मुमुक्षु थे तब कोई अनुकूलताएँ थी, ऐसा तो नहीं था। मुमुक्षु थे तब भी प्रतिकूलता ही थी और बादमें दुकान बंद करनी पड़ी। अजमेरमें अपनी दुकान - व्यवसाय बंद करके आर्थिक कारणवश ही कलकत्ता आये हैं। कलकत्ता कोई घूमने-फिरने नहीं आये थे। आर्थिक कारणवश आना पड़ा है। आदमी अपना गाँव छोड़कर (शहर) कब जाता है ? गाँव छोड़कर परदेश कब जाता है ? कि जब देशमें निर्वाह न चलता हो तब परदेश जाता है, ये तो सीधी बात है। देशमें निर्वाह चल जाता हो तब तक कोई परदेश-गमन नहीं करता। इसका कारण है, क्योंकि सगे-संबंधी, स्नेही, मित्र सब देशमें होते हैं। उन सबको छोड़कर किसको जाना रुचे ? सीधी बात तो यह है। बंबईमें तो आज भी लोग चर्चा करते हैं। क्योंकि बंबई तो एक टापू था। बंबईमें, कोई पहलेसे वहाँका रहनेवाला है ही नहीं। क्योंकि वह तो पूरा टापू था। ये तो अभी इतनी बस्ती हो गई। वरना तो अधिकांश जंगल था और थोड़े मकान थे। कोई कहे, यहाँ बंबईमें क्यों आये ? तो कहेंगे देशमें निर्वाह मुश्किल हुआ इसलिए यहाँ आये। सीधी बात है।

'**प्रत्यक्ष दुःखसमूहमें वेदन चलता है, परंतु एक ही झटकेमें हटना नहीं होता है। रस बिलकुल नहीं है,...**' ये बड़ी बात है। '**रस बिलकुल नहीं है, खेद वर्तता है। फिर भी इधरसे निवृत्तियोग नहीं बैठता;...**' फिर भी बाहरमें निवृत्तियोग नहीं बैठता है, (ऐसा कहते हैं)। कहीं भी रस नहीं है, बहुत खेद होता है, परंतु बाहरमें निवृत्तियोग प्राप्त नहीं होता है।

मुमुक्षु :- मुझे तो यही कहना है कि, उनको रस नहीं है और इतना पुरुषार्थ होने पर भी झटका नहीं लगता है। जब कि यहाँ मुमुक्षुको रस है फिर कैसे पुरुषार्थ जागृत होगा ?

पूज्य भाईश्री :- उसका तो पुरुषार्थ जागृत होगा ही नहीं। जिसको रस है उसका तो पुरुषार्थ होनेका प्रश्न ही नहीं। वह तो डूब ही जायेगा, रसमें सराबोर हो जायेगा।

'**फिर भी इधरसे निवृत्तियोग नहीं बैठता; यह भी पूर्व कर्मोंकी दैन ही है।**' (यानी कि) वह पूर्व कर्मकी दैन है।

मुमुक्षु :- रस कैसे मंद हो ? रस कैसे टूटे ?

पूज्य भाईश्री :- नुकसान देखे तो (टूटे)। नुकसानका विचार करें, नुकसानको देखे तो रस मिटे। रस क्यों आता है ? लाभके कारणसे आता है, सुखके कारणसे आता है। (परंतु) है दुःख। उन्हीं परिणामोंमें दुःख है, वर्तमानमें नुकसान है, भविष्यमें भी नुकसानका ही कारण है।

मुमुक्षु :- विचारणामें तो ऐसा ही है कि, दुःख है फिर भी भूल क्या होती है ?

पूज्य भाईश्री :- विचारणामें उसवक्त (दुःख) नहीं है। उसवक्त हो तो रस निश्चितरूपसे टूटे ही ! उसवक्त हो तो अवलोकन होता हैं (जिससे) रस टूट जाता है। (मुमुक्षु) आगे-पीछे विचार करता है (परंतु) उस (उदयके) वक्त नहीं देखता। उस वक्त देखे तो (रस) अवश्य टूटे ही टूटे। एकदम तत्काल फल मिलता है। (रस) टूटे बिना रहे ही नहीं ! रस टूट ही जाये। उसी वक्त जागृत हो कि, मैं (ये) नुकसानमें खड़ा हूँ, मुझे मेरे आत्माको नुकसान नहीं करना है, (ऐसे देखेगा) तो फिर उसमें आगे नहीं बढ़ सकेगा।

मुमुक्षु :- उसवक्त वेदनको पकड़ना चाहिए। वेदन पकड़में आये तो जागृत हो जाये।

पूज्य भाईश्री :- तब तो काफी जागृति है, वेदन तक पहुँचे तब तो (काफी जागृति है)। परंतु अभी तो रस आता हो उसमें

वेदनको कहाँसे पकड़ेगा ? क्योंकि अभी तो विचारमें (नहीं आता), अवलोकनमें नहीं आता, तो वेदनको तो कहाँसे पकड़ेगा ?

मुमुक्षु :- जीवको भूतकाल और भविष्यको देखनेकी आदत हो चुकी है, वह वर्तमानको नहीं देखता।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, सँभलनेका कार्य तो वर्तमानमें ही करना है और वर्तमानमें ही कार्य होगा। भविष्यका कार्य कहाँसे हो ? जो पर्याय आयी न हो उसमें काम नहीं होगा और जो पर्याय व्यतीत हो गई उसमें भी काम नहीं होगा, जो (पर्याय) चलती हो उसमें काम होगा। काम तो वहीं करना है। भूत-भविष्यका कार्य (वर्तमानमें) थोड़े ही हो सकता है या किया जा सकता है ?

मुमुक्षु :- जो चीज अभी हाजिर ही नहीं फिर उसमें प्रयोग कहाँसे करेगा ?

पूज्य भाईश्री :- किसके साथ करेगा ? किसके साथ काम करेगा ? आप आये नहीं हो फिर आपसे बात कैसे की जाये ? आप मिलेंगे जब तो आपसे बात करूँगा, मिलेंगे नहीं और बात करूँगा आपसे ? यह तो वैसी बात है।

(यहाँ कहते हैं), '**अखण्डकी अखण्डताका प्रयास भी शिथिल-सा ही रहता है।**' (अर्थात्) पुरुषार्थ चलता है, लेकिन इन सारी उपाधियोंमें पुरुषार्थ भी थोड़ा शिथिल है। देखो ! कैसा स्वीकार करते हैं !! पुरुषार्थ चलता है लेकिन पुरुषार्थ अभी थोड़ा मंद है। '**हे गुरुदेव ! आपमें तीव्र भक्तिका उदय होनेसे ही इधरके दुःखका इलाज होगा,...**' देखो ! कैसा लिखा है गुरुदेवके लिए !! (गुरुदेवने) यह नहीं पढ़ा होगा ? हे गुरुदेव आपके प्रति अभी मेरी भक्ति कम है, यह ऐसा सूचित करता है। इतनी भक्ति करनेके बावजूद भी ऐसा कहते हैं कि, आपके प्रति मेरी भक्ति कम है।

आपके प्रति तीव्र भक्तिका उदय होगा तब इस दुःखका इलाज हो पाएगा, वरना मेरे ये दुःख नहीं मिटेंगे। अतः मेरे दुःख तो आप ही मिटायेंगे। '**दूसरा कोई इलाज नहीं, यह भलीभाँति जानता हूँ।**' देखो ! गुरुदेवश्रीका कितना विनय व भक्ति की है !!

मुमुक्षु :- चाहे कोई भी आये उसे भगवान ही कहते थे।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, विरोधकी पत्रिकाएँ - जैनके अखबार आते ही हैं। (फिर भी) अरे...! भगवान ! अरे...! भगवान ! ऐसा कहते थे। करुणा करके कहते थे। महापुरुषकी बात ही अलग होती है।

ऐसी बात बहिनश्रीके लिए सुनी थी कि, (उनको) पता हो कि ये विरोधी हैं, परंतु यदि वे दर्शनके लिए आनेकी बात करें तो कहते थे कि, उन्हें पहले आने दो ! ऐसा कहेंगे। क्या कहेंगे ? (उन्हें पहले आने दो)। और आने पर उनके हाल-चाल पूछते थे ! दूसरेसे बात नहीं करेंगे, (वे लोग) दर्शन करके चले जाते, जब कि इनके साथ दो शब्द सामनेसे चलाकरके बोलेंगे। उनके हाल-चाल पूछते, कैसे हो ? ऐसा है, वैसा है, कोई भी दो बातें सामनेसे छेड़ते थे। (उनके भावमें ऐसा रहता है कि) उनको अभाव हो तो भले ही हो, परंतु उनको अभाव हो तो मुझे भी अभाव हो जाये, फिर तो उनमें और अपनेमें क्या फर्क रहा ? यह उनकी महानता है ! यह महान आत्माओंकी महानता है।

मुमुक्षु :- धर्मात्माओंकी महानता भी कोई अलौकिक प्रकारकी होती है !

पूज्य भाईश्री :- ऐसा ही होता है ! संसारीप्राणी जैसे हो, उनके जैसा प्रकार तो कहाँसे होगा !

'**हे गुरुदेव ! आपमें तीव्र भक्तिका उदय होनेसे ही इधरके दुःखका इलाज होगा,...**' आपकी भक्तिसे मेरा ये दुःख मिटेगा, और

तो कोई इलाज मुझे नहीं लगता - ऐसा मैं बराबर अच्छी तरह समझता हूँ। अतः मेरी आपके प्रति भक्ति कम है, जिसे अभी मुझे बढ़ानी है, ऐसा अभिप्राय दिया। `**अधिक क्या लिखूँ ? सोनगढ़की दयाका पात्र हूँ।**' मैं तो गुरुदेवकी करुणाका पात्र हूँ। मेरे लिए मैं क्या लिखूँ? मैं तो कुछ नहीं। `**आपके उलाहने सुनने योग्य हूँ।**' और आप जो उलाहने देते हो, वह सुननेका मैं पात्र हूँ। लिखीये, आप बिना संकोच दो शब्द कटु लिखें, कोई बात नहीं (ऐसा कहते हैं)।

`**करीब एक माहसे कुछ शारीरिक अस्वस्थता भी चल रही है। हे प्रभु ! शीघ्र इधरसे निवृत्ति होकर गुरुचरणोंमें रहना होवे,...**' देखो ! कैसी भक्ति की है !! `**हे प्रभु ! शीघ्र इधरसे निवृत्ति होकर गुरुचरणोंमें रहना होवे, जिन्होंने अखण्ड गुरुवासमें चरना सिखाया है,...**' यह निजगुरु ! अखण्ड गुरु अर्थात् अपना निजगुरु, उसके वासमें चरना सिखाया है, उनके चरणोंमें रहना मिले, `**यह ही विनती।**'

`**आप सबसे क्षमाका इच्छुक व आपकी वात्सल्यताका आभारी।**' आप तो उलाहने लिखते हो - उलाहने देते हो परंतु वह तो वात्सल्यके कारण लिखते हो न ! (अतः) मैं तो आपका आभार मानता हूँ। बुरा नहीं मानते कि, क्यों आप ऐसे लिखते हो ? क्यों ऐसा सुनाते हो ? सरलतासे बातको सुलटी लेते हैं।

पत्रांश - २८

.......परिणाम शुभ हैं, अशुभ हैं, इनमें कितना पुरुषार्थ भी सहज लग जाता है आदि ध्रुवकी एकता सहितके ज्ञानमें आता रहता है। श्रद्धाकी अखण्ड एकताके साथ ही चारित्रकी अखण्डता भी ध्रुवके साथ हो जाये, यह ही लक्ष्य है; व यथार्थ श्रद्धाके साथ ऐसा ही होगा, यह ही नियम है। इसके हुए बिना, मात्र ऐसा हुए बिना, जीवको चैन नहीं। अन्य तरफ़के रागमें निरंतर रस नहीं, चाहे क्षणिक रस दिखाई भी दे। शुभ निमित्तोंके संगमें अधिक मंद कषायादिक होनेसे स्थिरता भी अधिक व शीघ्र होती रहती है, यह भी ज्ञानमें है; परंतु मुख्य संग तो निर्बाध अपराधीन चेतनका ही है, अन्य संग तो उदयाधीन है। अधिक लिखनेमें सार नहीं। उधर आनेके विकल्प भी बहुबार उठते हैं पर अधिक ज़ोर नहीं खाते। आपके पत्रोंके मात्र उधर आने बाबत लिखे होनेका, अतः क्या जवाब दूँ ? मेरी ऐसी स्थितिमें आप वहाँके रोज़ाना या हफ्तेके खास-खास गुरुदेवश्रीके न्याय आदि लिखो तो अधिक प्रिय लगेंगे। आना तो होगा जब होगा, शायद जल्दी आ भी जाऊँ, ऐसा योग भी दिखता तो है।

सब बहनोंको व शशीभाईको धर्मस्नेह।

- आत्मार्थी

प्रवचन - १० दि. ०५-०८-१९९१ - पत्रांक-२८

`**परिणाम शुभ हैं, अशुभ हैं, इनमें कितना पुरुषार्थ भी सहज लग जाता है...**' अब अपनी बात करते हैं। परिणाम शुभ भी हैं, अशुभ भी हैं और थोड़ा-बहुत पुरुषार्थ उसमें भी लगता है। उसमें भी दो भाग हैं। जैसे चारित्रमें दो भाग हैं वैसे पुरुषार्थमें भी दो भाग हैं। अतः (पुरुषार्थ) विभाजित होकर शुभ-अशुभमें जाता ही है। `**इनमें कितना पुरुषार्थ भी सहज लग जाता है आदि ध्रुवकी एकता सहितके ज्ञानमें आता रहता है।**' मेरे ज्ञानमें आता है परंतु कैसा है ज्ञान ? ध्रुवके साथ एकत्वरूप जो ज्ञान है, उस ज्ञानमें ये सब मुझे समझमें आता है। कितना पुरुषार्थ लग जाता है, शुभ विकल्प आता है, अशुभ विकल्प आता है, यह सब ज्ञानमें आता है; परंतु ध्रुवकी एकतावाले ज्ञानमें, उसे छोड़कर नहीं। उसमें एकाकार रहकर (अन्य सबका ज्ञान होता है।) `(**इनमें कितना पुरुषार्थ भी सहज लग जाता है**) **आदि ध्रुवकी एकता सहितके ज्ञानमें आता रहता है। श्रद्धाकी अखण्ड एकताके साथ ही चारित्रकी अखण्डता भी ध्रुवके साथ हो जाये, यह ही लक्ष्य है;...**' देखो ! परिणाम अपेक्षासे क्या लक्ष्य है ? कि जैसे श्रद्धा पूरी-पूरी (स्वरूपके साथ) अखण्ड एकरूप हो गई है, वैसे चारित्रमें भी - स्थिरतामें भी अखण्ड एक ध्रुवके साथ पूरा-पूरा चारित्र प्रगट हो जाये, पूर्णदशा (प्रगट) हो जाये, यह लक्ष्यमें है। यह भी एक लक्ष्य है।

`**यह ही लक्ष्य है; व यथार्थ श्रद्धाके साथ ऐसा ही होगा,...**' (अर्थात्) त्रिकालीकी जो श्रद्धा है उसमें तो ऐसा ही होगा, पूर्णता है वह भी हो जायेगी। `**यह ही नियम है।**' यानी कि मोक्षदशा प्रगट हो जायेगी, इसकी प्रतीति है, ऐसा भी एक नियम है। `**इसके हुए बिना, मात्र ऐसा हुए बिना, जीवको चैन नहीं।**' (यानी कि) मुझे चैन नहीं पड़ेगा। जब तक मेरी पूर्णदशा नहीं होगी तब तक मेरा पुरुषार्थ अटकेगा नहीं और कहीं भी चैन पड़े और अटक जाये ऐसा नहीं बनेगा। बहुत स्पष्ट लिखा है। अपनी दशाकी बात बहुत स्पष्ट लिखी है। अगर उन्होंने अपनी दशाकी बात इतनी स्पष्ट लिखी होनेके बावजूद भी, वह दशा ऐसी नहीं है, ऐसा गुरुदेवके ज्ञानमें आया होता तो ये पुस्तक फिरसे प्रगट करनेकी संमति नहीं दी होती, फिरसे प्रगट की है, उनकी आज्ञा लेकर प्रगट की है। पहलीबार उनकी आज्ञा लेकर (प्रगट) की थी लेकिन उन्होंने पढ़ी नहीं थी। पढ़नेका प्रयत्न किया, लेकिन वैसा योग नहीं बैठा। खुदने ना कहा, बादमें पढ़ा। फिरसे उसका गुजराती अनुवाद किया और फिर वापिस प्रकाशित किया। ये बात उन्होंने लिखी है परंतु ऐसी दशा उनकी नहीं थी फिर भी लिखी है, ऐसा उल्लेख कभी भी नहीं किया है। ज्ञानदशाका स्पष्ट चितार है। उन्हें ज्ञानदशा नहीं है, ऐसा तो (गुरुदेवने) नहीं कहा परंतु उलटा यूँ कहा कि, बहुत पुरुषार्थ ! झपट करेंगे !

मुमुक्षु :- इस पुस्तकको शास्त्र भी कहा न !

पूज्य भाईश्री :-हाँ, शास्त्र भी कहा है। पाँच साल बाद वह प्रसंग बना था। २३के सालमें प्रथम प्रकाशन किया, फिर २८के सालमें (प्रकाशन किया)। ५०० पुस्तकें, तीसरा भाग बाईन्डींग किये हुए सब दे दिये गये। (सामाजिक) उहापोह हुआ इसलिए जो बची

हुई थी उनका बाईन्डींग नहीं करनेकी बात पहलेसे नक्की हुई थी, अतः उनके पन्ने खुले हुए ही रख दिये थे। परंतु हमने पन्ने (खुले) रखनेके बजाय तीसरा भाग अलगसे बाँधकर अलमारी भर दी। पुस्तकें सँभालकर रख दी थी। पाँच साल बाद गुरुदेवको खयाल आया (कि) ये पुस्तकें जितनी दे दी गई, उतनी तो नहीं थी, दूसरी बची थी उनका क्या किया इन लोगोंने ? इसलिए सामनेसे चलाकर पूछा कि, उस दिन ये तीसरे भागके पन्ने छुट्टे रखनेकी बात हुई थी तो फिर क्या किया इनका ? तब मैंने कहा `(**पन्ने**) छुट्टे तो नहीं रखे परंतु उसका भी - तीसरे भागकी अलग-से पुस्तक बनाकर अलमारीमें रख दी है। अभी तो पाँच साल हो गये तो पन्ने भी पीले होने लगे हैं।' (कागज)का इस्तेमाल करो या न करो फर्क तो पड़ेगा ही। उसका परिणमन तो बदलता ही रहता है। (ऐसा सुना तो कहा कि) `हें ! पन्ने तो पीले हो ही जायेंगे, ठीक बात है, क्योंकि कागज है। यह तो शास्त्र है ! अशातना हो जायेगी !' क्या बोले ? चर्चाके विभागको शास्त्र कहा !! क्योंकि ज्ञानीके वचन हैं न ! (वह तो) शास्त्र है, अशातना हो जायेगी ! (फिर कहा) `ऐसा करो अभी छूटसे देने लगो ! जब भी ले आओगे ब्रह्मचारी बहिनोंको दे देंगे।' इस तरह फिर छूटसे देने लगे। ये १६०० पुस्तकें बहुत जल्दीसे दे दी गई ! ५०० पुस्तकें देनेमें पाँच साल लगे ! और बाकीकी १६०० पुस्तकें तो बहुत जल्दीसे दे दी गई। शुरू-शुरूमें तो गुरुदेवके रूममें २५-२५, ५०-५० (पुस्तकें) रख देते थे, बादमें २००-२०० रखते थे ! २०० खतम होनेपर दूसरी २०० रख देते थे। इसतरह २१०० पुस्तकें अपने हाथोंसे दी ! हमने किसीको एक भी नकल नहीं दी। (जिस-जिसको पहले) दी थी वह भी वापिस मँगवा ली। उस उहापोहके दौरान किसीको पढ़ने

दी थी वह भी वापिस मँगवा ली। (क्योंकि) गुरुदेवने कहा है कि, मैं अपने हाथसे दूँगा, फिर अपनेको बाहरमें भी चुस्त रहना चाहिए। भले ही गुरुदेवको पता नहीं है कि मैंने आपको दी है, वे कोई गिननेवाले नहीं हैं कि ये ५००में दो कम हैं। किसी नजदीके परिचयवालेको दी थी लेकिन वह भी वापिस माँग ली। कोई-कोई मुमुक्षुओंने हाथसे लिख ली थी, तो जब गुरुदेवश्रीको पता पड़ा तो उन्होंने प्रशंसा की थी।

यह पुस्तक पढ़नेके बाद तो बहुत ही बोलते थे। प्रकाशनके पहले जैसे ही यह पुस्तक दी (कि) बहुत प्रशंसा की थी। उसे लेकर ही विरोध हुआ था। क्योंकि अभी तो काल ऐसा है कि, किसीकी अधिक प्रशंसा होते ही थोड़ी विपरीतता हो जाती है।

मुमुक्षु :- अपरिणामी शब्दका बहुत विरोध हुआ था ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, अपरिणामीका बहुत विरोध हुआ था। वैसे भी `निश्चयाभासी हैं, निश्चयाभासी हैं, ऐसी बात चलने लगी थी। ज्यादा विरोधकी शुरूआत 'अनायतन' (शब्दसे) हुई थी। `सच्चे देव, गुरु, शास्त्र भी निश्चयसे अनायतन हैं' यह बातसे (लोग) बहुत भड़के।

मुमुक्षु :- गुरुदेवने सारी स्पष्टता की है।

पूज्य भाईश्री :- सब लोग भड़के लेकिन गुरुदेवने ऐसा ही जवाब दिया कि, परम सत्य है !! ये शब्द (कहते थे)। परम सत्य है !! इतने शब्द गुरुदेवने कहे। गुरुदेवकी उपस्थितिमें विरोधी लोग बोलने लगे किन्तु गुरुदेवने ऐसा कहा कि, परम सत्य है !! परंतु कोई सुनते नहीं थे गुरुदेवको !!! यह प्रसंग जब बना तब मैं तो आश्चर्यमें डूब गया !! कि अरे...! गुरुदेव ऐसा कहे फिर भी उनके सामने भी विरोध !!! यह बात तो हमारी समझमें नहीं आती है। यह भक्तिका प्रकार कैसा ?!! एक तरफ चरणस्पर्श करते हैं और दूसरी

ओर उनके अभिप्राय विरुद्ध बात करते हैं !! ये क्या चलता है? गुरुदेवने अंगत चर्चामें तो मुझे काफी कहा था, काफी कुछ कहा था परंतु बाहरमें बोलना ठीक नहीं। ऐसी काफी बातें हैं कि बाहरमें नहीं बोल सकते। व्यक्तिगत बातें नहीं बोल सकते। चुन-चुनकर कहा है कि, यह ऐसा कहता है, वह ऐसा कहता है, फलाना ऐसा बोलता है, फलाना निश्चयाभासी कहता है, फलाना ऐसा कहता है ! नाम देकर बात कही है। (ऐसा) कहा, क्या करें शशीभाई? ३०-३०सालसे सामने बैठकर सुनते हैं !! (फिर भी बात) नहीं बैठती है !! क्या करें ? उस दिन ३० साल बोले थे। ३० सालसे सुननेवालेको यह बात नहीं बैठती है !! (वरना) वे तो धन्य हैं कि जिसने एक व्याख्यानसे पता लगा लिया ! पाताल तोड़ दिया !! ३० सालसे जिसको पता नहीं लगा, यह एक ही व्याख्यानमें (इन्होंने पता लगा लिया !) गजब काम किया है !!!

(यहाँ क्या कहते हैं) कि `**अन्य तरफके रागमें निरंतर रस नहीं, चाहे क्षणिक रस दिखाई भी दे।**' देखो ! क्षणिक रस है, ऐसा कहा । निरंतर रस नहीं (परंतु) क्षणिक रस है। `**शुभ निमित्तोंके संगमें अधिक मंद कषायादिक होनेसे स्थिरता भी अधिक व शीघ्र होती रहती है,...**' क्योंकि उसमें मलिनता घटती है न ! (इसलिए) रस पतला पड़ता है। अशुभमें तीव्र मलिनता है, इसमें (शुभमें) मंद मलिनता है। `**यह भी ज्ञानमें है;...**' (अर्थात्) वह खयालमें है। `**परंतु मुख्य संग तो निर्बाध अपराधीन चेतनका ही है,...**' अपराधीन माने अपराध नहीं (लेकिन) पराधीन नहीं वह - स्वतंत्र। `**परंतु मुख्य संग तो निर्बाध अपराधीन चेतनका ही है,...**' मेरा चैतन्य स्वतंत्र है उसका संग मुख्यरूपसे मुझे वर्तता है, दूसरा कोई मुख्य संग मुझे नहीं वर्तता। `**अन्य संग तो उदयाधीन है।**' (यानी कि) मुझे इसकी कोई

मुख्यता नहीं है। उदयाधीन जो संग है इसकी मुझे कोई मुख्यता नहीं है। मुख्य संग तो मेरे स्वरूपका है। `**अधिक लिखनेमें सार नहीं। उधर आनेके विकल्प भी बहुबार उठते हैं पर अधिक ज़ोर नहीं खाते।** विकल्प तो कईबार आते हैं, परंतु इतने ज़ोरपूर्वक नहीं आते।

`**आपके पत्रोंके मात्र उधर आने बाबत लिखे होनेका, अतः क्या जवाब दूँ ?**' (अर्थात्) आप तो एक ही बात लिखते हो कि, यहाँ आईये, यहाँ आईये ! परंतु बार-बार आपको इसका जवाब क्या दूँ? `**मेरी ऐसी स्थितिमें आप वहाँके रोज़ाना या हफ्तेके खास-खास गुरुदेवश्रीके न्याय आदि लिखो तो अधिक प्रिय लगेंगे।**' (यानी कि) हफ्तेमें या किसी दिन गुरुदेवके व्याख्यानमें कोई विशेष बात आयी हो, उसे यदि लिखेंगे तो ज्यादा अच्छा है। गुरुदेवकी बात लिखो न ! मुझे वह प्रसंग अधिक प्रिय लगेगा। `**आना तो होगा जब होगा, शायद जल्दी आ भी जाऊँ, ऐसा योग भी दिखता तो है।**' ऐसा योग भी दिखता है कि, शायद जल्दी आना हो भी जाये। १९६२के सालमें थोड़ी अनुकूलता (हुई थी), फिर तो हर साल आते थे। धंधा थोड़ा ठीक बैठ गया था तो सालमें एकबार भी आ सकते थे।

पत्रांक - २९ कलकत्ता

ॐ ३-९-१९६२

श्री सद्‌गुरुदेवाय नमः

आत्मार्थी... धर्मस्नेह।

आपका पत्र पहले भी मिला था व शशीभाईका एक और भी। आपने लिखा था कि अब निवृत्ति काल पका, यह पढ़कर बिजलीके वेगकी तरह आनंदकी लहर आयी थी; कारण पूर्व निवृत्ति ही विकल्परूपसे निश्चये भजी थी, ऐसा पूरा प्रतीतिमें आता है। अब तो श्री गुरुदेवकी कृपासे न निवृत्त हूँ, न प्रवृत्त हूँ, ऐसा निश्चय हो चुका है व पूर्वके निवृत्तपरिणामोंने अतः अब निश्चयके बजाय व्यवहारका पद ले रखा है। समय लगभग २० दिन पहले आया भी था, बंबई तक जाना भी हुआ था, सोनगढ़ पहुँचनेके विकल्प भी अधिक हुए थे मगर इधर ही लौटना पड़ा, ऐसे कारण हो गये थे। अब दशहरेके बाद उधर आना हो सकेगा।

आप लोग साक्षात् चैतन्यमूर्ति गुरुदेवके सान्निध्यमें दशलक्षणी पर्वके अवसर पर अति उत्साहपूर्वक धर्मलाभ लेंगे, मुझ जैसे पुण्यहीनको यह लाभ कहाँ ?...

अधिक क्या लिखूँ ? विकल्पोंको तो धधकती हुई भट्टीके योगोंका निमित्त है व इस मध्ये ही रहना हो रहा है, जबकि चैतन्यमूर्ति विकल्पोंको छूनेवाली भी नहीं है; अधूरी दशाके विकल्पांशोंमें श्रद्धामें जमी हुई इस मूर्तिका एक रस आलिंगन कहाँ ! चैतन्यमूर्तिके एक रसमें ओत-प्रोत रहें, यह ही भावना।

धर्मस्नेही

निहालचंद्र

प्रवचन - ११ दि. ०६-०८-१९९१ - पत्रांक-२९

ॐ श्री सद्‌गुरुदेवाय नमः

आत्मार्थी... धर्मस्नेह

`आपका पत्र पहले भी मिला था व शशीभाईका एक और भी। आपने लिखा था कि अब निवृत्ति काल पका, यह पढ़कर बिजलीके वेगकी तरह आनंदकी लहर आयी थी;...' देखो ! निवृत्तिके लिए कितनी छटपटाहट है ! ज्ञानी होनेके बाद भी निवृत्तिके लिए कितना छटपटाते हैं !! आपका निवृत्तिका काल पका, इतनी बात लिखी (कि) बिजलीका करंट लगा हो ऐसी आनंदकी लहर आ गई। जिसको निवृत्ति है उसको कीमत नहीं है या समय पसार करनेके लिए समय बिगाड़ते हैं। जब कि ऐसे ज्ञानियोंको पूर्वकर्मके उदयवशात् निवृत्ति नहीं हो, तो बात सुनते ही, उन्हें निवृत्तिकी कोई बात कह दें तो भी हर्षित हो जाते हैं। (पत्रमें) लिखा कि, अब आपका निवृत्ति काल पका, तो उनको बहुत अच्छा लगा, **`कारण पूर्व निवृत्ति ही विकल्परूपसे निश्चये भजी थी, ऐसा पूरा प्रतीतिमें आता है।'** निवृत्तिको बहुत भजी थी मतलब निवृत्तिका बेसब्रीसे इंतज़ार किया था। स्वयं निवृत्तिके लिए (और) प्रवृत्ति छोड़नेके लिए बहुत आतुर हैं। (प्रवृत्तिमें) रस नहीं, कंटाला आता है (ऊब जाते हैं)। इसलिए अब निवृत्ति आयेगी ऐसा जब आपने कहा, आपका निवृत्तिका काल पका लगता है, (ऐसा लिखा) तो बहुत अच्छा लगा।

(आगे लिखते हैं), `**अब तो श्री गुरुदेवकी कृपासे न निवृत्त हूँ, न प्रवृत्त हूँ,...**' अभी तो गुरुदेवकी कृपासे परिणति अंदरमें ऐसी काम करती है कि, निवृत्ति भी नहीं है और प्रवृत्ति भी नहीं है। कुछ और ही (चलता है)। `**अब तो श्री गुरुदेवकी कृपासे न निवृत्त हूँ, न प्रवृत्त हूँ, ऐसा निश्चय हो चुका है व पूर्वके निवृत्तपरिणामोंने अतः अब निश्चयके बजाय व्यवहारका पद ले रखा है।**' (अर्थात्) वह व्यवहारकी निवृत्ति तो व्यवहारमें जाती है, निश्चयके बजाय वह व्यवहारके स्थानमें है। निवृत्तिके विकल्प भी व्यवहारके स्थानमें हैं।

मुमुक्षु :- यह कुछ समझमें नहीं आया।

पूज्य भाईश्री :- इसमें यह कहते हैं कि, गुरुदेवकी कृपासे अंतरमें बैठ गये फिर प्रवृत्ति-निवृत्तिकी कोई अपेक्षा नहीं रही। अतः न तो निवृत्ति है (या) न तो प्रवृत्ति। मैं तो मेरे आत्मामें हूँ। प्रवृत्ति-निवृत्तिकी कोई अपेक्षा (नहीं रही)। क्योंकि प्रवृत्ति अशुभ है और निवृत्ति शुभ है जब कि मैं तो शुभाशुभसे पार हूँ। अतः मुझे निवृत्ति-प्रवृत्तिकी कोई अपेक्षा नहीं है। ऐसी (ही) मेरी दशा कोई गुरुदेवकी कृपासे हो गई है, ऐसा कहना है। ऐसी मेरी दशा हो गई है।

मुमुक्षु :- परिणमनको नहीं देखते, सिर्फ ध्रुव स्वभावको ही देखते हैं।

पूज्य भाईश्री :- ध्रुव स्वभावको ही देखते हैं और ध्रुव (स्वभावमें) बैठ गये हैं। अतः बाह्य शुभाशुभकी प्रवृत्ति है वह शुद्ध परिणतिसे बिलकुल अलग ही है। यानी कि इसकी अपेक्षारहित परिणति है। शुद्ध परिणति शुभाशुभसे निरपेक्ष है, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु :- भिन्न पड़ गये हैं ?

पूज्य भाईश्री :- वे भिन्न पड़ चुके हैं। प्रवृत्ति-निवृत्तिकी मुख्यता नहीं रहती। जैसे ही शुद्धतामें आ गये (कि) बाह्य शुभाशुभ प्रवृत्ति-निवृत्तिकी अपेक्षा नहीं रहती, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु :- पूर्वमें जो निवृत्ति भायी थी वह इसके लिए भायी थी।

पूज्य भाईश्री :- इसके लिए ही भायी थी। अतः अब तो यह निश्चय मिल गया। पहले एक निश्चय किया था कि निवृत्ति लेनी है और निवृत्ति तक पहुँचना है। (परंतु) अब तो ऐसे पदमें आ गया हूँ कि, वह निश्चय अब व्यवहारमें जाता है, निश्चयमें नहीं रहता, ऐसा कहना है। ऐसा निश्चय हो चुका है कि, अब मैं प्रवृत्त या निवृत्त नहीं हूँ। तथा, `**व**' माने तथा। `**पूर्वके निवृत्तपरिणामोंने अतः अब निश्चयके बजाय व्यवहारका पद ले रखा है।**' (यानी कि पहले) जो निवृत्तिके परिणाम थे कि, चलो अब पंद्रह दिन निवृत्ति लेकर सोनगढ़ जायें। वह अब व्यवहारमें जाता है। ये (परिणाम) अब व्यवहारके स्थानमें आ गये हैं।

`**समय लगभग २० दिन पहले आया भी था, बंबई तक जाना भी हुआ था, सोनगढ़ पहुँचनेके विकल्प भी अधिक हुए थे मगर इधर ही लौटना पड़ा, ऐसे कारण हो गये थे। अब दशहरेके बाद उधर आना हो सकेगा।**' बीस दिन पहले ज्यादातर अगस्तमें आनेका विचार हो गया होगा, बंबई तक किसी कामवशात् आये होंगे, (परंतु) फिरसे वापिस कारणवशात् वहाँसे कलकत्ता वापिस जाना पड़ा इसलिए अभी दशहरेके बादमें आनेका विचार रखा है। करीब उन दिनों ही आते थे। या तो दशलक्षणी पर्युषणमें या फिर आसोज (महिनेमें) आते थे।

`**आप लोग साक्षात् चैतन्यमूर्ति गुरुदेवके सान्निध्यमें दशलक्षणी पर्वके अवसर पर अति उत्साहपूर्वक धर्मलाभ लेंगे, मुझ जैसे पुण्यहीनको यह लाभ कहाँ ?...**' आपको तो दशलक्षणी पर्वमें गुरुदेवका सान्निध्य मिलेगा, मैं तो हीनपुण्य हूँ, मुझे ऐसा लाभ कहाँसे मिले ? कि, दशलक्षणी पर्वमें मैं वहाँ आ सकूँ ! ऐसा कहते हैं।

`**अधिक क्या लिखूँ ? विकल्पोंको तो धधकती हुई भट्टीके योगोंका निमित्त है...**' विकल्पके निमित्त तो ये सारे संयोग हैं, जो कि मेरे लिए तो धधकती भट्टी है !! इतना जलता हूँ ! इतना इसमें जलता हूँ !! यह योग है - सारा जो कामका योग है वह सब मेरे लिए धधकती भट्टी है। `**व इस मध्ये ही रहना हो रहा है,...**' और अभी तो इस भट्टीमें पड़े हैं। यहीं रहना पड़ता है। `**जब कि चैतन्यमूर्ति विकल्पोंको छूनेवाली भी नहीं है;...**' यह एक (बात) जबरदस्त काम करती है !! कि जब विकल्पोंमें धधकती भट्टी जैसा अनुभव होता है तभी उसी वक्त चैतन्यमूर्ति जो मेरा पद है वह विकल्पोंको छूता भी नहीं है। फिर संयोगोंको तो कहाँसे छूए ? विकल्पको भी स्पर्श नहीं करता। मेरा स्थान तो विकल्पसे पार है। `**जब कि चैतन्यमूर्ति विकल्पोंको छूनेवाली भी नहीं है; अधूरी दशाके विकल्पांशोंमें...**' ये विकल्प तो अधूरी दशाके कारण हैं न ! `**अधूरी दशाके विकल्पांशोंमें...**' (यानी कि) उसवक्त भी। देखो ! यह ज्ञानदशा है। बहुत विचक्षणतासे यह वचन निकला है ! यह उनकी ज्ञानदशाकी साक्षी दे ऐसा एक वचन है, साबित कर दे ऐसा (वचन है)। `**अधूरी दशाके विकल्पांशोंमें...**' यानी कि अधूरी दशाके कारण विकल्पके जो अंश उत्पन्न हुए हैं उस वक्त भी `**श्रद्धामें जमी हुई इस मूर्तिका...**' उसी वक्त मेरी श्रद्धामें यह चैतन्यमूर्ति जमी हुई है। `**इस मूर्तिका एक रस आलिंगन कहाँ** !' (अर्थात्) विकल्पोंमें उसका आलिंगन कहाँ (है)! श्रद्धामें जो आलिंगन है वह आलिंगन विकल्पमें कहाँ है, (ऐसा कहते हैं)। एक ही समयकी दशामें दो उलटी-सुलटी परिस्थिति हैं। विकल्पांशका धधकती भट्टीके साथ संबंध है (और) उसीवक्त चैतन्यमूर्ति तो विकल्पको छूती भी नहीं है कि जो श्रद्धामें जम गई है। ऐसा जो श्रद्धाको आलिंगन है ऐसा आलिंगन विकल्पमें कहाँ है ! चैतन्यमूर्तिको विकल्पका आलिंगन नहीं है। वह कहाँसे होगा उसे ?

`**चैतन्यमूर्तिके एक रसमें ओत-प्रोत रहें, यह ही भावना।**' अतः अब तो सब तरहसे एक चैतन्यमूर्तिके रसमें ओतप्रोत हो जाऊँ ! यही भावना है। यह (विकल्पकी) भट्टी बंद हो जाये ऐसी भावना है। भट्टीमें रहना नहीं सुहाता।

मुमुक्षु :- विकल्पोंसे भिन्नता भी अनुभवमें आती हो तो दुःख कहाँसे भासित हो ?

पूज्य भाईश्री :- क्यों, वह कोई चैतन्यकी पर्याय नहीं है क्या ? वैसे तो मुख्यरूपसे सुख भासित होता है, गौणरूपसे दुःख है। दुःख और सुख दोनों हैं, परंतु मुख्य सुख है, और दुःख गौणरूपसे है। परंतु वह गौणरूपसे (जो) थोड़ा दुःख है, वह भी बरदाश्त नहीं होता है, ऐसा कहना चाहते हैं। वह भी पुसाता नहीं है। भीतरमें पूर्ण सुख है और बाहरमें भी पूर्णतामें ही जाना है।

मुमुक्षु :- अधूरा मिले यह कैसे बरदाश्त हो ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, अधूरा नहीं पुसाता है। अधूरा नहीं पुसाता। मुनिराजको नहीं पुसाता है न ! (तो) गृहस्थको कहाँसे चले ? ध्येय तो दोनोंका एक ही है, आश्रय तो दोनोंका एक ही है। वास्तवमें तो यह (बात) है।

मुमुक्षु :- वैसे देखा जाये तो वहाँ अपूर्णताका दुःख है।

पूज्य भाईश्री :- अपूर्णताका ही तो दुःख है न ! जितना विकल्प है उतनी आकुलता उत्पन्न होती है और वह खुदकी पर्याय होनेसे दुःखका अनुभव भी होता है, परंतु वह गौण है। लेकिन (दुःख) थोड़ा है, दोष थोड़ा है। दोष थोड़ा होनेसे दुःख थोड़ा है, परंतु वह लगता है ज्यादा, काफी लगता (है)। जैसे एक आदमीको बहुत

अनुकूलता हो उसे थोड़ी प्रतिकूलता भी बड़ी लगती है। उसे थोड़ी प्रतिकूलता भी ज्यादा लगती है। जैसे कि कुछ लोगोंको सोनेकी आदत (ऐसी) हो, तो नहीं कहते हैं ? कि मुझे तो मेरा रुम, मेरा पलंग, मेरा घर ही चाहिए, किसीके घर जाना पड़े (और) सोना हो तो मुझे तो फिर नींद ही नहीं आती है। बिस्तर तो बिस्तर है। नींद आ जानेके बाद नीचे लेटा हूँ या ऊपर लेटा हूँ यह पता नहीं रहता। जमीन (पर) सोये हुएको पता नहीं है कि मैं नीचे सोया हूँ और पलंग पर सोये हुएको पता नहीं है कि मैं पलंग पर सोया हूँ। परंतु मानसिक परिस्थिति ऐसी हो जाती है कि, मुझे इसके बिना नहीं चलेगा। अब, यह तो सामान्य प्रतिकूलता है (फिर भी लगता है कि) मुझे नहीं चलेगा। वैसे ये अनंत सुखके धामको देखते हैं और निराकुल सुखमें आये हैं तो उन्हें थोड़ा दुःख भी बरदाश्त नहीं होता है। उन्होंने एक जगह लिया है कि देवादिकके प्रति उपयोग जाता है तो भी भट्ठी जैसा दुःख लगता है। देव, शास्त्र, गुरुके प्रति (उपयोग जाना) यह तो शुभभाव है और शुभभावमें तो कषाय मंद है, अब मंद कषायमें भट्ठी जैसा दुःख कैसे लगता होगा ? इसीलिए तो विवाद चला। उस परसे तो प्रश्न उपस्थित हुआ (कि) ऐसा क्यों कहते हैं ? (परंतु यह तो) आत्माकी शांति जिसने देखी हो उसकी बात है। किसकी बात है यह ? आत्माकी शांति जिसने देखी हो उसे पता चलता है कि विकल्प बाहर निकलता है तब भट्ठी जैसा दुःख लगता है। ऐसी बात है। गुरुदेवने यह न्याय खोला है। (गुरुदेव) ऐसा बोले थे कि, आत्माकी शांति नहीं देखी है, वरना यह प्रश्न नहीं उठता। इसका अर्थ यह हुआ कि इन्होंने (सोगानीजीने) आत्माकी शांति देखी है, इसलिए उन्हें यह खयालमें है। जो कहा है वह ठीक है। आत्माकी शांतिकी

तुलना (करके) बात की है। आत्माकी शांतिकी तुलनामें कौनसी बात, कौनसी जगह, किस पदकी, किस स्थानकी, किस तरह बात चली है, यह सामनेवालेको पता नहीं है, ऐसा कहना है। क्योंकि वह अनभिज्ञ है, वह मार्गसे अनभिज्ञ है। यह साबित हो चुका था।

मुमुक्षु :- जब देवादिक प्रतिके शुभरागमें भी भट्ठी जैसा दुःख लगता है तो जिसे अशुभमें भी दुःख न लगता हो तो ज्ञानको आवरण कितना अधिक होगा !

पूज्य भाईश्री :- अशुभमें भी भट्ठी जैसा दुःख न लगता हो तो फिर ज्ञान कितना आवरित हो चुका होगा !! कि बहुत आवरणयुक्त हो चुका है।

मुमुक्षु :- इतना आवरण आ गया हो, फिर तो काम करनेमें भी काफी देर लगती है न ?

पूज्य भाईश्री :- ऐसा कहकर क्या कहना चाहते हो ? देर लगे ऐसा कहनेके पीछे क्या अभिप्राय है यह पहले कहिये, फिर (उसका) निराकरण करते हैं।

मुमुक्षु :- हम हमारा काम तेजीसे करें।

पूज्य भाईश्री :- हो सकता है, आत्मामें ऐसी शक्ति है कि चाहे कभी भी बहुत बड़ा पलटा खा सकता है। सातवीं नरकमें गया उसने भी वहाँ पलटा खाया कि नहीं ? (वरना वह तो) अनिष्ट परिणाम करके गया था, यह बात तो साबित होती है। यह बात साबित करनेकी ज़रूरत नहीं है (फिर भी उसने) पलटा क्यों खाया ? (यह सूचित करता है कि) चाहे कभी भी जीव जबरदस्त पलटा खा सकता है।

मुमुक्षु :- चाहे कितना भी आवरण आ गया हो फिर भी ज़ोरसे कामको उठाये तो हो सकता है !

पूज्य भाईश्री :- अपने सोगानीजीका दृष्टांत लें। उन्होंने गुरुदेवको इतना नहीं सुना था, न तो उन्होंने गुरुदेवका उतना परिचय किया था। और उनसे पुराने तो काफी सुननेवाले थे। गुरुदेव १९९१से वहाँ निवास करते थे। यानी कि २० सालसे तो (वहाँ) सुननेवाले थे। तो फिर उन लोगोंको देर लगी और इनको देर नहीं लगी यह क्या सूचित करता है ? कि (काम होनेमें) देर नहीं लगती। यह क्या सूचित करता है कि इतनी देर लगनी चाहिए ऐसा कालक्रमका नियम यहाँ लागू नहीं होता।

जब ज्ञानी तुमको कहते हैं कि, विकल्पमें दुःख है, फिर विकल्पके अनुभवकी जाँच क्यों नहीं करते हो ? चलते हुए विकल्पके अनुभवकी जाँच जीव क्यों नहीं करता ? उसमें है वह बात नक्की है, दुःख है यह बात नक्की है और देखना चाहे तो नहीं दिखे, ऐसा तो कुछ है नहीं। खुद देखना चाहे और न दिखे, ऐसी परिस्थिति नहीं है। अज्ञानदशामें भी विकल्पमें दुःख लगता है, दिखता है, अनुभवमें आता है। अतः ऐसा नहीं है कि ज्ञानी होनेके बाद दिखे। ऐसा नहीं है कि ज्ञानी होनेके बाद ही दिखे। मुमुक्षुकी भूमिकामें भी उसे दुःख लगता है। अगर (दुःख) नहीं लगता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि खुद देखनेकी मेहनत नहीं करता है। ऐसा उसका अर्थ है। वह खुद देखनेका प्रयास तक नहीं करता है।

'परमागमसार'में गुरुदेवका इस विषय पर एक वचनामृत है। वहाँ थोड़ी कड़क बात भी की है। दुःख लगे तो हटनेका सहज प्रयास हुए बिना रहे नहीं। क्यों यह विकल्प नहीं मिटता ? क्योंकि उसको वहाँसे हटनेके लिए जो दुःख लगना चाहिए वह नहीं लगता। फिर विकल्प छूटे कहाँसे ? दुःख लगे तो छूटनेका प्रयत्न हो और छूटनेका प्रयत्न हो तब तो छूटे। देखो ! (परमागमसार बोल - ८८में) क्या

कहते हैं ?) '**सम्यग्दृष्टिको राग या दुःख नहीं ऐसा तो दृष्टिकी प्रधानतासे कहा है।**' वे नरकमें जाये तो भी 'अंतर सुखरस गटागटी' (ऐसा कहेंगे)। वह बात दृष्टिकी प्रधानतासे है। क्योंकि दृष्टि तो अनंत सुखके धामके अलावा किसीका स्वीकार नहीं करती। '**परंतु पर्यायमें जितना आनंद है, उसे भी ज्ञान जानता है।**' जो आनंद प्रगट हुआ है, सुख प्रगट हुआ है उसे ज्ञान जानता है, अनुभव करता है। '**और जितना राग है...**' साधकदशा है मतलब पूर्ण वीतरागता नहीं है, '**जितना राग है उतना दुःख भी साधकको है - ज्ञान वह भी जानता है। पर्यायमें राग है, दुःख है उसे जो नहीं जानता उसके तो धारणा-ज्ञानमें भी भूल है।**' क्या कहा ? उसकी तो धारणाज्ञानमें भी भूल है। धारणामें ऐसे आना चाहिए कि विकल्प है सो दुःखरूप है। यह धारणामें होना चाहिए।

मुमुक्षु :- वैसे तो धारणज्ञान है सो अनुभवज्ञान नहीं है।

पूज्य भाईश्री :- भले ही अनुभव (ज्ञान) नहीं है किन्तु पहले धारणामें आयेगा तब तो अनुभवमें आयेगा न ! धारणा उलटी और अनुभव सुलटा, ऐसा होगा क्या ? धारणामें ऐसा हो कि यह विकल्पमें मुझे सुख लगा, उसे अनुभवमें कभी दुःख लगेगा क्या ? यह बन ही नहीं सकता। उसकी तो धारणाज्ञानमें भी भूल है, ऐसा कहते हैं।

'**सम्यग्दृष्टिका बल बतलानेके लिए कहा है कि उसे आस्त्रव नहीं, परंतु जो आस्त्रव सर्वथा न हो तो मुक्ति होनी चाहिए।**' मुक्तदशा होनी चाहिए, परंतु ऐसा नहीं है। जितना आस्त्रव है उतना दुःख है। धारणाज्ञानमें भूल (है ऐसा) इसलिए कहते हैं कि, यदि कोई ऐसा विचार करे कि, किसीको विकल्पमें दुःख लगता है और किसीको नहीं भी लगता। किसीको - सोगानीजी जैसेको लगता होगा, किसीको नहीं भी लगे और यूँ ही ज्ञानी बन जाये - ऐसा कभी नहीं बनता।

उसकी धारणा भी गलत है, ऐसा कहना है।

इसमें क्या है, अवलोकनके बिना जातिकी परख नहीं आती। और अवलोकन हो तो वह अवलोकन इतना सूक्ष्म व बारीक होता है कि, आत्माके स्वरूपका एक सूक्ष्म विकल्प उठे तो भी उसे तुरंत अशांतिका खयाल आता है (कि), इसमें उपाधि है, इसमें बोझा है, परिणाम पर बोझा है, उपाधि है, अशांति है, दुःख है और यह जाति विकारकी है। भले ही स्वरूपका विकल्प हो परंतु जाति विकारकी है। इसतरह जाति पहचाने बिना पता नहीं चलता, वरना दूसरे तो भ्रांतिमें आ ही जाते हैं। उसे आत्मध्यान मान लेते हैं। एकाग्रताके साथ आत्माका थोड़ा चिंतवन चले तो कहेगा कि, हमें आत्माका ध्यान हो गया ! क्योंकि उसे जातिकी खबर नहीं है कि ये स्वभावजातिके परिणाम हैं या विभावजातिके परिणाम हैं ? इसकी खबर ही नहीं।

मुमुक्षु :- कोई विकल्प सुहाता है और कोई विकल्पमें दुःख लगता है इसका अर्थ यह हुआ कि जातिको नहीं पहचाना ?

पूज्य भाईश्री :- (हाँ), जातिको नहीं पहचाना। जातिको नहीं पहचाना इसलिए वेश बदलकर (विकल्प) आया कि भुलावेमें आ जाता है। ऐसा (होता) है। जातिको पहचाने तो भूला न पड़े।

मुमुक्षु :- अब तो प्रश्न यह नहीं कि दुःख लगना चाहिए कि नहीं, परंतु प्रश्न यह है कि अवलोकन करता है या नहीं ?

पूज्य भाईश्री :- अवलोकन करे तो दुःख लगे बिना रहे नहीं। दुःख, दुःख ही लगे। क्योंकि अवलोकन माने अनुभवको अनुभवमें लेना - जो भी अनुभव हो उसे अनुभवमें लेना इसका नाम अवलोकन ! अवलोकनका दूसरा नाम अनुभवपद्धति है। अपने अनुभव पर उपयोग ले जाने पर जो चलता हुआ अनुभव हो वह बराबर अनुभवमें आता

है। उपयोग अनुभव पर चला जाता है। अनुभव पर उपयोग जाये तो अनुभवमें जो भी हो वह मालूम पड़ता है। सीधी-सी बात है। परंतु उपयोग अनुभव पर ले नहीं जाता। यह (बात) है। गड़बड़ इसमें है।

मुमुक्षु :- दुःख लगता नहीं, लगता नहीं ऐसा कहता है। दुःख लगेगा तब देखा जायेगा, ऐसा नहीं होना चाहिए।

पूज्य भाईश्री :- (दुःख) लगता नहीं, और जब लगेगा तब देखेंगे, इसका अर्थ यह हुआ कि अभी तो मुझे कोई चिंता नहीं है, भले ही नुकसान हो। यद्यपि जीवको नुकसान मालूम हो तो वह नुकसानको बरदाश्त कर ले ऐसा है ही नहीं। एक दृष्टांत लेते हैं कि, घरमें पानीके मटकेमें छिद्र या छोटी दरार पड़ जाये और इसमेंसे पानी चला जाता हो, पता चले कि अभी-अभी तो मटका भरा था, यह आधा कैसे हो गया ? पानी तो किसीने पिया नहीं। अभी पाँच मिनट पहले मटका भरा और यह आधा कैसे हो गया ? कहींसे पानी जा रहा है। पनसालकी जगह गीली रहनेसे पता न चले, परंतु मटका आधा हो गया यह तो पता चला कि नहीं ? इसलिए तुरंत बारीकीसे देखेगा। बारीकीसे देखते ही पता चलेगा कि यह दरार पड़ गई है, वहाँसे पानी जाता है। मटके पर भी कहीं न कहीं फर्क दिखेगा न ! (पता चलनेके) बाद हाथ पर हाथ धरकर बैठा रहेगा ? जिस मटकेमेंसे पानी चला जाता हो तो फिर यूँ ही बैठा रहेगा कि उसे बदल देगा ? भले ही चला जाता ! पानी ही तो जाता है, पैसा कहाँ जाता है ! (ऐसा सोचकर बैठा रहेगा ?) (अरे !) पानी जाये उतना नुकसान भी कोई बरदाश्त नहीं करना चाहता, तो फिर घी जाता हो तो ? यह तो घी जा रहा है। आत्माका अमृत लुटा जा रहा है !! परंतु उसको पता नहीं इसलिए

जाने देता है। पता चले तो नहीं जाने दे। आत्माकी शांति और अमृत लुटा जा रहा है, अमृत चला जा रहा है, अमृत गिरते जा रहा है, घी बहता जा रहा है, कौन सहन करेगा इसको ? कोई सहन नहीं करता। इसलिए ज्ञानीको भट्ठी जैसा दुःख लगता है। ऐसा है।

मुमुक्षु :- एक तो गिरता है उसमें खुद सहयोग दे रहा है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, साथ देता है। उलटा इसमें राज़ी होता है। नुकसान हो और राज़ी हो !! उसे मूर्ख ही कहेंगे या और कुछ ? खुदकी नुकसानीमें खुद राज़ी हो तो वह मूर्ख ही कहलायेगा या और कुछ ? ऐसी बात है। घरमें बेटेकी शादीका प्रसंग आये तो राज़ी हो जाये, बेटा बड़ा हो जाये तो राज़ी हो जाये, फिर शादीका प्रसंग आये तो और खुशी हो जाये, लेकिन तुझे क्या होता है ? कि, तेरेमें तो नुकसान होता है।

मुमुक्षु :- तीव्र अशुभमें तो दुःख लगे, परंतु शुभमें अच्छा लगता है।

पूज्य भाईश्री :- अवलोकन नहीं है, (भावोंका) परिचय नहीं है, फिर ऐसा ही होवे न ! तीव्र आकुलताका परिचय है, ठीक ? और वह कम हो तब क्या होगा ? अच्छा ही लगेगा न ! १०५ डिग्री बुखारमें माथा फट रहा हो, फिर १०० डिग्री होनेपर अच्छा ही तो लगेगा ! परंतु क्या उसे रहने दे ? (वह बुखार) Normal होना ही चाहिए। अगर वह चालू रह जाये तो बड़ी मुसीबत हो जाये। १०५ डिग्रीका (बुखार) १०० तक लाना आसान है लेकिन १००से साढ़े निन्यानवे तक लाना मुश्किल है। उसमें डॉकटरको भी पसीना आ जाता है। (अगर बुखार) नहीं उतरा तो भीतरमें कोई बड़ी भयंकर बिमारी है, इसलिए Temperature नहीं जाता है यह नक्की होता है। (इसके लिए) फिर Investigation में जाना पड़ता है।

पत्रांश - ३०

....ज्ञानानंदी गढ़, वीतरागप्रधानी गुरुदेवकी प्रशस्त राग अंश निमित्तक सिंहगर्जनाओंसे ४७ नयोंपर पुण्यवान मुमुक्षुओंको उल्लासित प्रवचनोंका लाभ हुआ, जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई। पुण्यअभावयोगसे इस अवसरसे मुझे वंचित होना पड़ा, इसका खेद रहा। श्री गुरुदेवके प्रवचनोंका मुख्य सार मैंने यह लिया है :

वर्तमानमें ही परिपूर्ण हूँ। वर्तमानसे ही देवादिक पर अथवा उनआश्रित रागसे किंचित्मात्र लाभका कारण नहीं। लाभ मानना ही अलाभ है। वेदनके अलावा अन्य कोई क्रिया जीवकी नहीं। शरीरआश्रित अथवा परआश्रित आकुलित वेदनको, समकाले ज्ञानवेदन द्वारा, गौण करते-करते नाश करना मुमुक्षुओंका ध्येय है। यह ज्ञानवेदन अखण्ड त्रिकाली अपरिणामी ध्रुव अस्तित्वमयी स्वपनेके अनुभवमें सहज ही उदय होता है। रागसे भेद करता (ज्ञान) निःशंकित निराकुल सुख वेदनके साथ प्रत्यक्ष प्रमाणरूप प्रगट होता है। वृद्धि पामता-पामता अनंत सुख व ज्ञानका लाभ करता है। अप्रसिद्ध अवेदक मुख्य अखण्ड स्वभावमें श्रद्धाके स्वअस्तित्वरूपमें प्रसरते ही प्रसिद्ध वेदन गौण होकर एक ही काल त्रिकाली व वर्तमान दोनों भावोंका अनुभव होता है। यह ही भेदज्ञान है। रागसे पृथक् ज्ञानका अनुभव ऐसे ही होता अन्यथा नहीं।

योग होनेसे April में श्री गुरुदेवकी जन्मतिथि पर मिलना होगा।

शुद्धात्मस्नेही
निहालचन्द्र

प्रवचन - १२ दि. ०६-०८-१९९१ - पत्रांक-३०

`**ज्ञानानंदी गढ़,...**' देखो ! अब गुरुदेवको विशेषण दिया है। गुरुदेव हैं सो ज्ञानानंदी गढ़ हैं। `**ज्ञानानंदी गढ़, वीतरागप्रधानी गुरुदेवकी प्रशस्त राग अंश निमित्तक सिंहगर्जना....**' कैसे हैं गुरुदेव ? कि वीतरागप्रधानी हैं। ऐसे गुरुदेवकी प्रशस्त रागके अंशरूप (अर्थात्) परिणाममें प्रशस्त रागका अंश है। पूरा राग नहीं, पूराका पूरा राग नहीं, रागमें तन्मय नहीं है। रागके अंशसे (अर्थात्) अंशके निमित्तसे उत्पन्न हुई, क्या ? (कहते हैं) सिंहगर्जना जैसी वाणी - प्रवचन। रागांश निमित्तक प्रवचन ऐसा कहते हैं, `**सिंहगर्जनाओंसे ४७ नयोंपर पुण्यवान मुमुक्षुओंको उल्लासित प्रवचनोंका लाभ हुआ, जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई।**' उस वक्त ४७ नय पर प्रवचन चलते होंगे और पत्र लिखनेवालेने यह समाचार लिखे होंगे कि, यहाँ पूज्य गुरुदेवके ४७ नयों पर बहुत अच्छे प्रवचन आ रहे हैं। यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। गुरुदेव तो ज्ञानानंदी गढ़ हैं, वीतरागप्रधानी हैं और एक रागके अंशके निमित्तसे जो वाणी छूटती है उसमें भी अद्‌भुत बातें आती हैं !!

मुमुक्षु :- प्रशस्त राग अंश ऐसा लिखा है।

पूज्य भाईश्री :- (हाँ) प्रशस्त राग अंश - प्रवचन देनेका राग है वह प्रशस्त राग है। अप्रशस्त अर्थात् अशुभ और प्रशस्त अर्थात् शुभ। परंतु शुभसे प्रशस्त शब्द है वह साहित्यकी भाषामें थोड़ा विशेष

सुशोभित शब्द है। प्रशस्त राग निमित्तक वाणी निकलती है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी वर्तमान पर्यायके दोनों पहलू उनके खयालमें हैं।

पूज्य भाईश्री :- सब खयालमें है। ज्ञानानंदी गढ़ हैं और राग तो एक अंशमें - चारित्रगुणकी पर्यायमें होता है, उसके निमित्तसे वाणी निकलती है उसमें भी मुमुक्षुओंको लाभ होता है ! थोड़ी कीमत करने जैसा विषय तो यह है कि, जो स्वयं - उनका आत्मा है उसकी तो क्या कीमत की जाये !! उनकी साधकदशामें शांति व अमृतका प्रवाह चलता है, इसकी तो क्या कीमत करें !! जब कि उस शुद्ध पर्यायके परिणामके साथ-साथ, बगलमें एक दूसरी रागकी पर्याय भी चलती है - जो मलिन है और यह पवित्र है - साधकदशाका अंश पवित्र है। उसके साथ-साथ प्रवचन देनेका प्रशस्त राग है वह मलिन है। और इस मलिनताके निमित्तसे वाणी निकली वह तो पुद्‌गल है !! वह तो चैतन्य भी नहीं है ! इसमें तो फिर भी चैतन्यका अंश है। ऐसी पुद्‌गल (वाणी) दूसरे जीवोंको निमित्त होनेमें - वे पुद्‌गल ही दूसरे जीवोंको चैतन्यदशा प्रगट होनेमें निमित्त होते हैं !!! तीसरे तिराहे पर इतना लाभ होता हो तब सीधा लाभ कितना होगा !! परंपरा ले तो आत्मा ज्ञानानंदी गढ़ है, इसके कारणसे पवित्रदशा है, उसके अवलंबनसे - उसके कारणसे (पवित्रदशा है)। वह अवलंबन (जो) चालू है वह पूर्ण नहीं बल्कि अपूर्ण है इसलिए उस वक्त राग-प्रशस्त राग व्यवहारका उत्पन्न होता है। और उस व्यवहारके रागके निमित्तसे वाणीके पुद्‌गल उत्पन्न होते हैं, यह तो निमित्त-निमित्तकी (अपेक्षासे बात ले) तो (ऐसी बात है)। और उस निमित्तसे दूसरेको चैतन्यका लाभ होता हो ! तो सीधा उनके आत्मामें कितना लाभ होता होगा !!! दूसरोंको भी - भिन्न

द्रव्यमें तीसरे तिराहेमें (भी) आत्माके निमित्त-नैमित्तिक संबंधसे लाभ होता है, तो उनके आत्मामें कितना लाभ !!! हमलोग कहते हैं न ! हीरेकी कीमत कितनी ? जब उसकी रजकी कीमत भी इतनी बड़ी होती है तो नक्की कीजिये कि (हीरेकी कीमत) कितनी ?

'**जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई। पुण्यअभावयोगसे इस अवसरसे मुझे वंचित होना पड़ा, इसका खेद रहा।**' (अर्थात्) मेरे पुण्यका अभाव है इसलिए मुझे उन प्रवचनोंके लाभसे वंचित रहना पड़ा है, इसका मुझे खेद है। देखो ! सत्संगको गौण नहीं करते हैं ! सत्संगके प्रति बहुत खिँचाव है।

'**श्री गुरुदेवके प्रवचनोंका मुख्य सार मैंने यह लिया है :-**' ऐसा करके खुदके परिणमनकी बात करनी है। गुरुदेवसे मैंने यह लाभ पाया है। गुरुदेवके प्रवचनोंसे यह सार मुझे ग्रहण हुआ है - ऐसा करके (बात) गुरुदेवके माथे पर चढ़ाते हैं।

प्रश्न :- परिणति को अंदर कैसे वालना (अंतर्मुख करना) **?**

उत्तर :- परिणति 'वालना' और नहीं 'नहीं वालना,' वह (ऐसा कर्ता) **'मैं' नहीं हूँ - ऐसी दृष्टि होते ही परिणति वल** (झुक) **जाती है। (द्रव्यदृष्टिप्रकाश -४१९)**

प्रवचन - १३ दि. ०७-०८-१९९१ - पत्रांक-३०

'**वर्तमानमें ही परिपूर्ण हूँ।**' गुरुदेवके प्रवचनोंका सार मैंने यह लिया है कि, वर्तमानमें ही मैं परिपूर्ण हूँ। '**वर्तमानसे ही देवादिक पर...**' आदिमें तीनों ले लेना - देव, गुरु, शास्त्र। '**अथवा उनआश्रित राग...**' (यानी कि) उनके लक्ष्यपूर्वक होनेवाला जो शुभराग '**किंचित्मात्र लाभका कारण नहीं।**' (अर्थात्) न तो देव, शास्त्र, गुरु मुझे लाभ कर देते हैं, न तो उनके प्रतिका राग मुझे लाभ करता है। फिर भी '**लाभ मानना ही अलाभ है।**' (उसमें) मिथ्यात्वका नुकसान है, ऐसा कहना है। रागसे लाभ मानना या परद्रव्य मेरा कुछ कार्य कर देगा और मुझे लाभ करेगा ऐसा मानना, यह मिथ्यात्व है। वह नुकसान है।

'**वेदनके अलावा अन्य कोई क्रिया जीवकी नहीं।**' (अर्थात्) ज्ञानवेदन जो है वह जीवका गुण है, ज्ञानगुण है सो जीवका स्वभाव है, (यानी कि) ज्ञान, ज्ञानका वेदन करे वह जीवका स्वभाव है, और इसके अलावा (दूसरी) कोई क्रिया जीवकी नहीं। '**शरीरआश्रित अथवा परआश्रित आकुलित वेदनको,...**' (अर्थात्) परिणमनमें जो आकुलताका अंश है उसे '**समकाले...**' (अर्थात्) उस ही काल-वर्तमानकालमें चलता हो उस वक्त ही। यहाँ समकालका अर्थ ऐसा है। वर्तमानमें वर्तता हो उसवक्त ही, आकुलताका वेदन होता हो उसवक्त ही '**ज्ञानवेदन द्वारा, गौण करते-करते नाश करना मुमुक्षुओंका**

ध्येय है।' इस एक पंक्तिमें उन्होंने भेदज्ञानकी प्रक्रियाका चितार दिया है। चालू-वर्तमान जो परिणमन कर रही पर्याय है, वर्तमानमें परिणमन करती हुई जो पर्याय है, उसमें ज्ञानवेदन भी है और उसमें रागादिका - आकुलताका भी वेदन है। अतः ज्ञानवेदनको मुख्य करके, ज्ञानवेदनका आदर करके आकुलित वेदनको गौण करना यानी कि निषेध करना, उस प्रकारसे मुमुक्षुको आगे बढ़ना चाहिए। मुमुक्षुको अपने ध्येयके प्रति इस प्रकार, इस प्रक्रियासे आगे बढ़ना चाहिए। यह रीत बता दी, लीजिए ! विधि (बतायी)।

मुमुक्षु :- ज्ञानीको ऐसी धारा चलती है ?

पूज्य भाईश्री :- ज्ञानीको ऐसा चलता है (और) मुमुक्षुको भी इस प्रकारसे प्रयत्न - पुरुषार्थ करना चाहिए। वारंवार प्रयत्न करना उसे पुरुषार्थका अभ्यास कहनेमें आता है। जैसे बार-बार पढ़नेसे कंठस्थ हो जाये तो उसे ऐसा कहा जाता है कि, इसने बहुत अभ्यास किया इसलिए कंठस्थ हो गया। क्योंकि बार-बार पढ़ा। वैसे वारंवार पुरुषार्थ करना वह पुरुषार्थका अभ्यास है। वारंवार प्रयोग करना वह प्रयोगाभ्यास है। पुरुषार्थ और प्रयोग अविनाभावी है। यह तो अपने यहाँ बात चलती ही है।

मुमुक्षु :- वेदनके अलावा अन्य कोई क्रिया जीवकी नहीं, ऐसा यहाँ कहा - परंतु यह वेदनकी क्रिया तो दिखती नहीं है ?

पूज्य भाईश्री :- नहीं दिखती है क्योंकि जीव देखनेका प्रयत्न नहीं करता है। (वेदन) है, जब है फिर भी नहीं दिखता हो तो देखनेका प्रयत्न करना चाहिए, और तो क्या कर सकते हैं ? यह दूज होती है न दूज ! ये मुसलमान लोग दूजको खास देखते हैं, मानते हैं न बहुत ! (इसलिए) वे लोग दूजके दर्शन करते हैं। सुदी-दूज पतली लकीर-सी होती है। इकाई तो न दिखे, संभव

है, परंतु दूज भी इतनी पतली होती है कि दिखे नहीं। वे लोग दूज उगते ही दर्शन करते हैं क्योंकि उसका उगनेका समय भी शामका है, अतः अंधेरा थोड़ा कम होता है, अतः जल्दीसे नहीं दिखे। एक कहे मुझे दर्शन हो रहा है, जिसको नहीं होता हो उसको लगेगा इनको दर्शन होता है, मुझे क्यों नहीं होता ? फिर उसे बराबर अंगुली निर्देश करके दिखायेगा कि, देखो ! मैं कहता हूँ, मेरी अंगुलीकी दिशामें सीधा गौरसे देखो ! वहाँ दूज है। मुझे स्पष्ट दिखती है। तो क्या करेगा, पहले अंगुलीको देखेगा फिर अंगुली देखना छोड़कर आकाशकी ओर देखेगा, तब उसे दूज दिखेगी। परंतु अंगुलीको न देखे तो आकाशका क्षेत्र तो बहुत बड़ा है कहाँसे दिखेगा ? वह अंगुली जो दिखाता है उस अंगुलीकी ठीक सीधी दिशामें देखे कि, (इस तरफ) अंगुली निर्देश किया है, उस तरफ मुझे देखना है, अन्यथा नहीं देखता है। बस ! ऐसा ही है। ज्ञानी कहते हैं कि ज्ञानवेदन है। ज्ञानवेदन है उतनी ही आत्माकी क्रिया है। इतना ही आत्मा है ! बोल इससे ज्यादा क्या कहे ? तेरा अनुभूतिस्वरूप आत्मा इतना ही है, ऐसा तू देख। 'स्वपने अनुभवमें आनेवाला ज्ञान ही आत्मा है' इतना ही आत्मा है। (तू कहता है) मुझे आत्मा नहीं दिखता, तो हम तुझे अंगुली निर्देश करते हैं, उस तरफ देखनेका प्रयत्न कर। इतनी (सी) बात है। यह सीधी बात है। प्रयास करे और दिखे नहीं, ऐसा नहीं बनता। इस मार्गकी एक सुविधा ऐसी है कि इस मार्गमें जिसने भी प्रयत्न किया है, कोई निष्फल नहीं गया। अन्यथा प्रयत्न किया हो तो निष्फल जाये यह तो स्वाभाविक है। परंतु जो सच्चा प्रयत्न करे वह निष्फल जाये ऐसा कभी नहीं बनता। अतः भावना है वह फलवान हुए बिना नहीं रहती। इसका कारण यह है। चौदह ब्रह्मांड फिर जाये (तो

भी) भावना फलवान हुए बिना नहीं रहती। अवश्य फलवान होवे ही।

मुमुक्षु :- ज्ञानवेदनका आविर्भाव करना, ऐसा आता है न ! ज्ञानवेदनका आविर्भाव करना और परवेदनका तिरोभाव करना।

पूज्य भाईश्री :- आविर्भाव करो ऐसा कहो, चाहे मुख्य करो ऐसा कहो, दोनों एक ही बात हैं। अन्य सब गौण करना। राग और रागका वेदन - आकुलता और रागका विषय (ये) सब गौण करना और ज्ञानवेदनको मुख्य करना।

मुमुक्षु :- उसवक्त जो क्रिया हुई वह शुद्धोपयोग हुआ ? या लब्धमें गया ?

पूज्य भाईश्री :- निर्विकल्पताके कालमें शुद्धोपयोग कहा जाता है। जब कि इसे शुद्धोपयोगका प्रयत्न कहा जाता है। भेदज्ञानके फलमें शुद्धोपयोग होता है। यह भेदज्ञानका प्रयास है।

मुमुक्षु :- पंद्रहवीं गाथा लागू हो सकती है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, (समयसारजीकी) पंद्रहवीं गाथामें यह बात की है। (यहाँ चलते हुए विषयमें क्या कहते हैं) कि समकाल अर्थात् चलते हुए परिणमनमें, ऐसा करना। अब यह ज्ञानवेदन सहजरूपसे कब उदित होगा ? यानी कि शुद्धोपयोग कब होगा ? देखो ! शुद्धोपयोगकी बात अब आगे आती है। शुद्धोपयोगमें (आत्मा) वेदनमें आता है न !

'**यह ज्ञानवेदन अखण्ड त्रिकाली अपरिणामी ध्रुव अस्तित्वमयी स्वपनेके अनुभवमें सहज ही उदय होता है।**' (अर्थात्) त्रिकाली ध्रुवमें अपना अस्तित्व या दृष्टि स्थापित करता है, श्रद्धा स्थापित करता है, श्रद्धा व्याप्य-व्यापकभावसे प्रसरती है तब ज्ञानवेदन स्वतः उदय होता है अथवा प्रगट हो जाता है। '**रागसे भेद करता...**' (समयसारजीकी) पंद्रहवीं गाथामें ज्ञानकी प्रधानतासे बात की है। यहाँ

दृष्टि प्रधानतासे बात की है, बस ! बात तो एक ही चली है। वहाँ ज्ञान प्रधानतासे बात की है, यहाँ श्रद्धा प्रधानतासे बात की है। वहाँ (समयसारजीमें) अब यहाँ शुद्धनयसे कहेंगे, ऐसे करके बात ली है। शुद्धनयसे कहो चाहे ज्ञानकी (प्रधानतासे) कहो, (दोनों एकार्थ ही हैं।)

'**रागसे भेद करता...**' यानी कि रागसे भिन्न होता हुआ '(**ज्ञान**) **निःशंकित निराकुल सुख वेदनके साथ प्रत्यक्ष प्रमाणरूप प्रगट होता है।**' यह ज्ञानकी प्रधानतासे बात की है। जब वह रागसे भिन्न पड़ता है तब ज्ञान स्वयं निःशंकितरूप हो जाता है। निःशंकता वह ज्ञानका निर्दोषताका गुण है। शंका है सो अवगुण है। निःशंकितरूपसे निराकुल सुखवेदनके साथ... क्योंकि निराकुलता खुदको ही वेदनमें आती है न ! (इसलिए ऐसा कहा।) प्रत्यक्ष प्रमाणरूप प्रगट होता है। अतीन्द्रिय प्रत्यक्षरूप स्वयं प्रगट हो जाता है। जैसे ही ज्ञानने इन्द्रियोंका घर छोड़ा (यानी कि) कभी चक्षुइन्द्रिय, कभी कर्णेन्द्रिय, वैसे अलग-अलग इन्द्रियोंमें जो उपयोग घूमता था, एक ही उपयोग पाँचों घरमें वेगपूर्वक घूमता था, वह इन्द्रियका घर छोड़ा और अतीन्द्रिय हुआ कि प्रदेश-प्रदेशमें वेदन आना चालू हुआ। सर्व प्रदेशसे अखण्ड एक आत्माका एक चैतन्यअखण्डपिंडका वेदन आता है। वह प्रत्यक्ष प्रमाणरूप प्रगट होता है (उसका भाव है)।।

'**वृद्धि पामता-पामता अनंत सुख व ज्ञानका लाभ करता है।**' और ऐसा जो वेदन है वह वृद्धिगत होता है और पूर्ण सुख व पूर्ण ज्ञानका, अनंत सुख व अनंत ज्ञानका लाभ (करता है)। यानी कि उत्पन्न करता है। '**अप्रसिद्ध अवेदक मुख्य अखण्ड स्वभावमें श्रद्धाके स्वअस्तित्वरूपमें प्रसरते ही प्रसिद्ध वेदन गौण होकर एक ही काल त्रिकाली व वर्तमान दोनों भावोंका अनुभव होता है।**' त्रिकाली

(स्वभाव) जो है वह तो अप्रसिद्ध है क्योंकि शक्तिरूप है। पर्यायकी तरह उसका व्यक्त उत्पाद नहीं होता। इसलिए अव्यक्त कहो, अप्रसिद्ध कहो (सब एकार्थ हैं)। समयसारजीकी ४९ वीं गाथामें अव्यक्तके छः बोल लिए हैं न ! वह `**अप्रसिद्ध अवेदक...**' शक्तिमें वेदन नहीं होता, त्रिकालीमें वेदन नहीं होता, द्रव्यस्वभावमें वेदन नहीं होता, पर्यायमें वेदन है। यह तो कल थोड़ी चर्चा चली थी कि, आश्रय है उसका वेदन नहीं और वेदन है उसका आश्रय नहीं। पर्यायमें वेदन है तो उसका आश्रय नहीं है। पर्यायमें सुख और आनंद वेदनमें आते हैं, स्वसंवेदनका वेदन भी पर्यायमें आता है परंतु उसका आश्रय नहीं लेता। देखो ! यह ज्ञानीकी विचक्षणता कहो, विलक्षणता कहो, वह इसमें है !! कि वेदन करते हैं पर्यायका परंतु उसका आश्रय नहीं लेते।

यह उसके जैसा है - आदमी चीनी या अनाज लेने जाता है न ! फिर जब उसमेंसे पसंदगी करनी हो तब व्यापारकी भाषामें ऐसा कहता है, अलग-अलग दो (तब व्यापारी क्या कहेगा) कि, दस बोरी पड़ी है। तो (वह कहेगा) दसों बोरियोंमेंसे नमूना निकालो। अतः दसों बोरियोंमेंसे नमूना निकालकर दस ढेरी करेगा। फिर वह नमूनेकी जाँच करके कहेगा कि, यह पाँचवीं बोरी अच्छी है। क्या कहेगा ? पाँचवाँ नमूना अच्छा है ऐसा नहीं कहेगा, पाँचवीं बोरी अच्छी है, (ऐसे कहेगा)। यानी कि देखेगा नमूनेको और लक्ष्यमें पूरी बोरी आयेगी! यह ज्ञानका कार्य है - एक साथ दो जगह काम करना ! (वैसे) अनुभव करे पर्यायका और लक्ष्य हो त्रिकालीका - ऐसा कहना है। क्या (कहना चाहते हैं) ? अनुभव करे - वेदन करे पर्यायका और लक्ष्य हो त्रिकालीका ! यह इसके जैसा है कि देखे नमूना और लक्ष्यमें ले पूरी बोरी। (वह ऐसा कहेगा) पाँचवीं

बोरी अच्छी है भाई ! पाँचवीं बोरी पर मेरा नाम लिख दो ! हमारे नामका निशान कर लो ! यह बोरी भेज देना, दसमेंसे यह एक बोरी ली है। पाँचवीं बोरी मुझे भेज देना। देखे नमूना और लक्ष्यमें (ले पूरी बोरी)। ज्ञान कैसा काम करता है ! एक साथ Double काम करता है ! ऐसा होता है। अज्ञानीको भी ऐसा होता है। चलनेका दृष्टांत नहीं लेते हैं ? चलते वक्त देखता है Traffic को कि, किसीसे टकरा न जाऊँ, खड्डेमें गिर न जाऊँ, रास्ता, Traffic सब ध्यानमें रखेगा, जहाँ Crossing हो, चार रास्ते जहाँ मिलते हो, तब एक साथ सब रास्तेका ध्यान रखेगा। सामनेसे, दायीं ओरसे बायीं ओरसे (ऐसे सब तरफ ध्यान रखेगा)। यह हम गांधीस्मृतिकी ओर यहाँसे जाते हैं कि नहीं ? यहाँ तो Traffic के नियम जैसा कुछ नहीं है, Wrong side मेंसे भी लोग आते हैं। दायीं ओरसे भी लोग आते हैं और बायीं ओरसे भी Cross करते हैं। एकसाथ तीन जगह और रास्तेका - सबका ध्यान रखना पड़े। तीन दिशा, चौथा यह कि रास्तेमें कहीं खड्डा तो नहीं है, कीचड़ तो नहीं है, और तो कुछ नहीं है, कोई बकरी या कुछ और कुचल तो नहीं रहा - ऐसे चारों तरफ ध्यान रखते हैं फिर भी लक्ष्य घर पहुँचनेका होता है। ज्ञानमें कितना सामर्थ्य है !! ज्ञानमें उस प्रकारका सामर्थ्य है। ज्ञान अर्थात् सिर्फ जानना, इतना ही नहीं है। ज्ञानमें बहुत भरा है। अभ्यास करे (और) सूक्ष्मतासे देखे तो काफी कुछ भरा है। (कोई ऐसा कहे कि) ज्ञान...ज्ञान क्या करते हो ? ज्ञान अर्थात् जानना...जानना वह ज्ञान बस बात पूरी हो गई। भाई ! ज्ञानमें तो बड़ा भण्डार भरा है ! इतना बड़ा भण्डार है। छद्मस्थके ज्ञानमें इतनी सारी विशेषताएँ हैं।

(यहाँ क्या कहते हैं ?) कि `**अप्रसिद्ध अवेदक मुख्य अखण्ड**

स्वभावमें श्रद्धाके स्वअस्तित्वरूपमें प्रसरते ही...' ये श्रद्धाप्रधानतासे बात की है। '**प्रसिद्ध वेदन गौण होकर...**' पहले कहेंगे कि (ज्ञान)वेदनको मुख्य करके रागको गौण करे। अब कहते हैं कि, प्रसिद्ध ज्ञानके वेदनको गौण करके,... '**एक ही काल त्रिकाली व वर्तमान दोनों भावोंका अनुभव होता है।**' वह वर्तमान पर्याय गौण होवे तो त्रिकालीका अनुभव हो। (ऐसा कहते हैं)। गौणरूपसे भी उसका वेदन है, त्रिकालीका वेदन नहीं है। एकसाथ दोनोंका युगपत् ज्ञान है। उसे प्रमाणज्ञान कहनेमें आता है।

(एक पत्रमें) कितनी बात ली हैं ! भेदज्ञानकी बातमें रागको गौण करवाया, (ज्ञान) वेदनको मुख्य करवाया। आगे जाकर त्रिकालीको मुख्य करवाया (और) वेदनको गौण करवाया और प्रमाणसे दोनोंका अनुभव होता है, ऐसा लिया। यह गुरुदेवकी वाणीका सार मैंने इतना लिया है। उसमें सब आ गया। एक पैराग्राफमें (सब आ गया)। वरना गुरुदेवका इतना परिचय नहीं है, (परंतु) अंतरसे सारी बातें अनुभवगोचर हैं इसलिए भाषामें व्यक्त की है।

'**यह ही भेदज्ञान है।**' हमलोगों की कभी भेदज्ञानकी चर्चा चलती तब वे ऐसा कहते थे कि, भेदज्ञानका विषय आपको बहुत स्पष्ट है ! उन्हें गुरुदेवका परिचय उतना नहीं था। गुरुदेवके प्रवचनमें भेदज्ञानका विषय बहुत चलता। जब भी आता बहुत अच्छा चलता। '**रागसे पृथक् ज्ञानका अनुभव ऐसे ही होता है अन्यथा नहीं।**' यह तीसवाँ (पत्र पूरा) हुआ।

पत्रांक - ३३

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः

आत्मार्थी... धर्मस्नेह।

पत्र ता. २२-११का यथा समय मिला। 'अस्थिरतासे देवादिक प्रत्येके परिणामोंमें खेद वर्तते व अखण्ड सद्भावरूप परिणमन होते हुए धर्मीजीवकी बुद्धिपूर्वक देवादिक प्रत्ये स्वरूप दृढ़ीभूत करनेके आशयकी प्रवृत्ति मुख्य तौरसे होती रहती है, ऐसा दिखता है' इस पर विशेष स्पष्टीकरण चाहा सो निम्न है :-

१. स्वरूपकी दृढ़ता देवादिक प्रत्येकी वृत्तिसे निश्चय ही नहीं होती।

२. मनआश्रित (विचारपूर्वक) मान्यतासे यथार्थ अखण्डआश्रित सहज आंशिकवृत्तिका सद्भाव (उद्भव) नहीं हो सकता।

३. त्रिकाली अस्तित्वमयी स्व, इस आश्रित परिणमी हुई आंशिक शुद्धवृत्ति व देवादिक प्रत्येकी आंशिक बाह्य वृत्ति - तीनों अंशोंका एक ही समय धर्मीको अनुभव होता है, जिसमें मुख्य - गौणका प्रश्न नहीं।

४. स्वके मापसे अन्यका माप किया जाता है। 'मैं' त्रिकाली ही हूँ, इस अनुभवमें परिणाम मात्र गौण है, चाहे बुद्धिपूर्वक हो या अबुद्धिपूर्वक। ऐसे धर्मीको कभी परिणामकी मुख्यता नहीं होती। अतः उसे अन्य धर्मी जीवमें भी परिणामकी मुख्यता नहीं दिखाई देती; जैसे कि मात्र परिणाम देखनेवालेको प्रवृत्तिकी मुख्यता दिखती है।

५. धर्मी, अधर्मीके भी त्रिकाली व वर्तमान दोनोंको एक साथ देखता है। त्रिकालीका अभान होनेसे अधर्मीको परिणाम

मात्रमें एकत्व होता है, इसका धर्मीको ज्ञान रहता है।

६. वृत्ति अपेक्षा त्रिकालीकी मुख्यतावाले धर्मीको सहज ही इस मुख्य आश्रित वृत्तिकी ही मुख्यता रहती है, वर्तती है; चाहे बाह्यांशमें बुद्धिपूर्वक प्रवृत्ति हो।

७. त्रिकाली तो प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप परिणामका ही कर्ता नहीं है। परिणामका कर्ता परिणाम ही है, यह अपेक्षा भी अपनी चर्चामें आई ही थी।....

धर्मस्नेही

सोगानी

प्रवचन - १४ दि. ०८-०८-१९९१ - पत्रांक-३३

आत्मार्थी... धर्मस्नेह !

`**पत्र ता. २२-११का यथा समय मिला।**' बाईस तारीखका लिखा हुआ पत्र चार-पाँच दिन बाद मिला होगा, फिर नौ तारीखको जवाब लिखा है। जो अवतरणचिह्नमें है वह प्रश्न है। `**अस्थिरतासे...**' यानी मोक्षमार्गी जीवको चारित्रगुणकी पर्यायमें जो अस्थिरता होती है उसके कारण (अर्थात्) अस्थिरतासे `**देवादिक प्रत्येके परिणामोंमें...**' (अर्थात्) देव-गुरु-शास्त्र प्रतिके परिणामोंमें `**खेद वर्तते...**' (मतलब) खेद तो वर्तता है। क्योंकि वह तो राग है इसलिए खेद वर्तते - (ऐसा लिखा है)। क्योंकि आकुलतामय है न ! और अभिप्रायमें उसको चाहते नहीं `**खेद वर्तते व अखण्ड सद्भावरूप परिणमन होते हुए...**' और

अखण्डके सद्भावरूप, (यानी) दूसरा अंश जो है वह अखण्डके प्रति झुका हुआ है, उसमें अखण्डका अस्तित्व पकड़ा है। ऐसा परिणमन होते हुए, `**धर्मीजीव...**' धर्मीजीवकी यह दशा है। अस्थिरतासे देवादिकके प्रति खेद सहित परिणाम जाते हैं। दूसरी ओर अखण्डके साथ सद्भावरूप परिणमन (वर्तता है)। ऐसे `**धर्मीजीवकी बुद्धिपूर्वक देवादिक प्रत्ये स्वरूप दृढ़ीभूत करनेके आशयकी प्रवृत्ति मुख्य तौरसे होती रहती है, ऐसा दिखता है।**' क्या कहते हैं ? कि ऐसे धर्मीजीवको बुद्धिपूर्वक देव, गुरु, शास्त्र प्रत्येके परिणाम होते हैं। दृष्टांतरूपसे भगवानकी पूजा करूँ, श्रीगुरु हो तो उनका सत्संग करूँ, ऐसे बुद्धिपूर्वक (परिणाम होते हैं)। (ऐसे) धर्मजीवकी बुद्धिपूर्वक देवादिक प्रत्ये जो प्रवृत्ति होती है वह स्वरूप दृढ़ीभूत करनेके आशयसे होती है। राग करनेके खातिर राग नहीं करते। परंतु उन-उन निमित्तोंको वे वीतरागतामें निमित्त बनाते हैं अथवा वीतरागता बढ़ानेका आशय है, वीतरागता वृद्धिगत करनेका आशय है। राग वृद्धिगत करनेका आशय नहीं है क्योंकि वे धर्मीजीव हैं।

`**धर्मीजीवकी बुद्धिपूर्वक देवादिक प्रत्ये स्वरूप दृढ़ीभूत करनेके आशयकी प्रवृत्ति मुख्य तौरसे होती रहती है,...**' मोक्षमार्गीजीवको तो मुख्यतया बाह्य प्रवृत्तिमें भी वीतरागता और स्वरूपको दृढ़ करनेका ही आशय है। `**ऐसा दिखता है।**' ऐसा लगता है। `**इस पर विशेष स्पष्टीकरण चाहा सो निम्न है :-**' इस बात पर आपने स्पष्टीकरण चाहा है सो वह स्पष्टीकरण निम्नरूपसे है।

मुमुक्षु :- किस पर लिखा गया यह पत्र है ?

पूज्य भाईश्री :- मेरे पर लिखा है। मैंने ही पत्र लिखा था। भाषा उस तरह ली है, दोनों तरफके पहलूसे भाषा ली है और उस पर स्पष्टीकरण चाहा है कि धर्मीजीवको बुद्धिपूर्वक देव, गुरु,

शास्त्रके प्रतिके परिणाम तो होते हैं और उसमें तो स्वरूप दृढ़ीभूत करनेका आशय होता है, मुख्यरूपसे तो यही आशय होता है। ऐसा लगता है (तो) इस बात पर आपका स्पष्टीकरण क्या है ? आप क्या कहना चाहेंगे ? (इसके जवाबमें) एक मुद्दे पर सात Point लिखे हैं। बहुत अच्छे मुद्दें हैं।

१. `स्वरूपकी दृढ़ता देवादिक प्रत्येकी वृत्तिसे निश्चय ही नहीं होती।' (परिणामका) जितना अंश बाहर जाता है, उतना नुकसान है। उसका लाभ नहीं गिनना। जो बहुत अच्छी बात कही है वह पहले ही वाक्यमें कर दी है कि, ज्ञानी हो तो भी; उतना अंश बाहर गया न ! (तो) बाहर गया उतना नुकसान (है)। अंदर गया उतना लाभ। बस ! दो भाग कर दिये। वहाँ भी कोई लाभ है, वह बात सिद्धांतके बाहर है, ऐसा कहना है। सिद्धांतमें वह बात नहीं। निश्चय सिद्धांत देखा जाये तो - पहला खुलासा निश्चयसे कर दिया। फिर अब दूसरी अलग-अलग अपेक्षाएँ लेंगे। परंतु पहले एक बात शुद्ध निश्चयनयसे कर दी है कि, `**स्वरूपकी दृढ़ता देवादिक प्रत्येकी वृत्तिसे निश्चय ही नहीं होती।**'

मुमुक्षु :- परलक्ष्यसे स्वरूपकी दृढ़ता होती ही नहीं।

पूज्य भाईश्री :- (हाँ) ऐसा कहना है। भले ही सामने वीतरागदेव हो। सिद्धांत स्थापित कर दिया। अब इसमें क्या है कि, (मान लो) कोई धर्मीजीव है वह वीतरागदेवका दर्शन करता है। वह उपयोग (बाहर) गया सो लाभका कारण नहीं है (परंतु) उपयोग वापिस आया वह लाभका कारण है। धर्मीजीव भगवानकी वीतरागताको देखता है। (जब) भगवानकी वीतरागताको देखता है तब सीधा स्वरूप स्मरण आता है कि, मेरा स्वरूप भी ठीक ऐसा है। बादमें जो (उपयोग) स्व तरफ आया वह लाभ है। तब वह पूर्वपर्यायको निमित्त कहनेमें

आता है। यह जवाबमें सूक्ष्मता है।

क्या कहना है ? जो उपयोग देवके प्रति गया वह तो `परदवाओ दुगई' जो कुंदकुंदाचार्यदेवने अष्टपाहुडमें कहा (और) जो गुरुदेव दोहराते थे। परद्रव्यके प्रति (जो परिणाम गये) वे आत्माको गति करने जैसे परिणाम ही नहीं। भले फिर सामने वीतरागदेव बिराजमान हो, (वह) आत्माको गति करने जैसा परिणमन ही नहीं है। खुदको उस तरफके परिणामकी गति ही न हो !! (परंतु) वहाँसे उपयोग वापिस मुड़ता है तब उसे निमित्त कहा जाता है कि, जैसे भगवानके निमित्तसे भी लाभ हुआ। परंतु (वास्तवमें) तो उपयोग वहाँसे वापिस आया उसका लाभ है। (धर्मीजीवको भीतरमें) परिणति चलती है इसलिए जो स्वसंवेदनका स्मरण लिया, जो सावधानी ली (उसमें) विशेष (स्वरूप) सावधानी आविर्भूत करता है तो उसे वहाँ निमित्त कहा जाता है। क्योंकि उसके अलावा भी उस उपयोगको - परिणामको दूसरे निमित्त हैं, उपयोगको इसके अलावा भी निमित्त तो हैं परंतु इसे (देवदर्शनको) इसलिए कहा जाता है क्योंकि वहाँसे इस तरफ (निजस्वरूपके) प्रति मुड़ जाता है। तो ऐसा कह सकते हैं कि, उनका आशय ऐसा था, दर्शन करनेके लिए उसी हेतुसे गये थे। क्यों बुद्धिपूर्वक भगवानके दर्शन करने गये ? कि भीतरमें मुड़ना था इसलिए। उस निमित्तसे भी उन्हें अपने प्रतिका भाव आविर्भाव करना था, स्वरूपका भाव आविर्भाव करना था। तो (यहाँ ऐसा कहते हैं कि) लेकिन उतना तो (उपयोग) बाहर गया न ! वह लाभका कारण नहीं है। (स्वरूपके प्रति) झुका वह भले ही लाभका कारण हो परंतु केवल लाभका कारण नहीं है। उस टुकड़ेको अलग कर दो, ऐसा कहते हैं। बहुत अच्छी बात ली है।

मुमुक्षु :- बाहरमें उपयोग गया वह तो नुकसानका ही कारण

है परंतु वहाँसे वापिस अपनेमें आया, इसलिए उसे निमित्त कहा?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, इसलिए निमित्त कहते हैं। परंतु वह (उपयोग) बाहर गया उसका पहले निषेध करो, उस निश्चयको पहले पकड़ो, ऐसा कहते हैं। उनकी चर्चामें जो मज़ा था, वह इसी बातका था। मैं चाहे कोई भी प्रश्न निकालूँ परंतु वे किस तरह बातको उठाते थे ! (उनका) ज़ोर बहुत था। ज़ोर बहुत था। इसलिए ज़ोरसे ही बातको उस प्रकारसे पकड़ाते थे। उस पद्धतिसे ही चर्चा चलती थी। उनकी चर्चाका ढंग व पद्धति ही ऐसी थी। यह विशेषता थी।

मुमुक्षु :- सच्ची रीत भी तो वही है न ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, शुद्धनिश्चय है, यह तो एकदम शुद्धनिश्चय है। अब, आगे चलते हैं।

२. `**मनआश्रित (विचारपूर्वक) मान्यतासे यथार्थ अखण्डआश्रित सहज आंशिकवृत्तिका सद्भाव (उद्भव) नहीं हो सकता।**' अब मान्यताका विषय लेते हैं। पहले आचरणका विषय लिया, अब मान्यताका लेते हैं। फिर आगे अलग-अलग पहलू लेंगे। पत्र बहुत अच्छा है। एक Issue दे तो उस विषयका कितने पहलूसे विचार करते हैं (यह) खयालमें आये ऐसा है। साधारणका काम नहीं।

प्रवचन - १५ दि. ०९-०८-१९९१ - पत्रांक-३३

(पत्रमें) ऐसा प्रश्न उठाया है कि, साधकदशामें धर्मीजीवका उपयोग बाहर जाता है तब देव-गुरु-शास्त्र मुख्यरूपसे उनके उपयोगका विषय रहते हैं। उन वीतरागी निमित्तोंमें निमितत्त्व इसलिए लागू होता है कि, यहाँ (भीतरमें) भी वीतरागता वृद्धिगत् करते हैं।

जैसे दृष्टांत ले कि, अमृतचंद्राचार्यदेवने ऐसा कहा कि, इस समयसार शास्त्रकी टीका करते हुए मेरी परिणतिमें विशुद्धि हो ! (अब) शास्त्रकी टीका करेंगे वह तो विकल्पसे करेंगे और विकल्प तो रागात्मक है तो क्या रागसे कोई विशुद्धि होगी ? लेकिन वहाँ क्या है कि, सिर्फ अकेला राग नहीं होता। वास्तवमें तो उनकी परिणतिका विषय शुद्धात्मा है और बाहरमें वीतरागी निमित्तोंके बहाने भी वे अपने इष्ट ऐसे स्वरूपको विशेषतः दृढ़ करते हैं। इस प्रश्नके पीछे आशय इतना है। जवाब उन्होंने बहुत सूक्ष्मतासे दिया है। यह स्थूल न्याय है। इस प्रकार साधकजीवको देव-गुरु-शास्त्रके निमित्तसे भी आत्मविशुद्धि बढ़ती जाती है, ऐसा जो कहा जाता है वह स्थूल न्याय है। सूक्ष्मरूपसे दूसरी बात है, उसे उतनी हद तक सूक्ष्मतासे समझना चाहिए - यह उनके उत्तरका विषय है।

मुमुक्षु :- आपका प्रश्न व्यवहारसे है जब कि उन्होंने उत्तर दिया है उपादानसे !

पूज्य भाईश्री :- उत्तर बहुत सूक्ष्मतासे दिया है। बहुत सूक्ष्मतासे दिया है। सामान्यतया धर्मीको भी चौथे, पाँचवे और छट्ठे गुणस्थानमें

अनिवार्यरूपसे उपयोग बाहर जाता ही है। इसका कोई निवारण नहीं है। वह गुणस्थानकी अनिवार्य परिस्थिति है। और जब साधक अनिवार्यरूपसे उस परिस्थितिमें खड़े हैं तब उन्हें खयाल है; तो उनको ऐसा विवेक रहता है कि, देव-गुरु-शास्त्रमें उपयोगको बुद्धिपूर्वक भी लगाते हैं। इसमें बुद्धिपूर्वककी बात ली है। धर्मीजीव बुद्धिपूर्वक देवादिकके प्रति परिणाम लगाता है तो वहाँ भी उनका आशय तो स्वरूपको दृढ़ करनेका ही होता है। उस विषयमें स्पष्टीकरण दीजिये - यह प्रश्न है। और उन्होंने बहुत सूक्ष्मतासे पहला उत्तर दिया है।

उपयोग जितना बाहर गया और देवादिकके प्रति जो भक्ति आयी उसमें राग तो है परंतु ज्ञान भी उसके सन्मुख होता है - उपयोग भी उसके सन्मुख होता है। देव-गुरु-शास्त्रके सन्मुख उपयोग होता है। तो वह परिणाम अंश कितना है ? राग भी अधूरा है इसलिए आंशिक कहा। और उपयोग - ज्ञानकी पर्याय भी आंशिक है क्योंकि लब्धकी पर्याय तो आत्माके साथ जुड़ी हुई है। उसी पर्यायका एक अंश आत्माके साथ है। अब उतना जो अंश है कि जिसका संबंध परद्रव्यके साथ है, उससे तो स्वरूपको लाभ हो या स्वरूपकी दृढ़ता हो, यह बात मान्य करने जैसी नहीं है। उससे लाभ नहीं हुआ यह बात स्पष्ट है। बहुत तात्त्विक बात ली है। तत्त्वदृष्टिसे वह आस्त्रवतत्त्वमें जाता है। संवरतत्त्वमें नहीं जाता। अगर तत्त्वदृष्टिसे विचार किया जाये तो आस्त्रवतत्त्वमें जाता है। वह बंधका कारण है उसमें जाता है। आस्त्रव तो बंधका कारण है, बंधहेतु है। यह बहुत तात्त्विकदृष्टिसे उत्तर दिया है। क्योंकि बुद्धिपूर्वककी बात चली न ! अतः दूसरेकी वह बात है।

`**मनआश्रित (विचारपूर्वक) मान्यतासे यथार्थ अखण्डआश्रित सहज आंशिकवृत्तिका सद्भाव (उद्भव) नहीं हो सकता।**' विचारपूर्वक

(अर्थात्) बुद्धिपूर्वक। अब यह उत्तर है वह ज्ञानीके लिए नहीं है। विषयको स्पष्ट करनेके लिए उन्होंने कुछएक उत्तर ज्ञानीके लिए लिये हैं (और) कुछएक बातें उन्होंने अज्ञानीके लिए की हैं। `**मनआश्रित (विचारपूर्वक) मान्यतासे...**' यानी कि हमलोग ऐसा कहते हैं न कि, नौ तत्त्वको मैं मानता हूँ, मैं जैन देव-गुरु-शास्त्रको मानता हूँ। मैं जिनोक्त छः द्रव्यको मानता हूँ। मैं आत्माको - मेरे स्वरूपको ज्ञायक मानता हूँ, मैं दो पदार्थकी भिन्नताको भी मानता हूँ। ऐसी जो मनआश्रित विचारपूर्वककी जो मान्यता है, सिर्फ अभी तो विचारसे जो मान्य किया है - उस मान्यतासे `**यथार्थ अखण्डआश्रित सहज आंशिकवृत्तिका सद्भाव (उद्भव) नहीं हो सकता।**' सद्भाव अर्थात् यहाँ उद्भव होना, उत्पन्न होना। इस मान्यतासे अखण्डआश्रित सहज आंशिकवृत्तिका उत्पन्न होनेका कारण नहीं बनता। क्योंकि ऐसी मान्यता तो काफी लोग करते हैं। शास्त्र पढ़कर अभवी जीव भी (ऐसी मान्यता) करता है। अभवी जीव ग्यारह अंग पढ़ता है परंतु उसको भी अपने अखण्ड स्वरूपके आश्रयसे जो आंशिक शुद्धवृत्तिका सद्भाव होना चाहिए वह उत्पन्न नहीं होता। ऐसे विचारकी मान्यतामें कोई दम नहीं। यह एक बात ऐसी है कि मुमुक्षुको बहुत प्रयोजनभूत है। काफी लोग ऐसा मान लेते हैं कि, हमने तो यह माना, हम तो ऐसा मानते हैं, हम कहाँ कुछ और मानते हैं ? ऐसे विचारपूर्वक मनआश्रित माना है, उसीको वह मान्यता गिनता है। - श्रद्धा गिनता है। और (ऐसा मानता है कि) पुरुषार्थ अभी हमारा थोड़ा कच्चा है, हमारे पुरुषार्थकी कमज़ोरी है (अतः इसका मतलब कि) हमारी मान्यता (तो) सच्ची है, लेकिन हमारे पुरुषार्थकी कमज़ोरी है इसलिए अनुभव नहीं होता है। परंतु वह बात झूठी है। ऐसी मान्यतासे वास्तवमें यदि शुद्धवृत्ति उत्पन्न होती या अनुभव होता तो उसे कारण-कार्य

लागू नहीं होता, और अगर लागू होता तो अभवीको भी (अनुभव) हो जाता। क्योंकि ग्यारह अंगका पाठी तो वह भी है। ऐसा कारण-कार्य (लागू) नहीं होता। ऐसी मान्यतामें यदि कोई आ जाये कि, देव-गुरु-शास्त्रकी बुद्धिपूर्वककी प्रवृत्ति है तो मान्यताकी अपेक्षासे यह एक विचारणीय प्रश्न हो जाता है।

सच्चे देव-गुरु-शास्त्रको नहीं मानता हो या विरोध करता हो तो उसकी तो चर्चा करनेकी भी जरूरत नहीं है। परंतु मानता हो इसलिए उसे अनुभव हो जायेगा, इस बातमें कोई दम नहीं है। बात कोई दूसरी है - अनुभव होनेके लिए बात कोई दूसरी है। ऐसा कहना है।

मुमुक्षु :- क्या इसके गर्भमें साधनकी भूल है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, इसमें मान्यताकी भूल है, विधिकी भूल है। साधनकी भूल कहो या विधिकी भूल कहो (दोनों एकार्थ हैं।)

मुमुक्षु :- वह मान्यताको जानकारीकी कक्षामें रखता है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, उसको (जो) जानपना हुआ है उसे वह सच्ची मान्यता मानता है। उसकी मान्यता जो वास्तवमें अंदरसे बदलनी चाहिए, श्रद्धा जो बदलनी चाहिए वह तो अभी बदली नहीं। अथवा जिसकी यथार्थ समझ होती है उसको दूसरा खयाल होता है। इसी जगह इस स्थितिमें यथार्थतामें क्या खयालमें होता है ? कि यहाँ अभी दर्शनमोह मंद हुआ है, अभाव नहीं हुआ। मंद होना एक बात है और अभाव होना वह दूसरी बात है। मंदतामें सद्भाव है। अस्ति-नास्ति जितना, पूर्व-पश्चिम जितना, अंधेरा-उजाला जितना फर्क है। (मिथ्यात्व) मंद तो अनंत बार हुआ है परंतु नाश होवे जब तो जन्म-मरणका अंत होगा। अनंतताकी श्रृंखला टूट जायेगी। सद्भाव हो तब तक अभी मिथ्यात्वके गर्भमें अनंत जन्म-मरण पड़े हैं। वह

अभी जिंदा है, वह बीज अभी जिंदा है, बीज अभी जला नहीं तो चाहे कभी भी पनपने लगेगा, इसका (कोई) भरोसा है क्या ? दर्शनमोहका अभाव हो जब तो वह बीज जल जाता है। यह दूसरी बातका (स्पष्टीकरण) हुआ। अब तीसरा (मुद्दा) लेते हैं।

`**त्रिकाली अस्तित्वमयी स्व,...**' अर्थात् अपना शुद्ध आत्मस्वरूप। जो यूँ का यूँ त्रिकाल शुद्ध अस्तित्वरूप रहता है। `**त्रिकाली अस्तित्वमयी स्व, इस आश्रित परिणमी हुई आंशिक शुद्धवृत्ति...**' (अब) ज्ञानीकी बात चलती है। वह स्वरूपाश्रित परिणमन कर रहा शुद्धिका अंश (यानी कि) साधकदशाका अंश। (अब) तीसरा, इसी साधकको `**देवादिक प्रत्येकी आंशिक बाह्य वृत्ति...**' उसी साधकको देव-गुरु-शास्त्र प्रत्ययी जो उपयोग व राग चलता है वह। एक जीवमें तीन बात ली। (१) शुद्ध स्वरूप (२) उस शुद्धस्वरूप आश्रित आंशिक परिणमन और (३) शुद्ध स्वरूपसे दूसरी दिशामें जाता हुआ परिणमनका अंश। दो अंश परिणामके लिए।

`**तीनों अंशोका...**' एक पदार्थ है इसलिए उसके तीन अंश हो गये। पदार्थ एक होनेसे इसके तीन अंश हो गये। `**तीनों अंशोका एक ही समय धर्मीको अनुभव होता है,...**' धर्मीको तो तीनोंका ज्ञान है - तीनोंका अनुभव है। `**जिसमें मुख्य-गौणका प्रश्न नहीं।**' यह प्रमाण(ज्ञान)का विषय लिया। प्रमाणमें मुख्य-गौण नहीं है। नयसे मुख्य - गौण होता है। निश्चयनय मुख्य हो तब व्यवहारनय गौण होता है (और) व्यवहारनय मुख्य हो तब निश्चयनय गौण होता है लेकिन प्रमाणमें कोई मुख्य-गौण नहीं है। तो यह बात प्रमाणसे ली।

मुमुक्षु :- अनुभवका अर्थ वहाँ जानपना लेना ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, एकसाथ तीनोंका ज्ञान वर्तता है। अपने शुद्धात्माका भी ज्ञान वर्तता है, खुदको शुद्ध परिणति कितनी हुई

है इसका ज्ञान भी वर्तता है, खुदको अशुद्धि कितनी रही उसका भी ज्ञान वर्तता है। अवस्थाकी शुद्धिका ज्ञान, अशुद्धिका ज्ञान अभी साधकदशा है न इसलिए अशुद्धि है और शुद्ध स्वरूपका ज्ञान - ये सब एक साथ ज्ञानमें (वर्तता) है। उसमें साधकको मुख्य-गौणका प्रश्न नहीं है। प्रमाणके दृष्टिकोणसे उसके परिणमनको देखा जाये तो। ऐसे लेना।

गुरुदेवने सब पढ़ा है न ! (उन्होंने) देखा कि क्या-क्या खोला है ! एक Issue खड़ा हुआ तो उसे कितने पहलूसे सोचते हैं !! (प्रमाणमें) मुख्य-गौणका प्रश्न नहीं है। यह तो चर्चा भी नहीं चलती है कि प्रमाणमें मुख्य-गौण होता है कि नहीं ? यह तो चर्चा भी नहीं चलती है। प्रमाणके पक्षवालेमें भी यह चर्चा नहीं चलती है कि, ये क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु :- अब दूसरा पहलू - नयके दृष्टिकोणसे सोचे तो ?

पूज्य भाईश्री :- यह तो आयेगा, अंतमें आयेगा । आयेगा जरूर अतः उस दृष्टिकोणसे विचार करे तो थोड़ा ठीक रहेगा। इसमें सारे पहलू लिए हैं। प्रमाणके भी लिए हैं और नयके भी लिए हैं। दोनों बातें ली हैं। खुदने ही ली हैं।

मुमुक्षु :- विचार करनेमें गंभीरता काफी है !!

पूज्य भाईश्री :- हाँ, काफी (गंभीरता) ! गहराई काफी है !! अनुभव है न ! और अनुभवमें (भी) तीव्रता थी इसलिए गहराई भी काफी आती है। उनकी चर्चा पर जो स्पष्टता देनी पड़ी है उसका यह कारण है। ईडरमें थोड़ी चर्चा चली थी। एक बुद्धिवाले मुमुक्षुने कहा कि, इस पुस्तकका तो बहुत बार स्वाध्याय किया है परंतु हमारी बुद्धिमें नहीं आता। आपका परिचय है, शास्त्रोंका परिचय हैं, (फिर भी) इसमें इतनी गंभीरता है, उसे तो खोले बिना पता

कैसे चले ? सर्व सामान्य मुमुक्षुको तो पता कैसे चले ? पाँच फ़रमे तो छप गये थे। स्पष्टीकरण की दृष्टिसे जहाँ स्पष्टीकरण देना पड़े (वहाँ देना), भले ही उन फ़रमोंको बदलना पड़े। फिर तो नीचेके क्रममें फर्क पड़े तो ऊपरमें भी सब बदलना पड़े। यह तो बाकी रकमके जैसा है, एक बाकीकी रकम फिरते ही सभी दिनोंकी बाकी रकममें फर्क पड़ता है। भले चाहे कितने भी कागज बिगड़े, भले ही इतनी छपाई (बेकार) जाये, (परंतु) स्पष्टीकरण तो दो, (ऐसा नक्की किया)। (उनके वचनोंमें) काफी गंभीरता !!

मुमुक्षु :- यह दूसरे मुद्देमें जो लिखा है कि मनआश्रित मान्यतासे नहीं होता है तो किस तरह होता है ?

पूज्य भाईश्री :- मनातीत दशासे (होता है)। मनआश्रित मान्यतासे नहीं परंतु पुरुषार्थको स्वसन्मुख करे तब यह (अखण्ड शुद्ध) वृत्तिका उद्भव होता है। स्वरूपकी सन्मुखताका पुरुषार्थ करते-करते अनुभव होता है। गुरुदेवकी भाषामें कहा जाये तो (ऐसा है)।

परमागमसारमें ४४६ नंबरका बोल है। '**भले ही शास्त्र-ज्ञान करे, धारणा-ज्ञान कर ले; पर 'पर्यायको स्वलक्ष्यमें ढालना' - यह अनंत पुरुषार्थ है, महान और अपूर्व पुरुषार्थ है।**' पुरुषार्थको स्वलक्ष्यी करे और (स्वरूप) निर्णय होते ही स्वरूपसन्मुखताका जो पुरुषार्थ शुरू होता है, उसे करते-करते अनुभव होता है। अन्य प्रकारसे नहीं होता। सादी भाषामें ले तो अनुभव करनेके लिए अनुभवका पुरुषार्थ चाहिए। अनुभवप्रत्ययी पुरुषार्थ चाहिए। अनुभव पद्धतिका पुरुषार्थ चाहिए और अनुभव हो उस प्रकारका पुरुषार्थ चाहिए, तो अनुभव होवे, वरना अनुभव नहीं होता, ऐसा है। शास्त्रज्ञान करे या धारणाज्ञान कर ले इससे क्या हो गया ? ऐसा कहते हैं। पर्यायको स्वलक्ष्यमें ढालना, पर्यायको स्वलक्ष्यी करना, इसमें महान पुरुषार्थ है। ज्ञान और पुरुषार्थ

(दोनों लिए हैं)। लक्ष्यमें ज्ञान लिया। इसलिए तो कहा है - `**लक्ष्य थवाने तेहनो कह्यां शास्त्र सुखदायी।**' भले ही सारे शास्त्र कहे हो परंतु एक (स्वरूप) लक्ष्य हो इसी हेतुसे (कहे हैं)। यदि लक्ष्य न हुआ तो तेरा सारा शास्त्रवांचन बेकार है।

देखो न ! (समयसारमें) १४४ (गाथाकी) टीकामें अमृतचंद्राचार्यदेवने क्या लिया ? कि, पक्षांतिक्रांत होनेके लिए प्रथम तो पक्ष करना। पक्ष करना अर्थात् प्रथम तो श्रुतज्ञान द्वारा ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय करना। निर्णय करना कहो चाहे लक्ष्य करना कहो या अस्तित्व ग्रहण करना कहो - एक ही बात है।

मुमुक्षु :- वे मनआश्रित परिणाम हैं न !

पूज्य भाईश्री :- मनआश्रित परिणाम नहीं, वहाँ स्पष्ट अनुभवांशसे प्रतीति है। सिर्फ मन नहीं। मनआश्रित है फिर भी पूरापूरा - सर्वथा ऐसे नहीं है। ज्ञानसामान्यके आधारसे ज्ञानस्वभावका निर्णय है। ज्ञानवेदनके आधारसे ज्ञानस्वभावका निर्णय है ऐसा कहो या ज्ञानस्वभावके आधारसे ज्ञानस्वभावका निर्णय है (ऐसा कहो)। व्यक्त अंशके आधारसे व्यक्त स्वभावका - ज्ञानस्वभावका निर्णय है। वह स्वभावके व्यक्त अंशका आधार है।

मुमुक्षु :- जहाँ व्यक्त अंश है वहाँ ही रागका आंशिक अभाव हुआ न ?

पूज्य भाईश्री :- वहाँ राग है ही नहीं न। वह तो स्वभाव अंश है उसमें राग कहाँ था। अज्ञानीको भी नहीं है। जो व्यक्त स्वभाव अंश है उसमें तो रागका तीनोंकाल अभाव ही है। वह तो स्वभाव है। स्वभाव कि जो अनउभयस्वरूप है (अतः) न तो पर्यायस्वरूप है न तो द्रव्यस्वरूप है। यदि केवल द्रव्यस्वरूप होता तो पर्यायमें व्यक्त नहीं होता। क्या बात है यहाँ ? कोई-कोई इसमें उलझनमें

आते हैं कि, नित्य और अनित्य दो पहलू तो बराबर समझमें आते हैं, फिर यह अनउभयकी नई बात कहाँसे आ गई ? कि जो द्रव्य भी नहीं और पर्याय भी नहीं ! और नित्य (अंशको) भी व्यवहारमें डालते हैं ! नित्य तो वास्तवमें निश्चयनयका विषय है, फिर भी उसे व्यवहारमें डालते हैं। अतः दो जगह उलझन हुई - निश्चयको व्यवहार कहा और अनउभयकी बात अलग-से की। यह तो बात ही कोई नई है !! हम तो द्रव्य, गुण, पर्यायका समझते हैं, सामान्य-विशेषको समझते हैं, दोनोंको मिलाकर प्रमाणको समझते हैं, लेकिन यह तो दोमेंसे एक भी नहीं - ऐसा तीसरा क्या है ? (तो समाधान ऐसा है कि) यदि (स्वभाव) केवल द्रव्यस्वरूप या नित्यस्वरूप होता तो पर्यायमें नहीं होता (और) यदि पर्यायमें है उसे (सिर्फ) अनित्य ले लो तो द्रव्यमें नहीं होता - नित्यमें नहीं होता। अतः न तो उसे नित्यता लागू पड़ती है नाही अनित्यता लागू पड़ती है। अनउभयस्वरूप है, जाओ ! उभयस्वरूप न लिया ! अनउभयस्वरूप लिया !!

किसके आधार पर (स्वरूप) निर्णय है ? रागका आधार नहीं है। मनका आधार कहनेसे रागका आधार हो गया (परंतु) ऐसा नहीं है। (स्वरूप निर्णय होता है) तबसे (स्वरूप) सन्मुख होता है और सन्मुखतामें पुरुषार्थ वृद्धिगत होता है तब अनुभव होता है। लक्ष्य तो जबसे हुआ तबसे वही है। पुरुषार्थमें जितना कारण दे उतना कार्य होता है, ऐसा कहना है।

इस तीसरे बोलमें प्रमाणका विषय लिया कि, जिसमें मुख्य-गौणका प्रश्न नहीं है। कभी क्लासमें नहीं बैठे फिर भी प्रमाणका विषय खोला है।' कोई ऐसा कहे कि, वे तो निश्चयाभासी थे और निश्चयकी बातें ही किये जाते थे, परंतु वैसा नहीं है। यह प्रमाणका विषय

कितना स्पष्ट है ! और उनको (कहनेवालोंको) पूछो तो पता भी न पड़े। (ये तो) स्पष्ट विवरण कर सकते हैं, व्यक्त कर सकते हैं। विषय ज्ञानमें आना एक बात (है), इन्होंने तो व्यक्त किया है। वरना व्यक्त न करे तब तक दूसरेको विश्वास भी न आये। परिणमन तो उनका अंतर्मुखी, अरूपी परिणमन है वह बाहरमें कैसे पता चले? वह तो बाहर आये ऐसी कोई बात सामने आये तभी मालूम पड़ सकता है, वहाँ तक मालूम नहीं पड़ता।

४. **`स्वके मापसे अन्यका माप किया जाता है।**' यह एक General सिद्धांत है। हर एक आदमी अपने दृष्टिकोणसे दूसरेको नापता है। अपना दृष्टिकोण है वह नापनेका साधन है और उससे दूसरोंका नाप आता है। यह सर्व सामान्य सिद्धांत है। मेरे पास जो नापदंड हो उस नापदंडसे नापूँगा। जो नापदंड होगा उसीसे नाप लूँगा। नापनेके साधनसे नाप होगा। प्रत्येक जीवके पास क्या साधन है? अपनी दृष्टि। `जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि' अतः अपने नापसे दूसरोंका नाप होता है। ये `ईश्वरकर्ता' कहाँसे निकला ? ईश्वर जगतका कर्ता कहाँसे हो गया ? कि जगतके पास तो कर्तृत्व ही पड़ा है, फिर ईश्वरको कर्ता नहीं करेंगे तो और क्या करेंगे ? अपने नापसे ईश्वरको नापेगा ज्ञानीको भी अपने नापसे नापेगा। जैसे ज्ञानी खाते हैं वैसे ही मैं खाता हूँ, मैं बोलता हूँ, ऐसे वे बोलते हैं। मैं सोता हूँ ऐसे वे सोते हैं, मैं उठता हूँ, वैसे वे उठते हैं। मैं बैठता हूँ, वैसे वे बैठते हैं। इसतरह सामान्यतया अपने नापसे दूसरोंका नाप किया जाता है। अब धर्मीकी बात करते हैं।

`मैं' त्रिकाली ही हूँ,...**' धर्मीके पास क्या दृष्टिकोण है ? धर्मीकी दृष्टि क्या है ? कि, **`मैं' त्रिकाली ही हूँ, इस अनुभवमें परिणाम मात्र गौण है,...' (प्रमाणमें) तो मुख्य-गौण कुछ नहीं है। (यहाँ कहते

हैं कि), यहाँ परिणाम मात्र गौण है, चाहे शुद्ध हो चाहे अशुद्ध हो, परिणाम मात्र गौण है। **`चाहे बुद्धिपूर्वक हो या अबुद्धिपूर्वक।**' सभी परिणाम गौण हैं। **`ऐसे धर्मीको कभी परिणामकी मुख्यता नहीं होती।** कभी उसे परिणामकी मुख्यता नहीं होती। **`अतः उसे अन्य धर्मी जीवमें भी...**' अतः दूसरे धर्मीका नाप भी वैसे ही करते हैं। ऐसा जो धर्मी है वह दूसरे धर्मात्माका नाप भी इसी तरह करता है कि, **`उसे अन्य धर्मी जीवमें भी परिणामकी मुख्यता नहीं दिखाई देती;...**' (अर्थात्) मुझे परिणामकी मुख्यता नहीं है (तो) उस धर्मात्माको भी परिणामकी मुख्यता नहीं हो सकती। **`जैसे कि मात्र परिणाम देखनेवालेको प्रवृत्तिकी मुख्यता दिखती है।**' जिसको परिणाम देखनेकी मुख्यता है वह तो प्रवृत्तिकी मुख्यता देखेगा कि, वे क्या करते हैं ? कैसे उनकी सर्व प्रकारकी बाह्य चेष्टा रहती है ? क्योंकि उसे परिणामकी मुख्यता है। धर्मीको परिणामकी मुख्यता नहीं है इसलिए वे बाह्य प्रवृत्तिकी मुख्यता नहीं देखते।

मुमुक्षु :- माताजी (पूज्य बहिनश्री) का बोल है न कि, हम तो सभीको भगवान ही देखते हैं।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, हम तो सभीको भगवान ही (देखते हैं)। अनंत ज्ञानियोंकी एक दृष्टि है - हम तो सबको भगवान देखते हैं।

५. **`धर्मी, अधर्मीके भी त्रिकाली व वर्तमान दोनोंको एक साथ देखता है।**' चौथे प्रकारमें तो धर्मी, धर्मीको (किस नज़रसे) देखते हैं, यह बात ली। अब पाँचवेंमें धर्मी, अधर्मीको किस नजरसे देखते हैं, (ये कहते हैं)। - **`धर्मी, अधर्मीके भी त्रिकाली व वर्तमान दोनोंको एक साथ देखता है।**' (अर्थात्) हम सिर्फ परिणामको नहीं देखते, उसके त्रिकाली (स्वभावको) भी देखते हैं। भगवान आत्माको भी देखते

हैं और उसके वर्तमान दोषको भी देखते हैं। और उसमें ऐसे देखते हैं - धर्मी, अधर्मीको उसमें इसतरह देखते हैं कि, `**त्रिकालीका अभान होनेसे...**' (अर्थात्) इस जीवको अपने त्रिकाली (स्वरूप)का पता नहीं है, उसका उसे भान नहीं है। खुद क्या है उसका उसे भान नहीं है। `**त्रिकालीका अभान होनेसे अधर्मीको परिणाम मात्रमें एकत्व होता है,...**' अतः उस अधर्मीको तो परिणाम मात्रमें एकत्व होता है। उसका कारण क्या है कि, वह अपने त्रिकालीका भान भूला है। `**इसका धर्मीको ज्ञान रहता है।**' धर्मीको उसका ज्ञान रह जाता है, उनके प्रति द्वेष नहीं होता। इसको क्यों ऐसा होता है ? ऐसे द्वेष नहीं होता। वह बेचारा जीव अपने त्रिकाली स्वरूप-भगवान आत्माको भूला है, अतः उसको एक समयके परिणाममें एकत्व होता है, उसका धर्मीको ज्ञान रह जाता है, (इसलिए) राग भी नहीं होता और द्वेष भी नहीं होता, सिर्फ उसका ज्ञान रह जाता है। मुझे तो उसका त्रिकाली (स्वरूप) और वर्तमान दोनों दिखते हैं। उसमें ऐसा दिखता है कि, उसके वर्तमानमें वह अपने त्रिकाली(स्वरूप)को भूला है और एक समयके परिणाममें उसका एकत्व हो रहा है। यह उसकी परिस्थिति है। फिर उसको रोष क्या करना ? उसको तोल क्यों देना ? (अब छठा मुद्दा)।

६. `**वृत्ति अपेक्षा त्रिकालीकी मुख्यतावाले धर्मीको सहज ही इस मुख्य आश्रित वृत्तिकी ही मुख्यता रहती है, वर्तती है; चाहे बाह्यांशमें बुद्धिपूर्वक प्रवृत्ति हो।**' यह आपका उत्तर आया। वृत्ति अपेक्षासे त्रिकालीकी मुख्यतावाले धर्मीको परिणामकी अपेक्षासे देखे तो, वृत्ति अर्थात् परिणामकी मुख्यतासे देखे तो जिसको त्रिकालीकी मुख्यता हुई है ऐसे धर्मीको, `**सहज ही इस मुख्य आश्रित वृत्तिकी ही मुख्यता रहती है,...**' देखो ! चौथे (मुद्देमें) ऐसा कहा कि, उन्हें एक भी

परिणामकी मुख्यता नहीं होती। धर्मीको शुद्ध या अशुद्ध एक भी परिणामकी मुख्यता नहीं होती। कोई कहे कि, परंतु उन्हें परिणाम तो दो जातिके हैं - एक उनको बुद्धिमें देव, गुरु, शास्त्र प्रत्ययी रागकी भी प्रवृत्ति है और एक उन्हें वीतरागी परिणति भी है, तो ये दोनों एक सरीखी हैं ? तो कहते हैं - नहीं, दोनों एक सरीखी नहीं हैं। त्रिकालीको मुख्य किया है और उसका आश्रय करनेवाली जो शुद्ध वृत्ति है उसकी मुख्यता है। दो की बराबरी की जाये तो। निश्चय मुख्य है और व्यवहार गौण है, ऐसा कहना है। ऐसे चलता है।

`**मुख्य आश्रित वृत्तिकी ही मुख्यता रहती है, वर्तती है; चाहे बाह्यांशमें बुद्धिपूर्वक प्रवृत्ति हो।**' (अर्थात्) भगवानकी भक्ति करे, भगवानकी आरती करे, पूजा करे, अरे...! इन्द्र भगवानके सामने नाचे ! घुँघरू बांधकर नाचे। ! चर्चामें लिया है न ! इन्द्र भी बाल तीर्थंकरके आगे घुँघरू बांधकर नाचता है। (कोई तर्क करे कि), लेकिन ये तो अभी चतुर्थ गुणस्थानवाले हैं, अभी तो उनका उपदेश भी सुना नहीं ! यह तो एक ऐसा अभिप्राय प्रवर्त रहा है कि, जिसका उपकार हुआ हो, उसकी भक्ति करें ! हमें जिसका उपकार न हुआ हो उनकी भक्ति हम कैसे करें ? (तो उसका जवाब ऐसा है कि) जिस तीर्थंकरने जन्म लिया, वे तीर्थंकर होनेके पहले उपदेश तो देंगे नहीं, तेरहवें गुणस्थानमें आनेके पहले उपदेश तो देंगे नहीं। तो जब यहाँ चतुर्थ गुणस्थानमें बाल तीर्थंकरने जन्म लिया, तब इन्द्र (स्वयं) सम्यग्दृष्टि होकर भी भक्ति क्यों करते हैं ? क्या उनको ज्ञान नहीं है ? सम्यग्दृष्टि अज्ञानी हैं कि घुँघरू बांधकर भक्ति करते हैं ? घुँघरू बाँधनेका अर्थ क्या है, पता है ? कि स्वयंको इतनी नम्रता आयी है ! एक ज्ञानीको दूसरे ज्ञानी जीवके प्रति कितनी नम्रता !! क्या

उन्हें नहीं पता कि उनका गुणस्थान कौन-सा है ? तीर्थंकरने जन्म लिया वे कौन-से गुणस्थानमें हैं यह क्या नहीं मालूम है ? कि, चतुर्थ अविरत गुणस्थानमें हैं। फिर भी घुँघरू बांधकर क्यों नाचते हैं ? इतनी नम्रता आती है।

मुमुक्षु :- इन्द्रको तो भूतकालमें उनसे कोई उपकार हुआ हो ऐसा जरूरी नहीं।

पूज्य भाईश्री :- नहीं, ऐसा नहीं भी हो। ऐसा जरूरी नहीं है कि उपकार हुआ हो तो ही भक्ति हो, यह कोई जरूरी नहीं है। उसमें तो '**सांत दशा तिन्हकी पहिचानी, करै कर जोरी बनारसी वंदन।**' उनकी शांत दशा देखते हैं। बाल तीर्थंकरकी भी शांत दशा देखते हैं। भले ही पालनेमें सोते-सोते हाथ-पैर हिलाते हो, लेकिन उनकी (भी) शांत दशा देखते हैं। हाथ-पैर नहीं देखते। ये (इन्द्र) उन्हें वंदन करते हैं, उनकी पूजा करते हैं ! अष्ट द्रव्यसे उनकी पूजा करते हैं। जन्मकल्याणक मनाते हैं तब पूजा करते हैं, बादमें अभिषेक करते हैं, वह भी पूजाका अंग है। मेरु पर्वत पर ले जाकर अभिषेक करते हैं वह एक प्रकारकी पूजा ही है। अभिषेक है सो पूजाका अंग है। वंदन करते हैं वह पूजाका अंग है, स्तुति करते हैं वह पूजाका अंग है। वे सब पूजाके अवयव हैं। अभिषेक करनेके बाद सभी इन्द्र अष्ट द्रव्यसे पूजा करते हैं। (तो फिर वहाँ) सम्यग्दृष्टिको अर्घ चढ़ाया कि नहीं चढ़ाया ? उस वक्त सम्यग्दृष्टिको अर्घ चढ़ाया कि नहीं चढ़ाया ? आठों द्रव्यसे चढ़ाया। पूरी पूजा की। सिर्फ अर्घ नहीं बोले वहाँ आठों द्रव्यसे पूरी पूजा की है।

छः ढालामें लिया है न ? वह दिगम्बरमें ही तो आती है न ! छः ढाला श्वेताम्बरमें कहाँ है ? '**लेश न संजम पै सुरनाथ जजै हैं।**' वह कहाँसे आया ? वह बाल तीर्थंकरकी बात है। भगवानने अभी लेश संयम प्रगट नहीं किया (फिर भी) सुरनाथ अर्थात् इन्द्र उन्हें भजते हैं। कथानुयोगकी बात तो समझमें आनी चाहिए न ? द्रव्यानुयोगकी नहीं समझमें आये तब तो ठीक है। यह तो कथानुयोगकी बात है। चौबीसों तीर्थंकरके पाँचों कल्याणककी एक-सी ही परिस्थिति होती है। यह कथानुयोगकी विशेषता है, जैनदर्शनके चार अनुयोगमें कथानुयोगकी यह विशेषता है कि, चौबीस तीर्थंकरके पुराण लिखे जाते हैं, उसमें शायद ही किसी तीर्थंकरकी छद्मस्थदशाकी विशेषताकी कथा आती है। जैसे कि ये पार्श्वनाथ भगवानकी कुछएक (बातें) आयीं, वैसे ही महावीर भगवानकी थोड़ी (बातें) आयीं, कोई-कोई प्रसंग आये हैं। वरना प्रायः किसी प्रसंगकी कथा ही नहीं आती। गर्भकल्याणक, जन्म-कल्याणक, तपकल्याणक, ज्ञानकल्याणक व मोक्षकल्याणक सबमें एक-सा ही वर्णन आता है। चौबीसों तीर्थंकरके महापुराण आप पढ़ेंगे (तो) आपको ऐसा ही लगेगा क्या महापुराण ऐसे लिखा है !! सबका एक सरीखा (वर्णन) आता है। क्योंकि पुण्य एक समान है, प्रसंग (सब) एक सरीखे मनाते हैं, क्योंकि वही के वही इन्द्र होते हैं। जो पहले तीर्थंकरके (प्रसंगमें) सौधर्म इन्द्र आते हैं वही, चौबीसवें तीर्थंकरके वक्त भी वही सौधर्म इन्द्र आते हैं। वे तो असंख्य तीर्थंकरके पंचकल्याणक मनाते हैं। उनका आयुष्य तो बहुत बड़ा होता है न !

(यहाँ क्या कहते हैं ?) परिणामकी अपेक्षासे यदि विचार किया जाये तो धर्मी जीवको अपने परिणाममें जो मुख्य परिणमन है वह शुद्ध परिणमन है, अशुद्ध परिणमन है वह गौण है, भले ही उस अशुद्ध परिणमनमें बुद्धिपूर्वक देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति-पूजाके परिणाम हो, परंतु वह गौण है। बहुत भक्ति करते हो तब किसीको ऐसा लगे कि, अभी तो परिणामकी मुख्यता हो गई होगी न ! ज्ञानी

तो नाचने लगे !! (ज्ञानी) नाचते भी हैं। तो तब उन्हें मुख्यता हो गई होगी कि नहीं ? नहीं, तब परिणामकी मुख्यता नहीं हुई (किन्तु) अंदर जो शुद्ध परिणति है उसकी ही मुख्यता है। और उसका जो विषय त्रिकाली(स्वरूप) है उसीकी मुख्यता है।

मुमुक्षु :- शब्द कैसे इस्तेमाल किये हैं ! त्रिकालीकी मुख्यतावाले धर्मीको...!

पूज्य भाईश्री :- हाँ, धर्मी कैसे ? कि, त्रिकालीकी मुख्यतावाले धर्मी (हैं)। विशेषण लगाया है। ये उनकी लिखनेकी शैली है। धर्मीकी वृत्ति अपेक्षासे बात करनी है, परंतु कैसे धर्मी ? कि, त्रिकालीकी मुख्यतावाले धर्मी।

७. `त्रिकाली तो प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप परिणामका ही कर्ता नहीं है।** एक समयके परिणामका कर्ता नहीं है, (परंतु) अपरिणामी है। त्रिकाली है वह तो अपरिणामी है। वह तो प्रवृत्तिका भी कर्ता नहीं हैं व निवृत्तिका भी कर्ता नहीं हैं। त्रिकाली स्वरूप तो प्रवृत्ति-निवृत्तिकी अपेक्षासे पर है। `परिणामका कर्ता परिणाम ही है, यह अपेक्षा भी अपनी चर्चामें आई ही थी।**' अपनी चर्चामें तो यह बात आ ही चुकी है कि, परिणामका कर्ता परिणाम है। अतः पत्रमें यह बात दोहरायी है। कर्ता-कर्मकी चरमसीमाका पत्र आया न (आगे) ? (पत्रांक - २४) `**पर्याय ही पर्यायका कर्ता है, त्रिकाली अंश अथवा आखा द्रव्य नहीं, यह `कर्ता-कर्मकी' चरमसीमा है।**' यह बात आ गई है। यहाँ भी वह बात आयी। चर्चामें भी यह बात चली थी।

यह प्रश्न उस वक्त कोई उतना चर्चास्पद नहीं था। परंतु सहज ही वह बात चलती थी कि, एक समयका परिणाम ही परिणामका कर्ता है। यह बात राजवार्तिकमेंसे मिली। पर्याय ही पर्यायका कर्ता। पर्यायका कारण-कार्य पर्यायमें ही है। ऐसा शीर्षक देकर उन्होंने लिया है। राजवार्तिकका (यह) एक ही आधार मिला है।

प्रवचन - १६ दि. १०-०८-१९९१ - पत्रांक-३३

कल जो चर्चा चली उसमें जो पाँचवाँ बोल है उस पर फिरसे चर्चा लें।

मुमुक्षु :- चौथे बोलकी आखरी पंक्ति फिरसे लें।

पूज्य भाईश्री :- `**जैसे कि मात्र परिणाम देखनेवालेको प्रवृत्तिकी मुख्यता दिखती है।**' क्या (कहना) है ? यहाँ धर्मी और अधर्मी दोनोंकी बात एकसाथ की है - जिसे समीक्षा कहा जाता है। धर्मीको शुद्ध तत्त्वकी - शुद्ध स्वरूपकी दृष्टि होनेसे वह दूसरे धर्मी जीवके भी सिर्फ परिणाम व प्रवृत्ति नहीं देखता। सामान्यतया संसारी जीव पर्यायमूढ़ होनेसे (यानी कि) पर्यायाश्रित परिणमन करता होनेसे अपनेमें भी सिर्फ परिणामको ही देखता है व दूसरेके भी सिर्फ परिणाम ही देखता है। खुदके जैसे परिणाम हो वैसा मैं, राग होता हो तो रागरूप मैं (ऐसे ही देखता है)। वैसे ही दूसरेको राग होता हो तो उसे वह भी रागरूप पूरा आत्मा, मैं भी पूरा रागमय आत्मा और वह भी पूरा रागमय आत्मा। ऐसी जो मुख्यता होती है वह धर्मीको नहीं होती। धर्मीकी दृष्टि ऐसी नहीं होती। दूसरे धर्मीको देखनेकी दृष्टि भी ऐसी नहीं होती। उन्हें - धर्मीको दूसरे धर्मीके बारेमें पता चल जाता है कि, इनके परिणाम अलिप्त रहते हैं (अर्थात्) भिन्न रहते हैं। ये अपने आत्माको रागसे भिन्न करते हैं। प्रतिसमयके परिणमनमें जो राग चल रहा है उससे अपने आत्माको भिन्न कर

रहे हैं, और इसप्रकार वे तैर रहे हैं, तिरते जाते हैं। खुदको अलग करते जाते हैं। ऐसी (एक) धर्मीको दूसरे धर्मीकी खबर रहती है। जब कि अधर्मी है वह ज्ञानीके सिर्फ परिणाम ही देखता है और उसमें भी बाहर दिखते हो वैसे - राग और रागकी चेष्टाएँ। जैसी जिसकी दृष्टि हो, इस तरह अपने नापसे दूसरोंका नाप करता है। धर्मी, धर्मीकी तरह नापते हैं (और) अधर्मी, अधर्मीकी तरह नाप करता है। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- ज्ञानीकी तैरनेकी कला देखनेका दृष्टिकोण खयालमें आना चाहिए।

पूज्य भाईश्री :- यह खयालमें आना चाहिए कि, ये तैर रहे हैं। रागसे भिन्न तैर रहे हैं। दृष्टांत भी ऐसा ही है। पानीमें तैरते हैं कि नहीं ? पानीमें तैरनेवाला पानीका स्पर्श करके भी तैरता है, डूब नहीं जाता, कि पानीसे बाहर तैरता है ? पानीको स्पर्श करते हुए पानीमें तैरता है, डूबता नहीं। उसे पानीका भय नहीं है, वह डूबनेवाला नहीं। तैरता है इसलिए डूबेगा नहीं। वैसे संसारमें (रहते हुए ज्ञानी) भले ही संसारके स्पर्शमें दिखते हो, संसारके मध्यमें दिखते हों, परंतु वे तैर रहे हैं। उन्हें संसारमें डूबनेका भय नहीं होता, सीधी-सी बात है। भय नहीं है क्योंकि डूबते नहीं - तरते हैं। वहाँ (दृष्टांतमें) पानी पर तैरते हैं वैसे यहाँ (संसारसे) ऊपर तरते हैं, भिन्न रहकर तरते हैं। उन्हें कोई तकलीफ नहीं है।

पाँचवें मुद्देमें यह बात है कि, धर्मी, अधर्मीका जो ज्ञान करते हैं उसमें मुख्य बात वे इतनी ही देखते हैं कि, जिस जीवको अपने त्रिकाली स्वरूपका अभान हो - भान न हो, उसे तो कब कौन-सा दोष होगा, इसका ठिकाना ही कहाँसे रहेगा। अतः उसका मुख्य दोष यह है कि, उसने अपने स्वरूपका भान नहीं किया।

दूसरा क्या दोष है और कितना दोष है, यह बात (इतनी) मुख्य नहीं है। उसे भान नहीं है, यही मुख्य बात है।

श्रीमद्‌जीने २५४ पत्रमें इससे भी थोड़ी और गहराईमें जाकर बात की है। वरना मुमुक्षु यों कहेगा, उसे बचाव करनेका भाव आयेगा कि, क्या करें ? हमें तो अनादिसे भान नहीं है। इसे हमारा दोष कहो चाहे जो भी आप कहो परंतु अनादिसे भान नहीं है, यह एक हकीकत तो अनादिसे चली ही आ रही है। यह परिस्थिति चालू ही है, हकीकत यह है कि अनादिसे इस जीवको अपना भान नहीं हुआ, क्या करें ? अनादिसे (भान) नहीं है इसका क्या करें ? तब श्रीमद्‌जीने थोड़ी गहराईमें जाकर कहा कि, दोष भले ही अनंत प्रकारके हो, प्रकृतिजनित दोषमें जिस-जिस प्रकृतिका उदय हो उस प्रकृतिका दोष जीव करता है परंतु सबसे बड़ा दोष यह है कि, उसने मुमुक्षुता उत्पन्न नहीं की। देखो ! थोड़ी गहराईमें जाकर बात की है। (उन्होंने तो वहाँ) उस प्रकरणको ही हाथमें लिया है, यहाँ कोई यह प्रकरण नहीं है। यहाँ तो ज्ञानीका प्रश्न चला है, जिसमेंसे दूसरे पहलू खुल रहे हैं। यहाँ वह प्रकरण नहीं है। उन्होंने तो वह प्रकरण हाथमें लिया है। मुमुक्षुको कहाँसे प्रारंभ करके कैसे आगे बढ़ना चाहिए (यह प्रकरण है)। तो कहते हैं कि जीवका सबसे बड़ा दोष यही है कि, उसने मुमुक्षुता उत्पन्न नहीं की। यह सबसे बड़ा दोष है। मुमुक्षुता उत्पन्न नहीं की इसका अर्थ क्या ? कि, उसने सहीरूपसे अंतरसे मुझे मेरा पूरा कल्याण कर लेना है, बिलकुल दुःखी न होऊँ, ऐसी एक पूर्ण शुद्धिकी मुझे तैयारी करनी है, मुझे पूर्ण शुद्ध होना है, मुझे इस संसारका जन्म-मरणरूप परिभ्रमण नहीं चाहिए, ऐसी शुद्ध अंतःकरणसे तैयारी नहीं की, भावना नहीं की, मुमुक्षुता उत्पन्न नहीं की, यह उसका सबसे बड़ा दोष

है। अगर मुमुक्षुतामें आये तो आत्माके भानमें आये बिना रहे नहीं। तो (यहाँ) जो कहते हैं वह दोष मिट जाये। क्योंकि दोष होनेका एक ही कारण है कि, अपने निर्दोष स्वरूपका बेभानपना होनेके कारण जीव कब कौन-सा दोष करेगा, इसका कोई नियम नहीं रहेगा। आज जिनमंदिरमें जाता है कल वही (जीव) मस्जिदमें जाता दिखाई देगा ! उसको खुदको पता नहीं रहेगा। मैं कहाँ जा रहा हूँ ! (यह) उसे पता तक नहीं रहेगा।

यह अखबारमें आता ही है न ! ये ताजिया निकालते हैं उसके नीचेसे निकलते हैं कि नहीं ? उसमें जैन होते हैं। उसमें कहने मात्र जैन होते हैं। ताजिया लेकर निकलते हैं कि नहीं ? फिर चाहे मस्जिदमें जाये या ताजियाके नीचेसे गुजरे, इसमें क्या फ़र्क रहा ? वह मस्जिदके आकारका ही होता है, और दूसरा कुछ नहीं। फिर ये अखबारवाले छाप देते हैं, हिन्दू-मुस्लिमकी ऐक्यता ! इस गाँवमें हिन्दू-मुस्लिमकी एकताके दर्शन होते थे। हिन्दू लोग ताजियाके नीचेसे निकले, इसलिए ऐसा (लिख देते हैं)। अब वे क्यों ऐसा लिखते हैं ? कि उसके अखबारकी खपत बढ़े इसलिए। लोगोंको अच्छा लगे और दो ग्राहक बढ़े। देखो ! पैसेके लिए कितना अनुमोदन करते हैं !! अपने धंधेके खातिर वे धर्ममें भी कैसा अनुमोदन कर लेते हैं ! उन्हें पता नहीं कि, कौन-सा दोष होता है !! ऐसा (होता) है। भान भूले हुए को कब क्या होगा उनका पता ही नहीं रहता। उनका जो सांसारिक प्रयोजन है, उस प्रयोजनके लिए जीव कब, कितने पैमानेमें दोष कर लेगा इसका कोई नियम नहीं रहता।

धर्मीको ऐसा ज्ञान होता है कि, '**त्रिकालीका अभान होनेसे अधर्मीको परिणाम मात्रमें एकत्व होता है,...**' (अर्थात्) प्रत्येक परिणाममें

जो कषाय है - राग है उसके साथ एकत्व होता है, वहाँ उसे तीव्र रस आता है। एकत्वबुद्धिके कारण रागका रस तीव्र होता है। धर्मी उसका ज्ञान करते हैं। उसके अन्य दोषका ज्ञान नहीं करते (परंतु) मूल दोषका ज्ञान करते हैं। यह धर्मीकी नज़रमें क्या होता है (इसकी बात करते हैं)। उसने इतना बड़ा दोष किया उसे नहीं देखेंगे। परंतु वह भान भूला है न ! फिर क्या होवे ? भान भूलनेके पश्चात् चाहे कुछ भी करे, इसका कोई नियमन नहीं रहेगा।

मुमुक्षु :- आज मंदिर बनायेगा तो कल तोड़ेगा।

पूज्य भाईश्री :- (हाँ) आज मंदिर बना रहा है, कल तोड़नेके लिए तैयार हो जाएगा। मंदिर तोड़ देगा, देर नहीं लगेगी। परिणामको पलटा खानेमें देर नहीं लगेगी। यह परिस्थिति आ जाएगी।

मुमुक्षु :- दोषके कारणको पकड़ना चाहिए।

पूज्य भाईश्री :- मूलको पकड़ना चाहिए। मूल यह है - परिणाममें एकत्व किया वह मूल (कारण) है। (कोई) एक समयके ज्ञानके क्षयोपशममें एकत्व करता है, या (कोई) एक समयके रागकी पर्यायमें एकत्व करता है, दोनों कर्मजनित पर्यायोंमें एकत्व करते हैं। दोनों एक-से हैं। रागमें और कषायमें एकत्व करता है वह ज्यादा खराब धंधा है और एक समयकी क्षयोपशम (ज्ञानकी पर्यायमें) एकत्व करनेवाला कम खराब है, ऐसा नहीं है। शायद वह ज्यादा खराब है। (रागमें एकत्व करनेवाला उस दोषमेंसे) निकलेगा (परंतु) यह (क्षयोपशमज्ञानमें एकत्व करनेवाला) नहीं निकल सकेगा।

गुरुदेव शुभ पर क्यों अधिक प्रहार करते थे ? (क्योंकि जीव) अशुभसे तो निकल जायेगा। सामान्य बुद्धिमें भी आदमीको पता चलता है कि अशुभमें पाप होता है। परंतु शुभमें धर्म होता है, यहाँसे नहीं निकल सकता।

पत्रांक - ३४ कलकत्ता

३०-१२-१९६२

ॐ

श्री सद्‌गुरुदेवाय नमः

धर्मस्नेही... शुद्धात्म सत्कार।

आपका ता. २४-१२ का पत्र मिला।

आपने वांचन-विचारणा वास्ते लिखा सो त्रिकाली अखण्ड ज्ञानानंद स्वभावमें अस्तित्वरूपी श्रद्धाकी यथार्थ व्यापकता निरंतर कायम रहे, जहाँके अनुभवमें परिणाम मात्रके अकर्तापनेका सहज अनुभव होता रहे। परिणामका कर्ता परिणाम अंश है, `मैं' त्रिकाली अंश नहीं।

इस प्रकारके एक ही समयमें परिणामका कर्ता व अकर्तापनेके अनुभवकी वृद्धि होते-होते पूर्ण ज्ञानका सहज ही अनुभव होगा, यही वांचन व विचारणा है।

आशा है आप भी आत्मस्वास्थ्य सहज वृद्धि करते रहेंगे। यहाँ योग्य कार्य लिखें।

धर्मस्नेही

निहालचन्द्र

प्रवचन - १७ दि. ११-०८-१९९१ - पत्रांक-३४

एक मुमुक्षुने लिखा है कि वांचन-विचारमें क्या करना ?

`आपने वांचन-विचारणा वास्ते लिखा सो त्रिकाली अखण्ड ज्ञानानंद स्वभावमें अस्तित्वरूपी श्रद्धाकी यथार्थ व्यापकता निरंतर कायम रहे, जहाँके अनुभवमें परिणाम मात्रके अकर्तापनेका सहज अनुभव होता रहे।'** (अब) कैसे अनुभव हो ? (तो कहते हैं कि), **`परिणामका कर्ता परिणाम अंश है, `मैं' त्रिकाली अंश नहीं।' ये कर्ता-कर्ममें दो कारक आये ! (परंतु उसमें तो) एक कारक आये चाहे दो कारक आये, छओं कारक साथ ही रहते हैं। किसी कारकमें एक कारक हो और दो नहीं हो या पाँच (कारक) हो और एक न हो, ऐसा नहीं बनता। एक कारक हो वहाँ छओं कारक होते हैं। दो कारक हो वहाँ भी छः कारक होते हैं।

(यहाँ कहते हैं कि), परिणाम स्वयं ही कर्ता और परिणाम स्वयं ही कर्म, मैं त्रिकाली नहीं, ऐसा लेनेके लिए वह बात की है। क्यों वह बात ली है ? कि मैं न कोई परिणाम हूँ, न मैं परिणामका कर्ता, न तो परिणाम है सो मेरा कर्म, न तो परिणाम मेरा साधन। इस प्रकार पर्यायका एकत्व तोड़नेकी यह विधि है। पर्यायमेंसे एकत्व उठानेकी यह विधि है। अगर पर्यायमेंसे एकत्व छूटे तो पर्यायमें हो रहे विभाव अंशमेंसे भी एकत्व छूटे, और विभावअंशके विषयभूत पंचेन्द्रियके विषयमेंसे भी तन्मयता छूटे।

वैसे तो जीवको कब मालूम पड़ता है ? कि, परविषयमें तन्मय

होता है तब। जब जीव परविषयमें तन्मय होता है तब वह तीव्र चिकने परिणामसे विकारमें परिणमन करता है। और वह विकार जीवकी शक्तिको अशक्तिमें बदलता है। जीवकी शक्ति जो परिणमन करती है उसे अशक्त करती है। और अशक्त होते-होते, ज्ञान मिटते-मिटते, आवरित होते-होते निगोद तक चला जाता है। मूलमें तो कहाँ तक उसकी Line चलती है ? कि परद्रव्यमें तन्मय होने तक जाती है। अगर एक समयकी पर्यायमें तन्मय होगा तो रागमें तन्मय होगा तो रागके विषयमें तन्मय होगा। उसे रोक नहीं सकेगा। पूरी Line जुड़ जायेगी।

अब, धर्मके क्षेत्रमें जो जीव आते हैं, वे लोग ये गहरी बात नहीं समझते हैं, इसलिए क्या करते हैं कि, परविषयमें - पंचेन्द्रियके विषयमें तन्मय हो जाते हैं न ! हमारेसे मिठाई ज्यादा खानेमें आ जाती है न ! यानी कि मिठाईका राग तीव्र हो जाता है न ! तो चलो हम मिठाई नहीं खानेका नियम ले लें। (इसतरह) जीव परविषय छोड़ने लगता है। कहाँसे शुरू करता है ? कि, स्थूलरूपसे परविषयको छोड़नेसे शुरूआत करता है। हम परविषयका त्याग कर दें, कि जिससे हमारे परिणाम नहीं खिचेंगे। इसतरह परविषयका संयोग छूट जाने पर, परविषय संबंधी परिणाम मिटाये नहीं जा सकते। यदि उन परिणामोंको मिटाना हो तो जहाँसे वैसे परिणाम हो रहे हैं उस परिणामकी भूमिकाको एकबार भिन्न कर दो, ऐसा कहते हैं। यह जैनदर्शनका उत्कृष्ट पारमार्थिक न्याय है !! यहाँसे अलग कर दो, एक समयकी पर्यायको अलग कर दो ! कोई कहे कि, सर्वथा अलग करे क्या ? तो कहते हैं, एकबार सर्वथा अलग करो न !! क्योंकि दृष्टि सर्वथा (पर्यायको) विषय नहीं करती। (अतः) श्रद्धामें तो ऐसा ही करना होगा। फिर ज्ञानके साथ उसका संबंध

कितना ? किस अपेक्षासे ? संबंध कितना और किस अपेक्षासे यह बादमें समझमें आने लगेगा, वह पहले नहीं समझमें आयेगा। श्रद्धा (सम्यक्) होनेके पहले ज्ञान प्रमाण नहीं होता। श्रद्धाके कालमें ही ज्ञान प्रमाण होता है। इसके पहले ज्ञान प्रमाण नहीं होता।

मुमुक्षु :- जीव जो भूल करता है वह यह करता है कि, दृष्टिको अलग करनेके बजाय उसके विषयको अलग करता है, जो पर है।

पूज्य भाईश्री :- दृष्टि माने यहाँ क्या श्रद्धा लेना चाहते हो ?

मुमुक्षु :- हाँ, श्रद्धा लेनी है।

पूज्य भाईश्री :- (अब) श्रद्धा क्या करती है ? कि, श्रद्धाका शुद्ध स्वरूप तो अपने स्वरूपको श्रद्धना, यही है। और खुदका स्वरूप तो त्रिकाली अनंत गुणका पिंड परमपारिणामिकभाव एकरूप है। अब ऐसी श्रद्धा तो उसके पास अनादिसे है नहीं, अतः उसकी जो श्रद्धा है वह एक समयकी पर्यायकी है। (यानी कि) उतना ही मैं हूँ (ऐसी श्रद्धा करता है)। वहाँसे उसने अपना अस्तित्व (मानना) शुरू किया, उतना ही मैं, इसमें क्या हुआ ? कि, अनेक (प्रकारका) कर्मोदय तो अनादिसे चला आ रहा है, उसके निमित्तसे (ज्ञानमें) जो कुछ विभावका फोटो आता है, खुदको भूलकर जो विभाव होता है उसमें मैं-पना हो जाता है। क्योंकि वह पर्यायमें होता है। एक समयकी पर्याय जितना मैं और विभाव उसका (एक समयकी) पर्यायमें होता है। निमित्त-नैमित्तक संबंध पर्यायमें उपजता है। अतः फिर ऐसेमें भान भूला हुआ जीव फिर जो परविषय है उसमें भी मैं-पना कर लेता है। यह शरीर मेरा, यह मकान मेरा, यह कुटुंब मेरा, यह समाज मेरा, यह सब मेरा, आबरू-कीर्ति (मेरी), यह सब मेरा...मेरा और मेरा..., वहाँ तक उसकी श्रद्धा उसको ले जाती है। सभी गुण श्रद्धाका अनुसरण करते हैं। ज्ञान, चारित्र, पुरुषार्थ सब (श्रद्धाको

अनुसरते हैं)। अतः पूरा संसार इस तरह चलता है, तब जो लोग नहीं समझे (उन लोगोंने क्या किया) ? कि, हमें विभाव क्यों हुआ ? कि, ये लड्डू खानेसे हुआ, तो कहेंगे इस मिठाईका त्याग करो ! खानेका राग छोड़ना हो तो उपवास करो ! वैसे एकके बाद एक सब त्याग शुरू करता है। परिणाममें (विभाव)की उत्पत्ति कैसे न हो, इसका विज्ञान नहीं मालूम होनेसे इधरसे - उलटे ढंगसे शुरू करता है।

मूलमें तो यहाँसे शुरूआत करनी चाहिए कि, स्वरूपकी श्रद्धा करें, एक समयके परिणामको उसके छओं कारकोंसे भिन्न करके यदि पर्यायका एकत्व तोड़े, तब तो पर्यायके विकारसे भिन्नता होगी। वरना राग और ज्ञान भिन्न नहीं होगे। राग और ज्ञान अलग ही नहीं होंगे।

मुमुक्षु :- अज्ञानी दर्पणका दल और प्रतिबिंब दोनोंकी मिलावट करता है, जब कि वे सर्वथा भिन्न हैं।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, दोनोंका मिश्रण कर देता है कि जो सर्वथा भिन्न हैं। दल कभी प्रतिबिंबरूप नहीं होता और प्रतिबिंब दलरूप नहीं होता। (यदि ऐसा हो तो दर्पणका) नाश हो जाये, ऐसा है। चैतन्यदलको अलग करनेकी बात है। दलसे अलग कर ! ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- ज्ञेयभावरूप अंशको गौण करे और ज्ञानभावको मुख्य करे, तो पर्यायसे भिन्न हो सकेगा ?

पूज्य भाईश्री :- (ज्ञानभावसे) आगे ढलकर स्वभाव तक जाना चाहिए। सिर्फ पर्याय अंशको नहीं लेते हुए ज्ञान जो है वह स्वभाव आकाररूप है, अतः वहाँसे स्वभावका ग्रहण हो जाना चाहिए। ज्ञानमेंसे ज्ञानस्वभावका ग्रहण सहज ही होता है। जैसे कि ज्ञेयाकार ज्ञान

परसे क्या होता है ? कि, ज्ञेयका ग्रहण सहज हो जाता है। ज्ञेयाकार ज्ञानमें क्या होता है ? कि, जीव ज्ञेयाकार ज्ञानमें आसक्त हुआ कि, फिर ज्ञेयकी आसक्ति करनेके लिए नया कुछ नहीं करना पड़ता, सीधा ही परद्रव्य पर चला जाता है। वैसे ही अगर ज्ञान पर आये तो सीधा ही स्वद्रव्य पर चला जाये। उसकी Technique (कला) ऐसी है। यह स्वतः ही होता है। एकदम संक्षेपमें कहना हो तो ऐसा कहेंगे कि, रागको छोड़ व ज्ञानको पकड़ ! ज्ञानको पकड़ ऐसा कहनेके पीछे स्वभावको पकड़ ऐसा कहना है। ज्ञानस्वभावको पकड़, पर्याय अंशको नहीं, ऐसा कहना है। स्वभावका ग्रहण होते ही अनादिसे जो पर्यायत्वका ग्रहण है वह मिथ्यात्वरूप है, `पर्यायमूढ़ा पर समया' वह छूट जाता है। बस, वह छूटना चाहिए।

ऐसा जब परिणमन होता है कि, **`परिणामका कर्ता परिणाम अंश है, `मैं' त्रिकाली अंश नहीं। इस प्रकारके...'** (अर्थात्) इस प्रकारसे जब परिणमन उत्पन्न हुआ फिर, **`एक ही समयमें परिणामका कर्ता व अकर्तापनेके...'** दोनों उसके गुण हैं। कर्तृत्वका भी गुण है और अकर्तृत्वका भी गुण है। (वैसे तो) कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण (आदि सभी गुण हैं) और अकर्तास्वभाव तो है ही। परंतु उसमें रागादिका भी अकर्ता है और एक समयके परिणामका भी अकर्ता है। दोनों प्रकारसे अकर्तृत्व है। यह सारा अनुभव एक साथ होगा। अतः प्रमाणका विषय तब ही समझमें आता है। जब वह अपने शुद्ध स्वरूपमें श्रद्धाकी व्यापकता करेगा व अनुभव करेगा कि, मैं एक समयके परिणामका त्रिकाली अंश हूँ - ऐसा मैं, कर्ता नहीं हूँ। ऐसा जब उसको लगेगा तब वह ज्ञान प्रमाण होगा और तब ही कर्ता-अकर्तापनेका ज्ञान यथार्थ होगा। वहाँ तक नहीं होगा। तब तक मैं अकर्ता भी किस तरह और कर्ता भी किस तरह, ये दोनों

बात नहीं समझमें आएगी। क्योंकि दोनों विरुद्ध शक्तियाँ हैं, कर्तृत्व और अकर्तृत्व विरुद्ध धर्मत्वरूप हैं। तो विरुद्ध धर्मत्व एक पदार्थमें कैसे रहे ? तो कहते हैं कि रहते हैं। परंतु वह समझना कैसे ? तो कहते हैं इस प्रकार समझना। भिन्न होकर - पर्यायसे भिन्न होकर (समझना)।

मुमुक्षु :- परिणामका कर्ता परिणाम अंश है, मैं त्रिकाली अंश नहीं - यह बराबर समझमें नहीं आया। `मैं' त्रिकाली अंश नहीं' - ऐसा क्यों लिखा है ? वास्तवमें तो मैं त्रिकाली हूँ - ऐसा है इसके बजाय मैं नहीं ऐसा क्यों लिखा ?

पूज्य भाईश्री :- मैं त्रिकाली अंश परिणामका कर्ता नहीं, ऐसा कहते हैं। परिणामका कर्ता परिणाम अंश है, मैं त्रिकाली अंश परिणामका कर्ता नहीं हूँ, इतना अध्याहार रहता है। क्योंकि पूरा वाक्य है न ! एक ही वाक्य होनेसे फिरसे लिखनेकी आवश्यकता नहीं। मैं त्रिकाली अंश परिणामका कर्ता नहीं। (अगर) मैं परिणामका कर्ता नहीं तो परिणाम मेरा कार्य नहीं। छओं कारकोंसे परिणाम अलग हुआ कि नहीं ?

हम एक प्रश्न खड़ा करे कि, पर्यायके छः कारक भिन्न हैं, ऐसा कहकर आपको क्या लाभ करना है ? इससे आपको क्या फायदा है ? वैसे तो क्या है कि, वस्तुका जो संविधान है उसमें तो द्रव्य, गुण, पर्यायात्मक वस्तुका संविधान है। परंतु वह बंधारण द्रव्य, गुण, पर्यायात्मक है इतना समझमें आनेके पश्चात् जो पर्यायबुद्धिसे पर्याय मूढ़ ऐसे जीवको क्या करना चाहिए ? यह दूसरा एक प्रश्न उपस्थित होता है। तो कहते हैं कि, उसे पर्यायकी मूढ़ता छोड़नेके लिए इतना ज़ोरसे उस पर्यायको धक्का देना चाहिए कि, परिणामका कर्ता परिणाम है, मैं त्रिकाली नहीं, ऐसे लेना चाहिए।

कल नियमसारकी ३८ और ५० गाथा ली थी। नियमसारमें उस (गाथामें) परद्रव्य, परस्वभाव और हेय - ऐसी तीन बातें क्यों की ?

एकबार सोगानीजीकी उपस्थितिमें (गुरुदेवश्रीकी) रात्रिचर्चामें यह प्रश्न पर चर्चा चली थी। याद आया (इसलिए कहता हूँ)। जिस दिन रात्रिचर्चामें यह प्रश्न चला था उसी दिन शामको मैं गुरुदेवके पास एकांतमें (मिलने) गया था। गुरुदेवको सोगानीजीके बारमें बात की थी कि, कलकत्तासे निहालचंद्रजी सोगानी करके जो आते हैं उनके साथ इन दिनों काफी तत्त्वचर्चा चलती है। वे जो चर्चा करते हैं और इसमें जो उनकी बातें आती हैं, लगता है जैसे `वात ठेठथी आवे छे' (अर्थात् बहुत गहराईमेंसे आती है।) ऐसा शब्दप्रयोग मैंने किया था। गुरुदेवको ऐसे नहीं कह सकते कि, साहब ! ये ज्ञानी हैं, ये सम्यग्दृष्टि हैं, ऐसा हम नहीं कह सकते, उसमें विनय है। फिर तो अब बातको रखे कैसे ? ये तो बहुत Delicate position (नाजुक परिस्थिति) थी। नाजुक परिस्थितिमें गुरुदेवके आगे कैसे निवेदन करना कि, ये ज्ञानी हैं। (फिर भी) इतनी बात की थी कि, कलकत्तासे एक मारवाड़ी भाई निहालचंद्रभाई (नामसे आते हैं)। (तो गुरुदेवने कहा) `हाँ, हाँ, आगे बैठते हैं।' पास-पासमें बैठते थे, प्रवचनमें हम लोग पास-पासमें बैठते थे। (फिर मैंने कहा), (उनके साथ) तत्त्वचर्चा चलती है, `तेमां वात बहु ठेठथी आवे छे।' गुरुदेवने पूछा `ठेठथी वात आवे छे एटले ?' (मैंने कहा) `आपकी कृपा हुई हो ऐसा लगता है।' क्या कहा ? `उस आत्मा पर आपकी कृपा हुई हो ऐसा लगता है।' बस ! गुरुदेव एकदम Serious (गंभीर) हो गये। (वैसे) शामको चक्कर लगानेके पश्चात् गुरुदेव पाट पर अचूक बैठते। दो-चार जन साथमें चक्कर लगानेमें होते थे। खानेका

टाइम होते ही वे लोग निकल जाते। क्योंकि गुरुदेव तो पाँच-सवा पाँच बजे खाना खा लेते थे। प्रायः सब लोग वहाँ साढ़े पाँच, छः, सवा छः बजे तक खा लेते थे। इसलिए गुरुदेवके साथ चक्कर लगानेवालेका खाना तो बाकी होता था इसलिए सब उस वक्त बिखर जाते थे। गुरुदेव अकेले पाट पर बैठे होते। फिर कोई न कोई आने लगता। (उस दिन) दूसरे (लोग) निकल गये लेकिन तब मैं रुक गया। उस वक्त गुरुदेवको यह बात की थी। गुरुदेव एकदम गंभीर हो गये। गंभीर हो गये और गहरी सोचमें पड़ गये हो वैसे नीचे देखते हुए मौन हो गये। (इतनमें) कोई बुजुर्ग भाई आये, पगड़ी पहनी हुई थी। मैं नहीं पहचानता था और आकर सीधा उन्होंने गुरुदेवके चरण स्पर्श किये। आते ही गुरुदेवके चरण स्पर्श किये इसलिए गुरुदेवका उपयोग जो विचारमें लगा हुआ था, (फिर उन्होंने उनकी ओर ऊपर देखा)। आनेवालेको पता नहीं था कि, बात क्या चल रही है, क्योंकि वे तो मौजूद नहीं थे। अतः आते ही बैठनेके पहले उन्होंने सीधा चरण स्पर्श किया। बैठनेके पहले चरण स्पर्श करके ही बैठेंगे तो (यूँ) अँगूठाका स्पर्श हुआ तब गुरुदेवने ऊपर देखा कि, हम दोनों ही बैठे थे और ये कौन आया ? जैसे ही उनके सामने देखा कि उन्होंने बात करना शुरू किया। उन्होंने गुरुदेवको किसी बातमें पूछा या तो कोई बात चालू कर दी। (इसलिए) गुरुदेव उनके साथ बातमें जुड़े। उस भाईने बात आगे बढ़ाई। इस दौरान गुरुदेवने जो पूछा था और जो बात कही थी, गुरुदेवने जो मुझे पूछा, और मैंने जो जवाब दिया वह उपयोग पूरा बदल गया। परंतु मेरा काम तो पूरा हो गया था। क्योंकि मैं कोई अपेक्षा लेकर गया नहीं था कि, गुरुदेव मुझे क्या जवाब देते हैं ? मैं तो इतना सोचकर गया था कि, गुरुदेवको

सोगानीजीके बारेमें कुछ दो शब्द सीधे नहीं कहकर कैसे भी इस बातसे वाक़िफ करना। बस ! इतनी बात हुई थी। फिर तो दूसरे दो भाई आये, फिर तो जो पाँच-दस लोग बैठते थे, वे सभी समय हुआ कि आने लगे। अतः दो आये, तीन आये, चार आये, फिर तो मैंने देखा कि यह जो अंगत बात है वह अब नहीं चलेगी (फिर भी) दस-पंद्रह मिनट मैं बैठा रहा। दूसरी-दूसरी बातें चलने लगी इसलिए मैं समझ गया कि अब शायद गुरुदेव यह विषय नहीं लेंगे। जब कि यह विषय भी परिचयका है, प्रत्यक्ष परिचयका है। आपसमें प्रत्यक्ष परिचय जब तक न हो तब तक किसीका कहा हुआ मान लेना, ऐसा कोई नहीं करेगा। ज्ञानी तो क्या ! कोई नहीं मानेगा। सामान्यतया ऐसी परिस्थिति है। (क्योंकि) यह विषय इतना गंभीर व मूल्यवान है। अतः दूसरी अपेक्षा भी रखना उचित नहीं था कि गुरुदेव इसे स्वीकार कर ले या मान ले, ऐसा तो था नहीं। अपना काम तो था उनके लक्ष्यमें बातको रख देना। लक्ष्यमें बात रखनेका ही काम था। फिर मैं तो खानेका समय हुआ इसलिए उठ कर चला गया।

रात्रिचर्चामें गुरुदेव पधारें। (चर्चामें) कोई विषय नहीं चल रहा था, खुदने ही विषय शुरू किया। ऐसे तीन अंगूली दिखाई। चलते हुए विषयका अनुसंधान क्या है, इसमेंसे याद आया। तीन अंगूली दिखाकर (कहा कि) जड़-पुद्गल संयोग हैं उसके लक्ष्यसे जीवको राग होता है इसलिए वह परद्रव्य और हेय है, क्या (कहा) ? जड़ जो संयोगरूप है उसका लक्ष्य करनेसे जीवको राग उत्पन्न होता है, विभाव होता है - वह है तो परद्रव्य, परंतु परद्रव्य है और हेय (भी) है।

(फिर) दूसरी अंगूली ली (और कहा कि), रागादि - पुण्यके

परिणाम हो चाहे कोई भी हो परंतु उसके लक्ष्यसे - रागके लक्ष्यसे जीवको राग ही होता है। अतः वह भी परद्रव्य है और हेय है।

(फिर यूँ तीसरी अंगूली दिखाकर कहा कि), एक समयकी शुद्ध सम्यग्दर्शनकी पर्याय हो या फिर चाहे केवलज्ञानकी हो, उसके लक्ष्यसे भी जीवको राग होता है, इसलिए वह परद्रव्य है और हेय है। ऐसा खुदने न्याय दिया। न्याय देकर फिर तुरंत सोगानीजीको संबोधन किया `क्यों न्यालभाई ?' तुरंत ही (संबोधन किया), निहालभाईको बोलनेका विकल्प तो आ गया (फिर भी) बोले नहीं। एक दूसरा विकल्प तब आ गया। वह बात फिर बाहर निकलकर मेरे साथ हुई।

इस न्यायके ज़रीये वास्तवमें तो गुरुदेवने उन्हें बुलवानेका Try किया, क्योंकि मैंने बात कहीं थी कि, `ठेठथी वात आवे छे।' इसलिए गुरुदेवने `ठेठ सुधीनी' (चरमसीमाकी) बात ले ली। एक समयकी केवलज्ञानकी पर्याय भी परद्रव्य है और हेय है। यह बात चर्चामें ले ली। (उस वक्त) इसकी कोई चर्चा नहीं चलती थी। स्वयंने ही एक बात शुरू की। अगर उस दिन चर्चा हुई होती तो उस दिन प्रसिद्धिमें आ गये होते। परंतु कुदरती ये कुछ बोले नहीं। (क्यों) नहीं बोले उसका कारण बादमें कहता हूँ। परंतु यहाँ तक कि बोलनेका मन हुआ फिर भी नहीं बोले। फिर तो चर्चा लंबी चली। गुरुदेवने फिर से चर्चा ली किन्तु (ये) कुछ बोले नहीं इसलिए वापिस संबोधन नहीं किया था। (बातको) फिरसे स्पष्ट किया। वैसे भी गुरुदेव वक्तव्यमें एक ही बातको पुनः पुनः दोहराते थे। फिर तो चर्चाका समय पूरा हो गया।

(हमलोग) बाहर निकले और (स्वाध्याय मंदिरके) कंपाउन्डमें थे तब बोले कि, `आज गुरुदेवने चर्चामें अपनी जो चर्चा चलती है वही विषय लिया और मुझे भी संबोधन किया।' (अतः मैंने कहा), `आप क्यों बोलते नहीं हो ? जब गुरुदेवश्री चलाकरके आपको चर्चामें शामिल करते हैं तो फिर आप क्यों नहीं बोलते हो ?' तब उन्होंने कहा `बोलनेका विकल्प तो आया था (और) बोलता भी, लेकिन एक दूसरा विकल्प खड़ा हो गया कि अगर मैं बोलूँगा तो बात तो पूरी खुल जायेगी। (और) बात खुल जायेगी तो, यहाँ तो मेरेसे पुराने-पुराने, बड़े-बड़े (लोग) जिनकी प्रतिष्ठा बहुत है, ऐसे लोग भी बैठे हैं। उनका अच्छा नहीं लगेगा। वे तो पुराने हैं और मैं तो नया आदमी हूँ। मैं कुछ बोलूँ तो बात बाहर हो जाये।' बोले तब तो बात बाहर आ जाये। बोले तब तो तुरंत नाप आ जाये। गुरुदेवके समक्ष यदि बोले तो बोलका तोल होनेमें तो देर नहीं लगती। गुरुदेवका तो उपयोग सूक्ष्म है।

गुरुदेवके पास (सोगानीजीके बारेमें) निश्चयाभासी हैं, ऐसी बात तो पहुँच गई थी। इसलिए (मैंने) बात कही थी। परंतु गुरुदेव तटस्थ रहे थे। बिना परिचय अपना अभिप्राय तो वैसे भी नहीं देते। इस बीच मैंने बात की। इसलिए (दूसरोंसे) विरुद्ध अभिप्राय तो मेरी तरफसे मिल गया। कोई दूसरा अभिप्राय मिला था इससे मैंने कोई दूसरी बात कर दी इसलिए फिर खुदने प्रत्यक्ष चर्चा शुरू की, तो ये (सोगानीजी कुछ) बोले नहीं। बोलनेका विचार आया फिर भी बोले नहीं। विचार आया फिर भी क्यों नहीं बोले ? (क्योंकि) तुरंत ही ऐसा दूसरा विचार आ गया। First thought पर सीधा Second thought आ गया। उनको तो ऐसा लगा कि मेरा अच्छा दिखेगा और दूसरोंका अच्छा नहीं दिखेगा, दूसरोंका अच्छा न दिखे, यह बात ठीक नहीं। ऐसा सहज विकल्प आ गया। इसलिए बोलना सहज ही अटक गया। अगर बोले होते तो उस दिन प्रसिद्धि हो जाती। परंतु कुदरतके

क्रममें जो घटना बननेवाली हो वही बनेगी न ! इसका नाम है कुदरत !

यहाँ तो यह कहना है कि, कर्तृत्व और अकर्तृत्व विरुद्धधर्म है उसका ज्ञान इस तरह होता है। दूसरी तरह उसका ज्ञान नहीं होता, इस तरह उसका ज्ञान होता है।

मुमुक्षु :- मुमुक्षुकी भूमिकामें मुमुक्षु पर्यायकी सर्वथा भिन्नतामें आ जायेगा ?

पूज्य भाईश्री :- जब मुमुक्षुकी भूमिकामें निषेधमें आता है तब ज्ञानी हो जाता है। वह मुमुक्षु नहीं रहेगा परंतु ज्ञानी हो जायेगा। इसमें क्या गलत है ? उत्कृष्ट मुमुक्षु हो और इस तरह यदि (निषेधमें) आ जाये तो वह ज्ञानी हो जाये। ज्ञानी होनेका प्रयत्न करता होगा तो यहाँ तक आ जायेगा। मूल विषय पर आयेगा तब तो ज्ञानी होगा न ? वहाँ तक कहाँसे ज्ञानी बनेगा ? कहाँ ज़ोर देना है ? और कितना ज़ोर देना है ? ये दो बात खयालमें न हो तो ज़ोर अन्यथा देनेमें आ जायेगा। और जहाँ, जितना ज़ोर देना है, ऐसा कब बनेगा ? कि, जब उसका (स्वरूपका) यथार्थ निर्णय होगा तब। यह विषय निर्णयमें तो आना चाहिए न ! कि मेरा स्वरूप कैसा है ? कितना महान है ! यह जब निर्णयमें आयेगा तब उस पर इतना अधिक ज़ोर चला जायेगा कि एक समयके परिणामका कर्ता परिणाम है, मैं उसका कर्ता नहीं, ऐसा ज़ोर आता है।

मुमुक्षु :- जैसे द्रव्य, गुण, पर्यायका जो अभ्यास है, उसमें परद्रव्यकी भिन्नताके अलावा और कोई हेतु नहीं है, उसका दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है।

पूज्य भाईश्री :- नहीं, इससे ज्यादा नहीं।

मुमुक्षु :- अनादिकालसे जीव पर ऊपर आरोप करता है, कर्म

पर आरोप करता है, भगवान पर आरोप करता है - ये सारे जो उलटे विपर्यास हैं वे तो मिट जाये परंतु पर्यायके एकत्वरूप जो मूल मिथ्यात्व है, वह द्रव्य, गुण, पर्यायके ज्ञानसे नहीं छूटेगा इसलिए यहाँ करुणापूर्वक यह बात की है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, वह संविधानके ज्ञानसे नहीं छूटेगा ऐसे लेना है। संविधानका विषय है वह ज्ञानका विषय है जब कि त्रिकाली सामान्य अखण्ड परम पारिणामिकभाव श्रद्धाका विषय है। ज्ञानमें आता है, परंतु ज्ञानमें आनेके पश्चात् यदि स्पष्ट अनुभवांशसे प्रतीति आये तो वह ज्ञान सार्थक होकर अनुभव तक जायेगा। परंतु यदि स्वभावकी स्पष्ट अनुभवांशसे प्रतीति न आये तो ज्ञान अनुभव तक नहीं जायेगा। इसलिए उसे निर्णयकी भूमिकामें लिया। निर्णयकी भूमिका ज्ञानप्रधान होनेपर भी श्रीमद्जीने प्रतीत शब्द क्यों इस्तेमाल किया ? यह विचार करने योग्य विषय है। निर्णय ज्ञानमें होता है, सविकल्पदशामें होता है और स्पष्ट अनुभवांशसे (होता है)। अनुभवांश भी ज्ञानकी पर्याय है। `**परमार्थकी स्पष्ट अनुभवांशसे प्रतीति**' (ऐसा कहा है)। यहाँ परमार्थ माने स्वभाव। परम+अर्थ माने स्वभाव। इतने शब्द लिखे हैं, `परमार्थकी स्पष्ट अनुभवांशसे प्रतीति वह दूसरा समकित है।' और `निर्विकल्प परमार्थका अनुभव वह परमार्थ सम्यग्दर्शनरूप तीसरा समकित है।' परंतु वहाँ प्रतीति शब्द क्यों लिया ? क्योंकि एक तो इस निर्णयको वे समकित कहना चाहते हैं। दूसरा यह कि, वहाँ सिर्फ जानना नहीं होता (परंतु साथमें) विश्वास आता है कि, मैं ऐसा ही (हूँ)। इस तरह ज़ोर आता है और ज्ञानबल उत्पन्न होता है। `मैं ऐसा ही हूँ। जैसा त्रिकाली (स्वभाव) मुझे ज्ञानमें आया ऐसा ही मैं हूँ।' ऐसा विश्वास आता है। फिर पंचाध्यायीकारने इस विश्वासको ज्ञानकी पर्याय कही है। वे प्रतीतको भी ज्ञानकी पर्याय कहते हैं, उस वक्त

रुचि हुई उसे भी ज्ञानकी पर्याय कहते हैं और उस वक्तकी श्रद्धाको भी ज्ञानकी पर्याय कहते हैं।

द्रव्य, गुण, पर्यायके जानकारीरूप ज्ञानसे एकत्व नहीं मिटता। और अनुभवज्ञानसे इसलिए मिटता है क्योंकि अनुभवज्ञानमें अनुभवके कालमें अविनाभावी श्रद्धा भी परिणमन करती है इसलिए। और इस श्रद्धाका विषय एक समयकी पर्याय नहीं है। श्रद्धाका विषय उस समयकी श्रद्धा भी नहीं है, सम्यग्दर्शनका विषय सम्यग्दर्शनकी पर्याय भी नहीं है, सम्यग्दर्शनका विषय स्वसंवेदनकी पर्याय भी नहीं, सम्यग्दर्शनका विषय आनंदकी पर्याय भी नहीं। सम्यग्दर्शनका विषय उस वक्त उत्पन्न हुई वीतरागताकी पर्याय नहीं है और केवलज्ञानके वक्त केवलज्ञानकी पर्याय भी नहीं है।

मुमुक्षु :- अनुभव होवे तब द्रव्य, गुण, पर्यायकी जानकारी होती ही है लेकिन सिर्फ जानकारीसे अनुभव नहीं है।

पूज्य भाईश्री :- नहीं, जानना अलग वस्तु है, अनुभव अलग वस्तु है। इसलिए तो हम ज्ञानकी एक ही पर्यायमें ज्ञानाकार और ज्ञेयाकार अलग-अलग क्यों लेते हैं ? क्योंकि जो जानना है वह ज्ञेयाकार ज्ञान है और अनुभव है सो ज्ञानाकार ज्ञान है। ज्ञानाकार ज्ञानको ज्ञानस्वभाव कहा है। वस्तुतः अध्यात्म शास्त्रोंमें जहाँ ज्ञानस्वभाव - ज्ञानगुणकी बात आती है, वहाँ ज्ञानवेदनकी बात चली है। तब वहाँ ज्ञेयाकार ज्ञानकी कोई प्रधानता नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है। वह तो परसे भिन्न होनेके लिए ही साधन है। पर जाननेमें आया ? तो कहते हैं, पर पररूप जाननेमें आना चाहिए। (ज्ञानमें) पर मालूम हुआ। तो कहते हैं पररूपमें मालूम हुआ ? वरना तुझे (स्व-रूपमें मालूम हो रहा है)। (इसप्रकार) स्व-पर प्रकाशकका प्रयोजन सिद्ध हुआ ? (अब), आजा तू ज्ञानवेदनमें। ज्ञानाकार ज्ञानमें आजा

तू ! ये दोनों समकालमें हैं। जब स्व-पर प्रकाशक (ज्ञानमें) ज्ञान, ज्ञानरूप वेदनमें आये (अर्थात्) ज्ञानाकाररूपमें ज्ञान वेदनमें आये तब ही ज्ञेयाकारज्ञानमें ज्ञेय पररूप भासित होते हैं, वरना पररूप भासित नहीं होते (परंतु) स्व-रूपमें भासित होते हैं। यह इसका नियम है। ज्ञानकी पर्यायके परिणमनका यह विज्ञान है।

मुमुक्षु :- ज्ञानाकार ज्ञानमें आनेके पश्चात् परका विचार ही नहीं आता है न ? परमें राग-द्वेष होगा ही नहीं न ?

पूज्य भाईश्री :- नहीं, पर पररूप भासित होगा। पर, पररूप भासित हो तो कोई दोष नहीं होगा। परंतु पर, स्व-रूपमें भासित होगा तो एकत्व हो जायेगा। अध्यात्मका मूल थोड़ा गहरा है।

एक समयकी पर्यायका एकत्व तोड़े बिना त्रिकालीका आश्रय नहीं होता। त्रिकालीका आश्रय नहीं होता है मतलब त्रिकाली है सो अध्यात्म तत्त्व है और (उसका) आश्रय करना वह भी अध्यात्म तत्त्व है। बस ! अध्यात्म तत्त्व यहाँ समाप्त हो जाता है। यहाँसे आगे अध्यात्मकी मर्यादा नहीं है। फिर जितना भी (विस्तार) है वह आगमका विषय है। आगम और अध्यात्म दोनोंका विचार करे तो अध्यात्म यहाँ पूरा हो गया। अब जो चलती हैं, वह सब आगमकी बातें हैं।

मुमुक्षु :- फिरसे लीजिये न !

पूज्य भाईश्री :- अध्यात्म तत्त्व है सो त्रिकाली शुद्ध आत्मा परम पारिणामिकभाव है और उसका आश्रय जो पर्यायें करती हैं वे भी अध्यात्मतत्त्वमें आती हैं। उसका आधार लेती हैं इसलिए उन्हें अध्यात्म तत्त्व कहते हैं। उसमें आधारभाव है। बस ! अध्यात्मका विषय यहाँ पूरा हो जाता है। इसके अलावा जितना भी विषय है वह सारा आगममें जाता है। फिर तो अध्यात्मकी बातको आगमकी भाषामें कह

सकते हैं कि, यह जो हुआ वह सम्यग्दर्शन हुआ, तो कहते हैं, हम उसे उपशम सम्यग्दर्शन कहते हैं। यानी कि यह आगमभाषाकी बात है। क्षयोपशम सम्यग्दर्शन हुआ, तो यह आगमभाषाकी बात है। हम तो जो स्वरूपका आश्रय किया इसीको समझते हैं - यह अध्यात्मभाषा है। स्वसंवेदन हुआ और स्वानुभव हुआ, वह अध्यात्मभाषा है। उस वक्त मति-श्रुतज्ञानमें अंतर्मुखता हुई, मति-श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष हुआ तो कहते हैं, वह सब आगमभाषामें जाता है। मति-श्रुत - ये सारे भेद आगममें जाते हैं।

मुमुक्षु :- आगम अर्थात् व्यवहार ?

पूज्य भाईश्री :- नहीं, वह (कहनेकी एक) शैली है। शास्त्रोंमें भाषाकी दो पद्धति हैं। एक अध्यात्मपद्धति और दूसरी आगमपद्धति। (फिर) अगर कोई (शास्त्र)वचन आये तब, यह वचन अध्यात्मपद्धतिका है या आगमपद्धतिका है, यह मालूम न हो और उलट-सुलट समझ ले इसका कोई अर्थ नहीं है। उसे अपनी समझमें यह होना चाहिए कि, यह अध्यात्मभाषासे बात करते हैं, यही बात आगमभाषासे इस तरह करते हैं। आगमकी मर्यादा यह है, अध्यात्मकी मर्यादा यह है। सब स्पष्ट तो होना चाहिए न !

मुमुक्षु :- परिणामका कर्ता परिणाम अंश है, मैं त्रिकाली अंश नहीं। यह अध्यात्मभाषा है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, यह अध्यात्मभाषा है। यह अध्यात्मका विषय है। क्योंकि, परिणामका कर्ता परिणाम है, ऐसे अलग होकर मैं त्रिकाली हूँ, ऐसा आ जाता है। (ऐसे निजस्वरूपका) आश्रय लेता है। अतः यहाँ विषय अध्यात्मपद्धतिसे चलता है। यह अध्यात्मपद्धति है। उन्होंने तो सिर्फ अध्यात्मपद्धति ली है। वे आगमपद्धतिको देखते ही नहीं थे। आगम (पद्धतिसे) विषय लेना जैसे जानते ही नहीं थे,

ऐसा कह सकते हैं।

अध्यात्म समझे बिना आगम समझमें नहीं आता। महान आचार्योंने धवलमें और अन्यत्र यह बात की है कि, छओं द्रव्य और उसके संबंधित जितना भी विस्तार है; ज्यादा विस्तार तो ये कर्मकी प्रकृति इत्यादिका है, सबसे ज्यादा विस्तार करणानुयोगका है। चरणानुयोगमें तो आचरण (के विषयमें) तो तीन गुणस्थान तक मिथ्याआचरण (है)। फिर चतुर्थ गुणस्थानसे सम्यक्आचरण और मुनिपदसे लेकर विशेष आचरण (है)। फिर श्रेणी (लगाना) वह तो अंतर्मुहूर्तकी बात है, उसका कितना लंबा (वर्णन) करे ! अतः जितना विस्तार है वह तो करणानुयोगका है। अतः विभाव परिणाम और विभाव परिणामके निमित्तसे, निमित्त-नैमित्तिक संबंधसे (बंधे गये) कर्म पुद्गल परमाणुओंका प्रकार, उसके अंश - जघन्य, मध्यम उत्कृष्ट अथवा अविभाग प्रतिच्छेद इत्यादि सब कुछ (करणानुयोगमें आता है)। परंतु वह जितना भी विस्तार है सब एक मात्र इस अध्यात्म तत्त्वको समझनेके लिए किया है।

जिनेन्द्रवर्णीजीने यह बात दो-चार जगह अलग-अलग प्रकरणमें ली है कि, छओं द्रव्यका विस्तार एक इस अध्यात्म तत्त्वको समझनेके लिए किया है। दिव्यध्वनिका प्रयोजन यही है। गणधरोंका प्रयोजन भी इतना ही है। बहुत अच्छी बात की है। अर्थात् विषयका केन्द्रीकरण किया है। यह लंबी-लंबी बात आप करते हो लेकिन बातका केन्द्रस्थान कहाँ है ? तो कहते हैं, एक ही जगह केन्द्रस्थान है। अध्यात्मतत्त्व ऐसा जो आत्मा है उसे समझानेके लिए सब लंबी-चौड़ी बातें की हैं। वह समझमें आये तो सब समझमें आया और यह नहीं समझमें आये तो कुछ समझमें नहीं आया। अतः जिसको अध्यात्म समझमें आता है उसको ही आगम समझमें आता है। उस पर ही आचार्योंने

बात की है कि, छओं द्रव्यका जो विस्तार है वह इस एक तत्त्वको (दिखानेके लिए है)। `एगं जाणई सो सव्वं जाणई' यह आचारांगका पहला सूत्र है। बारह अंगमें पहला आचारांग है। बारह अंग जो हैं उनमें पहला आचारांग है। आचारांगके बाद सूत्रकृतांग, ठाणांग, समवायांग इत्यादि सब बादमें (आते) हैं। उसमें पहले अंगका पहला सूत्र यही है कि `एगं जाणई सो सव्वं जाणई' (अर्थात्) एक (आत्माको) जाना उसने सर्व जाना (और) यदि एकको नहीं जाना उसने कुछ नहीं जाना। उसमें सब आ गया। अतः अध्यात्मतत्त्वकी प्रधानता है। दिव्यध्वनिके बारह अंगमें भी अध्यात्मतत्त्वकी प्रधानता है। गुरुदेव तो ऐसा कहते थे कि, जिसने अनुभव किया, शुद्धात्मका जिसने अनुभव किया उसके ज्ञानमें बारह अंगका सार आ गया ! उसके अनुभवमें बारह अंगका निचोड़ आ गया ! जाओ ! उसे बारह अंग जाननेका बंधन नहीं है, शास्त्रज्ञानकी कोई अटक नहीं है, ऐसा राजमल्लजीने (कलश टीकामें) लिया है। जब कि कुंदकुंदाचार्यने उसे श्रुतकेवली कहा। (समयसारकी) नौ-दस गाथामें उसको श्रुतकेवली कह दिया। उसे केवलीका Title (पदवी) लगा दिया - श्रुतकेवली ! श्रुतज्ञानी हैं इसलिए (उन्हें हम) श्रुतकेवली (कहते हैं), जाओ !

मुमुक्षु :- आचारांगका मतलब आचरण कैसा रखना, यह हुआ ?

पूज्य भाईश्री :- चार अनुयोगमें आचारांग है सो आचरणका अनुयोग है। और उपदेशपद्धतिमें मुनिदशाका ही उपदेश दिया जाता है। फिर ऐसा कहेंगे कि, तेरेमें इतनी शक्ति न हो तो (तू) श्रद्धा करना। (ऐसे) उपदेशकी शुरूआत वहींसे करते थे। अभी तो ऐसा काल नहीं है। ऐसे उपदेशक (भी) नहीं रहे और काल (भी) नहीं है। वरना बात तो वहाँसे ही चलती थी। भगवानके समयमें भी बात यहाँसे चलती थी। आचारांगसे बात चलती थी। अतः गणधरदेवोंने बारह अंगकी शुरूआत आचारांगसे की है। अभी तो सम्यग्दर्शनकी बात भी महँगी हो गई है। अरे...! मुमुक्षुताकी बात महँगी हो चुकी है, सम्यग्दर्शन तो कहाँ लेने जाये ? पात्रताकी बात महँगी हो चुकी है। पात्र (जीव) ढूँढ़ना मुश्किल पड़े ऐसा है।

मुमुक्षु :- स्वभावको ग्रहण करनेके प्रयत्नमें पर्यायका निषेध आता है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, क्योंकि स्वभाव पर्याय रहित है। ग्रहण करनेवाली पर्याय है, परंतु स्वभाव ऐसा अद्भुत है ! भगवान आत्मा स्वभाव इतना अद्भुत है ! कि पर्याय अपना भान भूलती है ! ऐसा भान भूलकर जब स्वभाव पर ज़ोर आता है तब सम्यक्ता प्राप्त होती है। वहाँ तक सम्यक्ता नहीं आती, ऐसा कहना है। ये सारे इसके संकेत हैं। ज्ञानीकी ये जो बातें आती हैं, उनमें इस प्रकारके संकेत आते हैं। (आता है न) `ज्ञानभंडार आत्मामेंसे ज्ञान उघड़ता रहता है।' जिसका ज्ञान विशाल हो उसमें लोगोंको आकर्षण हो जाता है, आश्चर्य हो जाता है कि, आहाहा ! क्या ज्ञान है !! क्या ज्ञान है !! परंतु ज्ञान तो ज्ञान भण्डारमेंसे उघड़ता है, तुझे ज्ञानभण्डारका कोई आश्चर्य नहीं है और (यह) उघाड़रूप ज्ञानका इतना आश्चर्य क्यों (होता है) ? ऐसा कहते हैं। ये सारे संकेत हैं। एक-एक बातमें इसका संकेत है। वस्तु ऐसी है कि, उसका आश्रय लेनेवाला, उसके सामने देखनेवाला, उसमें आसक्त होनेवाला खुद अपना भान भूलता है। इसी परसे तो श्रीमद्जीने गोपांगनाकी भक्तिका दृष्टांत लिया है कि, गोपांगनाएँ भी अपना भान भूल जाती थीं। श्रीकृष्णको देखते वक्त भान भूल जाती थीं कि, मैं कौन हूँ ? मैं स्त्री हूँ, ऐसे नहीं रहा जाता, ऐसे नहीं बोलते, ऐसे नहीं चला जाता, ये सब भूल जाती थीं।

मुमुक्षु :- ज्ञानकी पर्याय गोपांगना है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, ज्ञान, दर्शन, चारित्र ये सभी पर्यायें गोपांगनाएँ हैं, ऐसा कहते हैं। और भगवान (आत्मा) श्रीकृष्ण है, ऐसा कहना चाहते हैं। वह भान भूल जाती है। वैसे तो रुचिका विषय ही ऐसा है। सबको छोड़ दे। अपने विषयके अलावा सबको (छोड़ दे), खुदको भी छोड़ दे - उसका नाम रुचि।

इस तरह यह सहजता है। इस मार्गकी और इस प्रकारके परिणमनकी पद्धतिकी सहजता ही ऐसी होती है। इस तरह काम होता है। दूसरे प्रकारसे काम नहीं होता। विशेष कल लेंगे।

अपने द्रव्यमें एकत्व किए बिना, रागसे और शरीरसे भिन्नता नहीं हो सकती; भले ही `भिन्न है.... भिन्न है' ऐसा कहे। लेकिन अपने द्रव्यमें एकत्व होते ही सहज भिन्नता हो जाती है, विकल्प उठाना नहीं पड़ता; सहज ही भिन्नता रहती है।

(द्रव्यदृष्टिप्रकाश - १५२)

पत्रांक - ५१

कलकत्ता
२०-२-१९६४

श्री सद्गुरुदेवाय नमः

आत्मार्थी...शुद्धात्म सत्कार।

पत्र मिला। परम कृपालु गुरुदेवश्रीके मुखारविंदसे मुझ संबंधी निकले सहज उद्गार आपको अमुक-अमुक स्थानोंके भाईयोंसे ज्ञात हुए सो आप सबने स्वाभाविक प्रसन्नता और उत्साहपूर्वक मुझे लिखे, सो जाने।

मुक्तिनाथकी इस दास प्रत्ये सहज कृपादृष्टि इस बातका द्योतक है कि अति उमंगभरी मुक्तिसुंदरी अप्रतिहतभावे, मुझ कृतकृत्यके साथ, महा आनंदमयी अस्खलित, परमगाढ़ आलिंगनयुक्त रहकर शीघ्रातिशीघ्र कृतकृत्य होना चाहती है।

परम पिताश्रीने हम सब पुत्र मण्डलको अटूट लक्ष्मीभण्डार (दृष्टिरूपी चाबी द्वारा खोलकर) भोग हेतु प्रदान किया है, इसे नित्य भोगो, नित्य भोगो, यह ही भावना है।

तीर्थंकरयोग सूचित करता है कि सब सज्जन पुत्रगण इस भोगको निःसंदेह भोगते हुए नित्य अमर रहेंगे।

``स्थानो न क्षायिकभावनां, के क्षायोपशमिक तणां नहीं,
स्थानो न उपशमभावनां, के उदयभाव तणां नहीं.''

``गुण अनंतके रस सबै, अनुभौ रसके माहिं,
यातैं अनुभौ सारिखौ, और दूसरो नाहिं.''

पृथक्-पृथक् पत्रोंकी पहुँच संभव नहीं, अतः सहज मिलनेपर आप उन भाईयोंको मेरा यथायोग्य स्नेह बोल देवें...। सर्व भाईयोंके नित्य आनंदका निरीच्छकपने इच्छुक।

मात्र मोक्ष अभिलाषी
निहालचंद्र सोगानी

प्रवचन - १८ दि. ०५-०९-१९९१ - पत्रांक-५१

`**आत्मार्थी...शुद्धात्म सत्कार।**

पत्र मिला। परम कृपालु गुरुदेवश्रीके मुखारविंदसे मुझ संबंधी निकले सहज उद्‌गार आपको अमुक-अमुक स्थानोंके भाईयोंसे ज्ञात हुए सो आप सबने स्वाभाविक प्रसन्नता और उत्साहपूर्वक मुझे लिखे, सो जाने।'

पूज्य गुरुदेवश्रीने सोगानीजीके बारेमें प्रशंसाके शब्द विहारके दौरान अमुक-अमुक स्थानमें, अमुक-अमुक गाँवमें, व्यक्त किये हैं। (अतः) जो उनके परिचयमें आये थे उन्होंने पत्रके द्वारा (लिखा था) कि, फलाने गाँवमें गुरुदेवश्री आपके बारेमें ऐसा बोले, आपके विषयमें ऐसा बोले। ऐसी प्रसन्नता (और) उत्साहपूर्वक उन लोगोंने लिखा कि, आपके लिए ऐसे शब्द इस्तेमाल किये हैं, ऐसे शब्द इस्तेमाल किये हैं, आपके बारेमें ऐसा बोले हैं... ऐसा बोलते हैं... इसकी पहुँच उन्होंने (इस पत्रमें) लिखी है कि, आप सबने जो लिखा सो मैंने जाना।

`**मुक्तिनाथकी इस दास प्रत्ये....**' मुक्तिनाथ अर्थात् गुरुदेवश्री। बादमें तो बहुत लोग परिचयमें आये थे इसलिये अलग-अलग किसी-किसीके पत्रका उत्तर दिया है। सबको (उत्तर) नहीं दिया लेकिन किसी-किसीको उत्तर दिया है।

`**मुक्तिनाथकी इस दास प्रत्ये....**' यानी गुरुदेवश्रीके प्रति अपना

दासत्व व्यक्त किया है। `**सहज कृपादृष्टि...**' अर्थात् गुरुदेवश्रीकी जो मेरे पर सहज कृपादृष्टि है, वह `**इस बातका द्योतक है...**' (यानी कि) इस बातको प्रकाशित करती है, स्पष्ट करती है, `**कि अति उमंगभरी मुक्तिसुंदरी अप्रतिहतभावे, मुझ कृतकृत्यके साथ, महा आनंदमयी अस्खलित, परमगाढ़ आलिंगनयुक्त रहकर शीघ्रातिशीघ्र कृतकृत्य होना चाहती है।**' मोक्षकी भावना भायी है। गुरुदेवश्रीने मेरी जो प्रशंसा की है, इस परसे ऐसा लगता है कि, मेरा मोक्ष अब शीघ्र ही हो जायेगा। बिलकुल साहित्यकी भाषा जैसी भाषा इस्तेमाल की है। परंतु सीधा इसका भावार्थ ऐसा है कि, अब मेरा बहुत अल्पकालमें मोक्ष हो जायेगा। गुरुदेवश्रीकी ऐसी कृपादृष्टिसे मुझे ऐसा लगता है कि मेरा मोक्ष अभी बहुत समीप है। वरना उनकी कृपादृष्टि नहीं होती। मेरा मोक्ष होनेवाला हो तो उनकी कृपादृष्टि होवे। इस प्रकार सांकेतिक बात की है। जैसे फलाना स्वप्न आया इसलिये ऐसा होगा, वैसे गुरुदेवके श्रीमुखसे मेरी प्रशंसा हुई, इस परसे ऐसा लगता है कि, अब मेरी मुक्ति समीप है। उनकी कृपादृष्टि यह सूचित करती है।

अब, (देखिये !) इसमें क्या लिया है कि, जो मुक्ति है उस पर ज़ोर नहीं दिया। उनकी जो कथन शैली है उसमें मुक्तिकी पर्याय पर उनका ज़ोर नहीं है। (क्या लिखते हैं ?) `**मुक्तिसुंदरी अप्रतिहत भावे,...**' यानी (कहीं भी) रुके बिना - भावसे पीछेहट हुए बिना - साधकदशामें कहीं भी भावमें गिरावट आये बिना मुक्तिरूपी स्त्री मेरे साथ आलिंगन करके कृतकृत्य होना चाहती है ! (यानी कि) मैं तो कृतकृत्य ही हूँ !! मैं कोई अकृतकृत्य नहीं हूँ, मैं तो कृतकृत्य ही हूँ। परंतु पर्याय कृतकृत्य होनेके लिए अब मेरी ओर आती है। ऐसा लिखकर भाषा अलंकारसे भी उन्होंने द्रव्यकी

प्रधानता और पूर्ण मुक्त पर्यायकी भी गौणता - इस शैलीसे बात की है।

`**परम पिताश्रीने...**' गुरुदेवके लिए दूसरा विशेषण इस्तेमाल किया है। गुरुदेवश्रीके लिए कितने-कितने विशेषण इस्तेमाल किये हैं - इसकी अलग छँटनी करो ! कैसे-कैसे विशेषण इस्तेमाल किये हैं। ये तो भक्तिके प्रकरणमें ले सकते हैं। उनके जीवन-चरित्रमें `गुरु-भक्ति'का प्रकरण हमने अलगसे लिया है तो उन्होंने भक्तिवश गुरुदेवश्रीके लिए कैसे-कैसे बहुमान सूचक शब्दोंका प्रयोग किया है !

`**परम पिताश्रीने हम सब पुत्र मण्डलको अटूट लक्ष्मीभण्डार...**' (अटूट माने) कभी खाली न हो, टूटे नहीं वैसा। गुरुदेवने `हमको - सब पुत्र मण्डलको' - हम सब इनके पुत्र मण्डल हैं, और वे हमारे परमपिता हैं - धर्मपिता हैं। उन्होंने लक्ष्मीका भण्डार दिया है। जैसे बाप बेटेके लिए विरासतमें पूँजी छोड़कर जाता है न ! वैसे भण्डार दिया है।

`(**दृष्टिरूपी चाबी द्वारा खोलकर**)...' भण्डार भी दिया है और इसकी चाबी भी, तिजोरीके साथ दी है कि, इस चाबीसे खोलकर अंदरसे जो चाहिए वह निकाल लेना, अंदर कुछ कम होनेवाला नहीं । यह अक्षय भण्डार है। `**भोग हेतु प्रदान किया है,...**' बस ! भोगो ! आनंदको भोगो ! सुखी हो जाओ सब ! `**इसे नित्य भोगो, नित्य भोगो, यह ही भावना है।**' आप सभी मुमुक्षु भाई मुझे पत्र लिखते हो तो उन्होंने जो ज्ञानभण्डार दिया है, ज्ञानलक्ष्मीका भण्डार दिया है, वह हमारे पिताकी विरासत है, उसे हम सब भोगें !

`**तीर्थंकरयोग सूचित करता है...**' यह गुरुदेवके (लिए) तीर्थंकरयोग शब्द लिया ! भावी तीर्थंकर हैं न ! उनका अभी योग हुआ है। `**तीर्थंकर योग सूचित करता है कि सब सज्जन पुत्रगण इस भोगको निःसंदेह भोगते हुए नित्य अमर रहेंगे।**' उनकी हमें भेट हुई है,

इससे यह सूचित होता है कि सब सज्जन पुत्रगण इस ज्ञानभण्डारको भोगते हुए नित्य निःसंदेह अमर हो जायेंगे। सभी शाश्वतपदको प्राप्त करेंगे - सब मुक्तिकी राह पर आयेंगे। बाकी मूलस्वरूपमें तो ऐसी पर्यायकी बात नहीं है, ऐसा कहकर नियमसारकी गाथाका उद्धरण किया है।

`**स्थानो न क्षायिकभावनां, के क्षायोपशमिक तणां नहीं,...**' (अर्थात्) मेरे आत्मद्रव्यमें क्षायिकभावका कोई स्थान नहीं, क्षयोपशमभावका भी कोई स्थान नहीं। `**स्थानो न उपशमभावनां, के उदयभाव तणां नहीं।**' (अर्थात्) उपशमभावका भी कोई स्थान नहीं और उदयभावका भी कोई स्थान नहीं। चारों प्रकारकी पर्याय यानी कि किसी भी प्रकारकी पर्यायका स्थान मेरे स्वरूपमें नहीं है। यह नियमसारजीकी ४१ वीं गाथा है। शुद्धभाव अधिकारकी गाथा ली है। फिर यह पद लिया है, जिसे आगे खुद लिख चुके हैं।

`**गुण अनंतके रस सबै, अनुभौ रसके माहिं,**
यातैं अनुभौ सारिखौ, और दूसरो नाहिं।'

एक स्वानुभवमें अनंतगुणका रस है। उस अनुभव समान कोई रस नहीं है। परिणाममें अनुभवरस समान कोई रस नहीं है - दूसरा कोई रस नहीं है। अनंतगुणका रस उसमें आता है इसलिए अनुभव जैसा कोई रस नहीं है। अनुभवका रस है सो अनुभवका रस है। जो शब्दातीत है, वचनातीत है, विकल्पातीत है, मनातीत है, अचिंत्य है, वास्तवमें तो वह अचिंत्य है।

`**पृथक्-पृथक् पत्रोंकी पहुँच संभव नहीं,...**' क्या (कहते हैं) ? अलग-अलग काफी भाइयोंके पत्र मिले हैं - ऐसा (कहा) न ! कि अमुक-अमुक स्थानोंसे भाइयोंने पत्र लिखे हैं, उन सभीको अलग-अलग पहुँच लिखना संभव नहीं। इतनी अधिक प्रवृत्तिमें खुद उलझना

नहीं चाहते थे। `**अतः सहज मिलनेपर आप उन भाईयोंको मेरा यथायोग्य स्नेह बोल देवें...।**' अतः सहज आपका मिलना होवे तब सहज ही हमारा स्नेह बोल दीजियेगा कि, सबको स्नेह-स्मरण कहलवाये हैं।

`**सर्व भाईयोंके नित्य आनंदका निरीच्छकपने इच्छुक।**' सभी भाइयोंको नित्य आनंदकी प्राप्ति हो ऐसी निरीच्छकभावसे इच्छा है, इच्छा भी निरीच्छकभावसे है। देखो ! कैसा शब्द लिया है ! इच्छा है लेकिन वीतरागभावपूर्वक इच्छा है, किसी रागभावसे ऐसी इच्छा नहीं। `**मात्र मोक्ष अभिलाषी, निहालचंद्र सोगानी**'

मुमुक्षु :- यह पत्र ऐसा है जैसे अंतिम संदेश दिया हो !

पूज्य भाईश्री :- हाँ, ऐसा है।

पहले पैराग्राफमें पत्रकी पहुँच लिखी है। दूसरे पैराग्राफमें (लिखे गये) पत्रोंमें गुरुदेवश्रीने उनको याद किया, (इनकी) प्रशंसा की उस परसे खुदकी मुक्तदशा समीप है - ऐसी गुरुदेवश्रीकी कृपादृष्टिका संकेत है ! गुरुदेवकी कृपादृष्टिका संकेत ऐसा है कि, अब मेरी मुक्ति नजदीक है, मेरी मुक्ति ज्यादा दूर नहीं। और हमें ज्ञानका बड़ा भण्डार दिया है। अतः उस ज्ञानभण्डारको सभी भोगो। स्वयंने भावना व्यक्त की है कि, सभी मुमुक्षुजन भी गुरुदेवश्रीने जो कुछ ज्ञानभण्डार दिलाया है उसका उपभोग करें ! सभी हितको पाएँ ! यह तो सीधी बात है। जीव तो सभी एक सरीखे हैं। कोई हीनाधिक तो है नहीं, फिर क्यों सभीको प्राप्ति न हो ? (इसलिए कहते हैं) सभी प्राप्त हो !

ऐसा ज्ञानभण्डार खुला रख दिया, कोई चाहे जितना अंदरसे ले और लूट ले, सिर्फ ले उतना नहीं परंतु लूट ले तो भी इसमें कोई कमी आनेवाली नहीं है। उतना का उतना भरा रहेगा। ऐसा

तीर्थंकरयोग प्राप्त हुआ है तो सभी मुमुक्षुजन इस ज्ञानभण्डारको भोगत-भोगते अमर हो जायें। ऐसी भावना भायी है।

मुमुक्षु :- सज्जन पुत्रकी जिम्मेवारी बढ़ गई !

पूज्य भाईश्री :- स्वाभाविक ही है। गुरुदेव जैसे महापुरुषका योग हुआ तो जीवनमें यथोचित बदलाव तो सामान्य जीवोंके जीवनसे आना ही चाहिए।

मुमुक्षु :- अपनी अंतर परिणतिकी बात की है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, वही तो लिखा कि, मेरी मुक्ति समीप है ऐसा मुझे लगता है। `**इस बातका द्योतक है...**' यानी कि मुझे ऐसा लगता है कि मेरी मुक्ति अभी समीप है। ऐसा है कि, जिसको जो अंदरमें लगता हो वही बात कोई न कोई बहानेसे बाहर आनेवाली है। सीधी बात है।

श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
उपलब्ध प्रकाशन (हिन्दी)

	ग्रंथ का नाम एवं विवरण	मूल्य
०१	अनुभव प्रकाश (ले. दीपचंदजी कासलीवाल)	-
०२	आत्मयोग (श्रीमद् राजचंद पत्रांक-४६९, ४९१, ६०९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
०३	अनुभव संजीवनी (पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखे गये वचनामृतोंका संकलन)	१५०-००
०४	आत्मसिद्धि शास्त्र पर प्रवचन (पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा)	५०-००
०५	आत्मअवलोकन	-
०६	बृहद द्रव्यसंग्रह	अनुपलब्ध
०७	द्रव्यदृष्टिप्रकाश (तीनों भाग-पूज्य श्री निहालचंदजी सोगानीजीके पत्र एवं तत्वचर्चा)	३०-००
०८	दूसरा कुछ न खोज (प्रत्यक्ष सत्पुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०६-००
०९	दंसणमूलो धम्मा (सम्यक्त्व महिमा विषयक आगमोंके आधार)	०६-००
१०	धन्य आराधना (श्रीमद राजचंद्रजीकी अंतरंग अध्यात्म दशा पर ॅ पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा विवेचन)	-
११	दिशा बोध (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-१६६, ४४९, ५७२ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
१२	धन्य पुरुषार्थी	-
१३	धन्य अवतार	-
१४	गुरु गुण संभारणा (पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन द्वारा गुरु भक्ति)	१५-००
१५	गुरु गिरा गौरव	-
१६	जिणसासणं सव्वं (ज्ञानीपुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०८-००
१७	कुटुम्ब प्रतिबंध (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१०३,३३२,५१०, ५२८,५३७ एवं ३७४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
१८	कहान रत्न सरिता (परमागमसारके विभिन्न वचनामृतों पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	३०-००
१९	मूलमें भूल (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके विविध प्रवचन)	०८-००
२०	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-२५४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	-
२१	मुक्तिका मार्ग (सत्ता स्वरूप ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन)	१०-००

२२	निर्भ्रांत दर्शनकी पगडंडी (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	१०-००
२३	परमागमसार (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके १००८ वचनामृत्त)	-
२४	प्रयोजन सिद्धि (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	०४-००
२५	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-१९५, १२८, २६४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
२६	प्रवचन नवनीत (भाग-१) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके खास प्रवचन)	२०-००
२७	प्रवचन नवनीत (भाग-२) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके खास प्रवचन)	२०-००
२८	प्रवचन नवनीत (भाग-३) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके ४७ नय के खास प्रवचन)	२०-००
२९	प्रवचन नवनीत (भाग-४) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके ४७ शक्ति के खास प्रवचन)	२०-००
३०	प्रवचन सुधा (भाग-१) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचनसार परमागम पर धारावाही प्रवचन)	२०-००
३१	प्रवचन सुधा (भाग-२) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचनसार परमागम पर धारावाही प्रवचन)	२०-००
३२	प्रवचनसार	अनुपलब्ध
३३	प्रंचास्तिकाय संग्रह	अनुपलब्ध
३४	सम्यक्ज्ञानदीपिका (ले. श्री धर्मदासजी क्षुल्लक)	१५-००
३५	ज्ञानामृत्त (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से चयन किये गये वचनामृत्त)	-
३६	सम्यग्दर्शनके सर्वोत्तकृष्ट निवासभूत छ पदोंका अमृत पत्र (श्रीमद रादचंद्र पत्रांक-४९३ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	१८-००
३७	सिद्धिपका सर्वश्रेष्ठ उपाय (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से पत्रांक-१४७,१९४, २००,५११,५६० एवं ८१९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
३८	सुविधि दर्शन (सुविधि लेख पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	४०-००
३९	समयसार नाटक	अनुपलब्ध
४०	समयसार कलस टीका	अनुपलब्ध
४१	समयसार	अनुपलब्ध
४२	तत्त्वानुशीलन (भाग-१,२,३) (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	२०-००
४३	तत्थ्य	अनुपलब्ध
४४	विधि विज्ञान (विधि विषयक वचनामृत्तोंका संकलन)	१०-००
४५	वचनामृत्त रहस्य (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके नाईरौबीमें हुए प्रवचन	२०-००

-

વીતરાગ સત્‌સાહિત્ય પ્રસારક ટ્રસ્ટ

ઉપલબ્ધ પ્રકાશન (ગુજરાતી)

	ગ્રંથનું નામ તેમજ વિવરણ	મૂલ્ય
૦૧	અધ્યાત્મિકપત્ર (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાનીજીના પત્રો)	૦૨-૦૦
૦૨	અધ્યાત્મ સંદેશ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના વિવિધ પ્રવચનો)	અનુપલબ્ધ
૦૩	આત્મયોગ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૫૬૯, ૪૯૧, ૬૦૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૦૪	અનુભવ સંજીવની (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૧૫૦-૦૦
૦૫	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૧) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૬	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૨) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૭	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૩) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૮	અધ્યાત્મ પરાગ	-
૦૯	બીજું કાંઈ શોધમા (પ્રત્યક્ષ સત્પુરુષ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	-
૧૦	બૃહદ દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૧) (દ્રવ્યસંગ્રહ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો)	-
૧૧	બૃહદ દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૨) (દ્રવ્યસંગ્રહ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો)	-
૧૨	ભગવાન આત્મા (દ્રષ્ટિ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	-
૧૩	દ્વાદશ અનુપ્રેક્ષા (શ્રીમદ્ ભગવત્ કુંદકુંદાચાર્યદેવ વિરચિત	૦૨-૦૦
૧૪	દ્રવ્યદષ્ટિ પ્રકાશ (ભાગ-૩) (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદજી સોગાની તત્ત્વચર્ચા)	૦૪-૦૦
૧૫	દસ લક્ષણ ધર્મ (ઉત્તમ ક્ષમાદિ દસ ધર્મો પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીનાં પ્રવચનો)	૦૬-૦૦
૧૬	ધન્ય આરાધના (શ્રીમદ રાજચંદ્રજીની અંતરંગ અધ્યાત્મ દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા વિવેચન)	૧૦-૦૦
૧૭	દિશા બોધ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્રજી પત્રાંક-૧૬૬,૪૪૯,અને ૫૭૨ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા પ્રવચનો)	૧૦-૦૦
૧૮	ગુરુ ગુણ સંભારણા (પૂજ્ય બહેનશ્રીના શ્રીમુખેથી સ્ફુરિત ગુરુભક્તિ)	૦૫-૦૦
૧૯	ગુરુ ગિરા ગૌરવ (પૂજ્ય સૌગાનીજીની અંગત દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૦	ગુરુ ગિરા ગૌરવ (ભાગ-૧) (દ્રવ્યદષ્ટિ પ્રકાશ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પત્રો પર સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૧	ગુરુ ગિરા ગૌરવ (ભાગ-૨) (દ્રવ્યદષ્ટિ પ્રકાશ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પત્રો પર સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦

૨૨	જિણસાસણં સવ્વં (જ્ઞાનીપુરુષ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૦૮-૦૦
૨૩	કુટુંબ પ્રતિબંધ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૦૩, ૩૩૨, ૫૧૦, ૫૨૮, ૫૩૭ તથા ૩૭૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૨૩	કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૧) (પરમાગમસારમાંથી ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃત્તો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈનાં પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૨૪	કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૨) (પરમાગમસારમાંથી ક્રમબદ્ધ પર્યાય વિષયક ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃત્તો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈનાં પ્રવચનો)	૩૦-૦૦
૨૫	કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૧) કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૨૬	કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૨) કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૨૭	ક્રમબદ્ધપર્યાય	-
૨૮	મુમુક્ષતા આરોહણ ક્રમ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૨૫૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૧૫-૦૦
૨૯	નિર્ભ્રાંત દર્શનની કેડીએ (લે. પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૧૦-૦૦
૩૦	પરમાત્માપ્રકાશ (શ્રીમદ્ યોગીન્દ્રદેવ વિરચિત)	૧૫-૦૦
૩૧	પરમાગમસાર (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના ૧૦૦૮ વચનામૃત્ત)	૧૧-૨૫
૩૨	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૧) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	અનુપલબ્ધ
૩૩	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૨) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૩૪	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૩) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૩૫-૦૦
૩૫	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૪) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય શક્તિઓ ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૭૫-૦૦
૩૬	પ્રવચન પ્રસાદ (ભાગ-૧) (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો)	૬૫-૦૦
૩૭	પ્રવચન પ્રસાદ (ભાગ-૨) (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો)	-
૩૮	પ્રયોજન સિદ્ધિ (લે. પૂજ્યભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૦૩-૦૦
૩૯	પથ પ્રકાશ (માર્ગદર્શન વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૦૬-૦૦
૪૦	પરિભ્રમણના પ્રત્યાખ્યાન (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૯૫, ૧૨૮ તથા ૨૬૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૪૧	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૪૦-૦૦
૪૨	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૨) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૮૫-૦૦
૪૩	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૩) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૪	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૪) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૪૦-૦૦
૪૫	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૫) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૬	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૬) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૭	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૭) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૪૮	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૮) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦

૪૯	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૯) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૦	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧૦) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૧	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧૧) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૨	પ્રવચનસાર	અનુપલબ્ધ
૫૩	પ્રચારિસ્તકાય સંગ્રહ	અનુપલબ્ધ
૫૪	પદ્મનંદીપંચવિશતી	-
૫૫	પુરુષાર્થ સિદ્ધિ ઉપાય	અનુપલબ્ધ
૫૬	રાજ હૃદય (ભાગ-૧) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૭	રાજ હૃદય (ભાગ-૨) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૮	રાજ હૃદય (ભાગ-૩) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૯	સમ્યક્જ્ઞાનદીપિકા (લે. શ્રી ધર્મદાસજી ક્ષુલ્લક)	૧૫-૦૦
૬૦	જ્ઞાનામૃત્ત (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી ચૂંટેલા વચનામૃત્તો)	૦૬-૦૦
૬૧	સમ્યગ્દર્શનના નિવાસના સર્વોત્કૃષ્ટ નિવાસભૂત છ પદનો પત્ર (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૪૯૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૬૨	સિદ્ધપદનો સર્વશ્રેષ્ઠ ઉપાય (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૪૭, ૧૯૪, ૨૦૦, ૫૧૧, ૫૬૦ તથા ૮૧૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૬૩	સમયસાર દોહન (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજી સ્વામીના નાઈરોબીમાં સમયસાર પરમાગમ ઉપર થયેલાં પ્રવચનો)	૩૫-૦૦
૬૪	સુવિધિદર્શન (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત સુવિધિ લેખ ઉપર તેમનાં પ્રવચન)	૨૫-૦૦
૬૫	સ્વરૂપભાવના (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૯૧૩, ૭૧૦ અને ૮૩૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૬૬	સમક્તિનું બીજ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી સત્પુરુષની ઓળખાણ વિષયક પત્રાંક-ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૩૦-૦૦
૬૭	તત્ત્વાનુશીલન (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત વિવિધ લેખ)	-
૬૮	વિધિ વિજ્ઞાન (વિધિ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૦૭-૦૦
૬૯	વચનામૃત્ત રહસ્ય (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના નાઈરોબીમાં બહેનશ્રીના વચનામૃત્ત પર થયેલાં પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૭૦	વચનામૃત્ત પ્રવચન (ભાગ-૧)	-
૭૧	વચનામૃત્ત પ્રવચન (ભાગ-૨)	-
૭૨	વચનામૃત્ત પ્રવચન (ભાગ-૩)	-
૭૩	વચનામૃત્ત પ્રવચન (ભાગ-૪)	-
૭૪	યોગસાર	અનુપલબ્ધ
૭૫	ધન્ય આરાધક	-

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्टमें से प्रकाशित हुई पुस्तकोंकी प्रत संख्या

०१	प्रवचनसार (गुजराती)	१५००
०२	प्रवचनसार (हिन्दी)	४२००
०३	पंचास्तिकायसंग्रह (गुजराती)	१०००
०४	पंचास्तिकाय संग्रह (हिन्दी)	२५००
०५	समयसार नाटक (हिन्दी)	३०००
०६	अष्टपाहुड (हिन्दी)	२०००
०७	अनुभव प्रकाश	२१००
०८	परमात्मप्रकाश	४१००
०९	समयसार कलश टीका (हिन्दी)	२०००
१०	आत्मअवलोकन	२०००
११	समाधितंत्र (गुजराती)	२०००
१२	बृहद द्रव्यसंग्रह (हिन्दी)	३०००
१३	ज्ञानामृत (गुजराती)	१०,०००
१४	योगसार	२०००
१५	अध्यात्मसंदेश	२०००
१६	पद्मनंदीपंचविंशती	३०००
१७	समयसार	३१००
१८	समयसार (हिन्दी)	२५००
१९	अध्यात्मिक पत्रो (पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी द्वारा लिखित)	३०००
२०	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (गुजराती)	१०,०००
२१	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (हिन्दी)	६६००
२२	पुरुषार्थसिद्दिउपाय (गुजराती)	६१००
२३	क्रमबद्धपर्याय (गुजराती)	८०००
२४	अध्यात्मपराग (गुजराती)	३०००
२५	धन्य अवतार (गुजराती)	३७००
२६	धन्य अवतार (हिन्दी)	८०००
२७	परमामगसार (गुजराती)	५०००
२८	परमागमसरा (हिन्दी)	४०००
२९	वचनामृत प्रवचन भाग-१-२	५०००
३०	निर्भ्रांत दर्शनकी केडीए (गुजराती)	४५००
३१	निर्भ्रांत दर्शनकी पगडंडी (हिन्दी)	७०००

३२	अनुभव प्रकाश (हिन्दी)	२०००
३३	गुरुगुण संभारणा (गुजराती)	३०००
३४	जिण सासणं सव्वं (गुजराती)	२०००
३५	जिण सासणं सव्वं (हिन्दी)	२०००
३६	द्वादश अनुप्रेक्षा (गुजराती)	२०००
३७	दस लक्षण धर्म (गुजराती)	२०००
३८	धन्य आराधना (गुजराती)	१०००
३९	धन्य आराधना (हिन्दी)	१५००
४०	प्रवचन नवनीत भाग-१-४	५८५०
४१	प्रवचन प्रसाद भाग-१-२	१५००
४२	पथ प्रकाश (गुजराती)	२०००
४३	प्रयोजन सिद्धि (गुजराती)	३५००
४४	प्रयोजन सिद्धि (हिन्दी)	२५००
४५	विधि विज्ञान (गुजराती)	२०००
४६	विधि विज्ञान (हिन्दी)	२०००
४७	भगवान आत्मा (गुजराती)	२०००
४८	सम्यक्ज्ञानदीपिका (गुजराती)	१०००
४९	सम्यक्ज्ञानदीपिका (हिन्दी)	१५००
५०	तत्त्वानुशीलन (गुजराती)	४०००
५१	तत्त्वानुशीलन (हिन्दी)	२०००
५२	बीजुं कांई शोध मा (गुजराती)	४०००
५३	दूसरा कुछ न खोज (हिन्दी)	२०००
५४	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (गुजराती)	२५००
५५	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (हिन्दी)	३५००
५६	अमृत पत्र (गुजराती)	२०००
५७	अमृत पत्र (हिन्दी)	२०००
५८	परिभ्रमणना प्रत्याख्यान (गुजराती)	१५००
५९	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (हिन्दी)	२०००
६०	आत्मयोग (गुजराती)	१५००
६१	आत्मयोग (हिन्दी)	२०००
६२	अनुभव संजीवनी (गुजराती)	१०००
६३	अनुभव संजीवनी (हिन्दी)	१०००
६४	ज्ञानामृत (हिन्दी)	१५००

पाठकों की नोंध के लिये

पाठकों की नोंध के लिये

पाठकों की नोंध के लिये